संत कबीर

रामकुमार वर्मा

एम्० ए०, पी-एच० डी०

प्रयाग विश्वविद्यालय

साहित्य भवन लिमिटेड, इलाहाबाद ।

१९४३

प्रकाशक:—

साहित्य भवन लिमिटेड,

इलाहाबाद।

प्रथम बार ५०० पृष्ठ संख्या ४२४ मूल्य ६|||=)

मुद्रक:—

गिरिजाप्रसाद श्रीवास्तव,

हिन्दी-साहित्य प्रेस, इलाहाबाद।

स्वर्गीय पिता

श्री लक्ष्मीप्रसाद वर्मा

की पवित्र स्मृति में

नीचे लोइन करि रहउ ले साजन घट माहि।
सभ रस खेलउ पीअ सउ किसी लखावउ नाहि।

—कबीर

'बीजक'

संत कबीर भारतीय साहित्य के यशस्वी निर्माताओं में हैं। सात्विक अनुभूति से पूर्ण जीवन को उन्होंने काव्य के आलोक से अक्षय कांति प्रदान की है। जीवन की यह प्रकाश-रेखा भौगोलिक और सांप्रदायिक सीमाओं का अतिक्रमण कर सार्वभौमिक हो गई है। हमारे देश के सांस्कृतिक विकास में कबीर की विचार-धारा एक प्रमुख स्थान रखती है। इसीलिये यह कहा जा सकता है कि कबीर के काव्य का महत्व मध्यकालीन भारतीय साहित्य का ही महत्व है।

खेद की बात है कि कबीर के काव्य का वास्तविक रूप हमारे सामने अभी तक नहीं आ सका। इस विषय में जितने भी संग्रह प्रकाशित हुए हैं वे किसी प्रामाणिक प्राचीन प्रति के आधार पर नहीं हैं। नागरी प्रचारिणी सभा काशी द्वारा प्रकाशित कबीर ग्रंथावली का पाठ भी संदिग्ध और अप्रामाणिक है। पाठ का पंजाबीपन तो 'पूरब' निवासी कबीर की वाणी का विषम शीशे में पड़ा हुआ विकृत प्रतिबिंब सा है।

सिख संप्रदाय के पूज्य धर्मग्रंथ श्री गुरुग्रंथ साहब में कबीर का काव्य भी संकलित है। उसमें २२८ पद और २४३ सलोक (साखियाँ) हैं। यह गुरु-ग्रंथ साहब सन् १६०४ (संवत् १६६१) में श्री गुरु अर्जुन देव द्वारा संकलित किया गया था। धर्मग्रंथ होने के कारण श्री गुरुग्रंथ साहब मंत्र रूप से मान्य है और उसके पाठ की रक्षा बड़ी सावधानी से की गई है। इस प्रकार इस ग्रंथ में संकलित कबीर के काव्य का रूप सन् १६०४ से अब तक अपने मौलिक रूप में सुरक्षित है। अतः अभी तक के प्राप्त पाठों में श्री गुरुग्रंथ साहब में संग्रहीत कबीर के काव्य का पाठ अधिक से अधिक प्रामाणिक है। गुरुमुखी लिपि में होने के कारण श्री ग्रंथ साहब द्वारा प्रस्तुत इस पाठ की ओर हिंदी भाषियों का ध्यान आकर्षित नहीं हुआ था। जब तक कबीर के जीवन-काल में ही लिखा गया उनका कोई हस्तलिखित ग्रंथ प्राप्त न हो तब तक यह पाठ अन्य परवर्ती पाठों की अपेक्षा अधिक विश्वसनीय कहा जा सकता है। सबसे बड़ी बात तो यह है कि गुरुग्रंथ साहब पंजाबी भाषा और

गुरुमुखी लिपि में लिखा जाकर भी कबीर के काव्य का 'पूरबीपन' अधिक मात्रा में सुरक्षित किए हुए है। ग्रंथ में संकलित कबीर के पदों पर पंजाबीपन नहीं के बराबर है।

संत कबीर में श्री गुरुग्रंथ साहब में संकलित कबीर के इन्हीं पदों का संग्रह है। पुस्तक का पाठ अत्यंत सावधानी और सतर्कता से देखा गया है। गुरु-मुखी लिपि की एक ही पंक्ति में मिले हुए शब्दों को अत्यंत सावधानी के साथ विभक्त किया गया है। कहीं कहीं अक्षरों में दो मात्राओं को एक साथ लगाने में भी गुरुमुखी लिपि का अनुसरण किया गया है। तत्वतः संत कबीर में गुरु-मुखी लिपि में लिखे गए कबीर के पदों का देवनागरी लिपि में प्रतिबिंबवत् रूपांतर है। आशा है, प्रामाणिकता के दृष्टिकोण से संत कबीर का पाठ कबीर-काव्य के विद्यार्थियों और प्रेमियों को हितकर होगा।

पिछले बारह वर्षों से मैं संत कबीर के काव्य का विद्यार्थी हूँ। इस अवधि में मैंने कबीर की अनुभूतियों को हृदयंगम करने की चेष्टा की है और उनके विचार-विन्यास में खोज भी की है। कबीर का ज्ञान प्रकाशित पुस्तकों में नहीं है, वह प्राचीन अप्रकाशित हस्तलिखित ग्रंथों और कबीर-पंथ के महा-त्माओं के वचनों में है। इस विचार से मैंने भारत के सभी प्रमुख कबीर-पंथ के मठों की यात्रा की और कबीर-पंथी साधुओं के सत्संग के अवसर प्राप्त किये। मेरा विचार था कि अब तक की मेरी समस्त साधना संत कबीर में प्रस्तुत प्रामाणिक पदों के साथ प्रकाशित होती किंतु प्रकाशन की वर्तमान असु-विधाओं ने तथा काग़ज़ की समस्या ने मेरी सहायता नहीं की। विवश होकर मैंने कबीर के समय-निर्धारण और जीवन-वृत्त संबंधी प्रस्तावना लिखकर परिशिष्ट में कबीर के पदों और सलोकों के अर्थ एवं रूपकों, उल्टबाँसियों, संख्याओं और शब्दों के कोष देकर ही संतोष किया। इस प्रकार मेरे एक युग की साधना आंशिक रूप से ही हिंदी संसार में जा रही है। मैं नहीं जानता कि इसका मूल्य कितना है।

संत कबीर का अध्ययन करने और इस ग्रंथ के प्रस्तुत करने में मुझे अनेक सज्जनों और संस्थाओं से सहायता मिली है। सर्वप्रथम इलाहाबाद यूनिवर्सिटी के हिंदी विभाग के अध्यक्ष पूज्य डा० धीरेन्द्र वर्मा, दर्शन विभाग के अध्यक्ष प्रोफ़ेसर आर० डी० रानाडे, रावराजा डा० श्यामबिहारी मिश्र और श्री राय कृष्णदास ने समय समय पर मुझे अनेक सत्परामर्श दिए हैं जिनसे

मेरे कार्य में अधिक सुचारुता आ सकी है। मैं इनके प्रति अत्यंत कृतज्ञ हूँ। इनके अतिरिक्त कबीर धर्म-वर्धक कार्यालय, सीयाबाग, बड़ौदा के महंत श्री मोतीदासजी चैतन्य, दामाखेड़ा (छत्तीसगढ़) की श्रीमती नागरदेवी, कबीर-चौरा के महंत श्री रामविलासजी, सिवनी-मालवा (होशंगाबाद) के महंत श्री मूरतदासजी, तथा चुनार के श्री सोमेश्वरसिंहजी से अनेक सिद्धांत-सूत्र और हस्तलिखित ग्रंथ मिले हैं। इन्हें मैं हार्दिक धन्यवाद देता हूँ। काशी में जुलाहों की बस्ती अलीपुर के मौलाना अज़ीज़ुल्लाह ख़ाँ और इमाम अली तथा कंदेली (नरसिंहपुर) के हल्कू कोरी के प्रति भी मैं आभार प्रदर्शित करना चाहता हूँ जिन्होंने जुलाहों के कार्य-कलापों का मेरे सामने स्पष्ट प्रदर्शन करते हुए मुझे तत्संबंधी विशिष्ट बातों की जानकारी कराई है।

अंत में कबीर ग्रंथावली और संत कबीर में आए हुए पदों की समानता-निर्धारण में मेरे शिष्य श्री राधेश्याम शर्मा एम्० ए० ने मेरी सहायता की है इसके लिए वे धन्यवाद के पात्र हैं। कुछ पदों के अर्थ सुलझाने में मेरे पूज्य बड़े भाई श्री रामशरणलाल जी ने मेरी सहायता की है। उनका सादर अभिनंदन। पुस्तक को सुचारु रूप से प्रकाशित करने के लिए मैं साहित्य भवन लिमिटेड, उसके मैनेजर श्री अनंतलाल और अपने मित्र श्री पी० मुकर्जी, आर्टिस्ट को भी धन्यवाद देता हूँ।

रामकुमार वर्मा

रागों का निर्देश

विषय-सूची

चित्रों का परिचय

१ *कबीर का प्रस्तुत चित्र* भारत इतिहास संशोधक मंडल, पूना से प्राप्त किया गया है। इसकी मूलप्रति वहाँ की चित्रशाला में सुरक्षित है। इसका आकार ८$\frac{१५}{१६}$''×५$\frac{३}{४}$'' है। यह चित्र नाना फड़नवीस के चित्र-संग्रह से प्राप्त हुआ है। कहा जाता है कि नाना फड़नवीस संतों के प्रति श्रद्धा रखते थे और सदैव उनके चित्रों की खोज में रहते थे। उसी भावना से प्रेरित होकर उन्होंने उत्तरी भारत से यह चित्र प्राप्त किया था। चित्रकार या चित्र की तिथि अज्ञात है। नाना फड़नवीस का कार्य-काल सन् १७७३ से १७९९ तक रहा है। अतः यह चित्र कम से कम पौने दो सौ वर्ष पुराना है। (इस चित्र को प्रकाशित करने की आज्ञा प्रदान करने के लिए मैं भारत इतिहास संशोधक मंडल, पूना का कृतज्ञ हूँ।)

२ *शरीर में षट्चक्र*—मेरुदंड के समानांतर सुषुम्णा नाड़ी के विस्तार में नीचे से ऊपर तक छः चक्र हैं। उनके नाम हैं:—मूलाधार, स्वाधिष्ठान, मणिपूरक, अनाहत, विशुद्ध और आज्ञा। प्राणायाम की स्थिति में इन चक्रों की सिद्धि दिव्यानुभूति में परिणत होती है। मूलाधार चक्र में कुंडलिनी है जो जाग्रत होकर समस्त चक्रों को पार कर सहस्त्र-दल कमल में पहुँचती है और योगी को चरमसिद्धि तक पहुँचा देती है।

३ *सहस्त्र दल कमल*—यह तालु-मूल में स्थित होकर शिरोभाग में फैला हुआ है। इसी सहस्त्रदल कमल में ब्रह्मरंध्र है जहाँ मूलाधार चक्र की कुंडलिनी सुषुम्णा में ऊपर बढ़ती हुई स्थिर हो जाती है। इसी कमल के मध्य में एक चंद्र है, वहाँ से सुधा का प्रवाह होता है जिससे शरीर-क्षय दूर होता है। योगी के समाधिस्थ होने पर अनाहतनाद के गूँजने का यही स्थान है।

४ *मूलाधार चक्र*—यह चक्र गुह्य स्थान के समीप स्थित है। इसमें चार दल होते हैं। इस चक्र पर मनन करने से साधक को दरदुरी (मेढक

के समान उछलने की) शक्ति प्राप्त होती है। वह क्रमशः पृथ्वी को संपूर्णतः छोड़ कर आकाश में उड़ सकता है। बुद्धि-संपन्नता के साथ उसमें सर्वज्ञता आती है। वह जरा और मृत्यु को नष्ट कर सकता है। इस चक्र के सिद्ध होने पर प्रत्येक दल से क्रमशः व, श, ष, स का नाद झंकृत होता है।

५ *कुंडलिनी*—सुषुम्णा नाड़ी के मार्ग पर मूलाधार चक्र में एक सर्पाकार दिव्य शक्ति निवास करती है। उसका नाम कुंडलिनी है। उसका शरीर सर्प की भाँति साढ़े तीन बार मुड़ा हुआ है और वह अपनी पूँछ अपने मुख में दबाये हुए है। वह सर्प के समान शयन करती है और अपनी ही प्रभा से आलोकित है। वह विद्युल्लता की भाँति है। कुंडलिनी प्राणायाम से जाग्रत होने पर क्रमशः षट् चक्रों में प्रवेश कर सुषुष्णा नाड़ी के सहारे सहस्र दल कमल के ब्रह्मरंध्र में प्रवेश करती है। यही योग की चरमावस्था है।

६ *स्वाधिष्ठान चक्र*—यह चक्र लिंगमूल के समीप स्थित है। इसमें छः दल हैं। इस चक्र पर चिंतन करने से साधक विश्व में बंधनमुक्त और भयरहित हो जाता है। वह इच्छानुसार अणिमा या लघिमा सिद्धि का उपयोग कर सकता है। वह मृत्यु भी जीत लेता है। इस चक्र के सिद्ध होने पर प्रत्येक दल से क्रमशः ब, भ, म, य, र, ल का नाद झंकृत होने लगता है।

७ *मणिपूरक चक्र*—यह चक्र नाभि के समीप स्थित है। इसमें दस दल होते हैं। इस चक्र पर चिंतन करने से साधक इच्छाओं का स्वामी हो सकता है। वह इच्छानुसार किसी दूसरे शरीर में प्रवेश कर सकता है। स्वर्ण-निर्माण की शक्ति और गुप्त धन की दृष्टि उसे मिल जाती है। इस चक्र के सिद्ध होने पर प्रत्येक दल से क्रमशः ड, ढ, ण, त, थ, द, ध, न, प, फ का नाद झंकृत होने लगता है।

८ *अनाहत चक्र*—यह चक्र हृदयस्थल के समीप है। इसमें बारह दल होते हैं। इस चक्र पर चिंतन करने से साधक भूत, भविष्य और वर्तमान जानने लगता है। वह वायु पर चल सकता है, अथवा उसे खेचरी शक्ति प्राप्त हो जाती है। इस चक्र के सिद्ध होने पर प्रत्येक दल से क्रमशः क, ख, ग, घ, ङ, च, छ, ज, झ, ञ, ट, ठ का नाद झंकृत

होने लगता है।

९ *विशुद्ध चक्र*—यह चक्र कंठ के समीप है। इसमें सोलह दल होते हैं। इस चक्र पर चिंतन करने से साधक योगीश्वर की संज्ञा प्राप्त करता है। वह चतुर्वेदों का ज्ञाता होता है और उसकी प्रवृत्तियाँ संपूर्णतः अंतर्मुखी हो जाती हैं। वह सुदृढ़ शरीर में एक सहस्र वर्षों का जीवन व्यतीत करता है। इस चक्र के सिद्ध होने पर प्रत्येक दल से क्रमशः अ, आ, इ, ई, उ, ऊ, ऋ, ॠ, लृ, ॡ, ए, ऐ, ओ, औ, अं, अः का नाद झंकृत होने लगता है। यह चक्र स्वर-ध्वनि का केंद्र है।

१० *आज्ञा चक्र*—यह चक्र त्रिकुटी (भौंहों के मध्य-स्थान) के समीप है। इसके दो दल होते हैं। इस चक्र पर चिंतन करने से साधक जो चाहता है, वही कर सकता है। यह प्रकाश का बिंदु है। इस चक्र के सिद्ध होने पर प्रत्येक दल से ह और क्ष का नाद झंकृत होने लगता है।

११ *मानचित्र*—इस मानचित्र में भारत के भिन्न भिन्न स्थानों में कबीर पंथ के केंद्रों और मठों की स्थिति और उनका प्रभाव प्रदर्शित किया गया है।

प्रस्तावना

कबीर की कविता एक युगांतरकारी रचना है। भक्त कवियों की विनय-शीलता और आत्म-भर्त्सना के बीच में वह स्पष्ट कंठ में कही गई धार्मिक और सामाजिक जीवन की पक्षपात-रहित विवेचना है। उस कविता में समय की अंध-परंपराओं को छिन्नमूल करने की शक्ति है और जीवन में जागृति लाने की अपूर्व क्षमता। हिंदी साहित्य के धार्मिक काल के नेता के रूप में कबीर ने जितने साहस से परंपरागत हिंदू धर्म के कर्मकांड से संघर्ष लिया उतने ही साहस से उन्होंने भारत में जड़ पकड़ने वाली इस्लाम की नवीन सांप्रदायिक भावना से लोहा लिया। कबीर ने सफलतापूर्वक दोनों धर्मों की 'अधार्मिकता' पर कुठाराघात किया और एक नये संप्रदाय का सूत्रपात किया जो 'संतमत' के नाम से प्रख्यात हुआ। इस संप्रदाय ने शास्त्रीय जटिलताओं से सुलझा कर धर्म को सरल और जीवनमय बना दिया जिससे साधारण जनता भी उससे अंतः प्रेरणाएं ले सके। यही कारण है कि इस संतमत में समाज के साधारण और निम्न व्यक्ति भी सम्मिलित हो सके जिनकी पहुँच शास्त्रीय ज्ञान तक नहीं थी। कबीर ने साधारण जीवन के रूपकों द्वारा अथवा अनुभूतिपूर्ण सरस चित्रों के सहारे ही आत्मा, परमात्मा और संसार की समस्याओं को सुलझाया। धर्म-प्रचार की इस शैली ने धर्म को व्यक्तिगत अनुभव का एक अंग बना दिया और समाज ने धर्म के वास्तविक रूप को पहिचान लिया।

कबीर की कविता

जनता का यह गतिशील सहयोग कबीर की रचनाओं के पक्ष में अनु-कूल सिद्ध नहीं हुआ। कबीर संत पहले थे, कवि बाद में। उन्होंने कविता का चमत्कार प्रदर्शित करने के लिए कंठ मुखरित नहीं किया, उन्होंने धर्म के व्यापक रूप को सुबोध बनाने के लिए काव्य नियोजित किया। अतः कबीर में धार्मिक दृष्टिकोण प्रधान है काव्यगत दृष्टिकोण गौण। यह दूसरी बात है कि जीवन में 'गहरी पैठ' होने के कारण उनकी कविता में जीवन की क्रांति सहस्रमुखी हो उठी। उससे धर्म प्राणमय होकर अनेक चित्रों में साकार हो गया। संत कबीर

कविता का रूप

कवि कबीर हो गए यद्यपि संत ने न तो भाषा के रूप को सँवारा और न पिंगल की मात्रिक और वर्णिक शैली का अनावश्यक अनुकरण किया। गेय पदों के रूप में उन्होंने कविता कही और जनता ने उसमें अपना कंठ मिला दिया। जन-वाणी के रूप में ये पद समाज में संचरित हो गए। साथ ही साथ कबीर के नाम से जनता ने नवीन पदों की रचना करने में कबीर के प्रति अपनी श्रद्धा और भक्ति समझी। इस प्रकार कबीर की वाणी में ऐसे-ऐसे पद प्रक्षिप्त किए गए जिनमें न तो कबीर की आत्मा है और न उसका ओज। कबीर ने 'पुस्तक-ज्ञान' का तिरस्कार किया था अतः स्वयं उन्होंने किसी विशिष्ट ग्रंथ की रचना नहीं की। वे तो जनता में उपदेश देते थे और अपने पदों को उपदेश का माध्यम बनाते थे। फलतः पदों में न तो कोई क्रमबद्धता है और न कोई शृंखला। कविता का रूप मुक्तक होने के कारण संत संप्रदाय के भक्तों द्वारा मनमाना बढ़ाया-घटाया गया है। अतः कबीर के नाम से प्रसिद्ध रचना में कबीर की वास्तविक रचना पाना बहुत कठिन हो गया है। कबीर के नाम से पाई जाने वाली रचना अधिकांशतः कबीर के प्रथम शिष्य धर्मदास द्वारा ही लिखी गई है। बाद में तो कबीर-पंथी साधुओं ने अपनी ओर से बहुत सी रचना की और संत कबीर में अपनी प्रगाढ़ श्रद्धा होने के कारण उसे कबीर के नाम से ही प्रचारित किया। कबीर के प्रति इस श्रद्धा और भक्ति ने कबीर की कविता का वास्तविक रूप ही हमसे छीन लिया और आज कबीर के नाम से प्रचलित रचना को हम संदिग्ध दृष्टि से देखने लगे हैं।

कविता के संग्रह

इस समय कबीर की कविता के बहुत से संग्रह प्रकाशित हैं। प्रायः सभी में पाठ-भेद हैं। इस दृष्टिकोण से निम्नलिखित संस्करण अधिक प्रसिद्ध कहे जा सकते हैं :—

१. संतबानी संग्रह (बेलवेडियर प्रेस) प्रकाशित सन् १६०५, बेलवेडियर प्रेस, इलाहाबाद।

२. बीजकमूल (कबीरचौरा, बनारस) प्रकाशित सन् १९३१, महाबीर प्रसाद, नैशनल प्रेस, बनारस कैंट।

३. सत्य कबीर की साखी (श्री युगलानंद कबीरपंथी भारतपथिक) प्रकाशित सन् १६२०, श्री वेङ्कटेश्वर प्रेस, बंबई।

४. सद्गुरु कबीर साहब का साखी ग्रंथ (कबीर धर्मवर्धक कार्यालय, सीयाबाग, बड़ौदा) प्रकाशित सन् १६३५, महंत श्री बालकदास जी, धर्मवर्धक

कार्यालय, सीयाबाग, बड़ौदा।

५. बीजक श्री कबीर साहब (साधु पूरनदास जी) प्रकाशित सन् १९०५, बाबू मुरलीधर, काली स्थान, करनेलगंज, इलाहाबाद।

६. कबीर ग्रंथावली (नागरी प्रचारिणी सभा, काशी) प्रकाशित सन् १९२८, इंडियन प्रेस लिमिटेड, प्रयाग।

उपर्युक्त संस्करणों में बीजक और साखी ग्रंथ अलग-अलग अथवा मिले हुए ग्रंथ हैं जिनसे कबीर की कविता का ज्ञान जनता में सम्यक् रूप से अवश्य हो गया किंतु इन सभी संस्करणों की प्रामाणिकता चिंत्य है। बेलवेडियर प्रेस से प्रकाशित संतबानी-संग्रह का प्रचार सर्वाधिक है किंतु यह प्रति संतों और महात्माओं द्वारा एकत्रित सामग्री के आधार पर ही संकलित की गई है। उसका रूप साधु संतों के गाये हुए पदों और गीतों से ही निर्मित है, किसी प्राचीन हस्तलिखित प्रति का आधार उसके संकलन में नहीं लिया गया और यदि लिया भी गया है तो उसका कोई संकेत नहीं दिया गया।

संग्रहों की प्रामाणिकता संतबानी संग्रह

कबीरचौरा ने जो बीजक मूल की प्रति प्रकाशित की है, उसका पाठ अनेक प्रतियों के आधार पर अवश्य है किंतु वे प्रतियाँ केवल 'साक्षी रूप' से ही उपयोग में लाई गई हैं।[१] इस प्रति का मूल आधार कबीरचौरा का प्राचीन प्रचलित पाठ है। किंतु यह प्राचीन पाठ किस प्रति के आधार पर है, इसका कोई उल्लेख नहीं किया गया।

बीजक मूल

श्री युगलानंद कबीरपंथी भारतपथिक की प्रति प्रामाणिक प्रतियों की सहायता से भी प्रामाणिक नहीं हो सकी। श्री युगलानंद ने अपनी प्रति को अनेक प्रतियों से शुद्ध भी किया है। 'जिन पुस्तकों से यह शुद्ध हुई है उनमें से एक प्रति तो रसीदपुर शिवपुर निवासी श्रीमान् बख़्शी गोपाललाल जी पूर्व

[१] बीजक मूल के संपादक साधु लखनदास और साधु रामफलदास लिखते हैं:—अपने मत तथा इस ग्रंथ का संशोधन ग्यारह ग्रंथों से किया है जिसमें छः टीका-टिप्पणी साथ हैं और पांच हाथ की लिखी पोथी हैं परंतु इन सब ग्रंथों को साक्षी रूप में रखा था, केवल स्थान कबीरचौरा काशी के पुराने और प्रचलित पाठ पर विशेष ध्यान दिया गया है।

अमात्य शिवहर राज्य के पुस्तकालय से प्राप्त हुई थी जो संवत् १६०० की लिखी हुई है। दूसरी प्रति नागपुर इन्द्रभान जी निवासी श्री भैरवदीन तिवारी जी ने कृपाकर भेजी थी जिसमें अनेक संतों की वाणी के साथ-साथ यह साखी भी है और संवत् १८४२ की लिखी है और तीसरी प्रति मखदूमपुर जि० गया निवासी श्री नेतालालराम जी की भेजी हुई है, जिसमें यद्यपि सन् संवत् नहीं लिखा है परंतु पुस्तक के देखने से जान पड़ता है कि यह भी प्राचीन ही लिखी हुई है। इसके अतिरिक्त स्वामी श्री युगलानंद जी के पास और भी अनेक प्रतियाँ थीं जिससे उन्होंने इस पुस्तक को शुद्ध कर लिया है।" (श्री खेमराज श्रीकृष्णदास) यदि श्री युगलानंद जी अपनी प्रति में संवत् १६०० की प्रतिवाली सामग्री रखते तो उनकी प्रति अवश्य प्रामाणिक होती किंतु उन्होंने किया यह है कि 'कबीर साहब की जितनी साखियाँ जगत में प्रसिद्ध हैं सब इसी पुस्तक में संकलित कर ली हैं' और उन्हें संवत् १६०० की प्रति की साखियों से यथास्थान शुद्ध किया है। इससे इस पुस्तक की बहुत-सी सामग्री संवत् १६०० की प्रति से अतिरिक्त है और उसकी प्रामाणिकता के संबंध में कुछ नहीं कहा जा सकता क्योंकि उनकी प्रति में प्रामाणिक और अप्रामाणिक सामग्री एक साथ मिल गई है।

सत्य कबीर की साखी

कबीर धर्मवर्धक कार्यालय सीयाबाग बड़ौदा का साखी ग्रंथ एक आलोचनात्मक अवतरणिका और अनुक्रमणिका के साथ है और उसमें कबीर की सभी साखियाँ संग्रहीत हैं किंतु पुस्तक में किसी भी स्थान पर नहीं लिखा है कि साखियों के पाठ का आधार क्या है। अतः इस पाठ की प्रामाणिकता के संबंध में कुछ भी नहीं कहा जा सकता।

साखी ग्रंथ

साधु पूरनदास जी का बीजक ग्रंथ बहुत प्रसिद्ध कहा जाता है। संवत् १८६४ में उन्होंने उसकी 'त्रिज्या' लिखी। यह त्रिज्या "पहली बार बाबा देवीप्रसाद और सेवादास और मिस्त्री बालगोविंद की सहायता से मुंशी गंगाप्रसाद वर्मा लखनऊ के छापेखाने में छापी गई थी। उसके बहुत अशुद्ध हो जाने के कारण हर जगह के साधु लोग बहुत शिकायत किया करते थे।......सब साधु-महात्माओं की दया से एक प्रति हस्तलिखित बीजक त्रिज्या सहित बुरहानपुर की लिखी हुई, साधु काशीदास जी साहब से हमको मिली। उस ग्रंथ

बीजक

हावा॥ ग्यांन मसु मिस्यौ निरगुण सारा॥ बिषथैं बिरचि न कीया बिचारा॥ भावभगति सूं हरि न अराधा॥ जनम मरन की मिटी न स
धा॥ साधन मिटी जनम की॥ मरन तुरांनो आइ॥ मन क्रम बचन न हरि भज्या॥ अंकूर बीज नसाइ॥ ३॥ तिण चरि सुरही उदिक
पीया॥ फिरै दूध बछ कूं दीया॥ बछा चूंषत उपजी न दया॥ बछा बांधि बिछोही मया॥ ताका दूध आप दुहि पीया॥ ग्यांन बिचार
कछू नहीं कीया॥ जे कछू लोग निसो ई कीया॥ माला मंत्र बादि ही लीया॥ पीया दूध रूध कै आया॥ मुई गाइ तब दोष लगा
या॥ बाकस ले चमरा कूं दीन्हीं॥ तुचा रंगाइ करी ती कीन्हीं॥ लिर करौ ती बैठे संगा॥ ये देषौ पांडे के रंगा॥ तिहि स्त करौ ती पांण
पीया॥ यज अरु छपांडे अचिरज कीया॥ अचिरज कीया लोक मैं॥ पीया सुहाग न नीराइ डी त्यार थिसब कीया॥ छंध्या रूमस
रीर॥ थाए कै पवन एक ही पांणी॥ करी रसोई न्यारी जांनी॥ माटी सूं माटी ले पोती॥ लागी कहौ कहां धूं छोती॥ धरती लीप
पवित्र कीन्हीं॥ छोति उपाइ लीक बिचि दीन्हीं॥ याका हम सूं कहौ बिचारा॥ क्यूं भव तिरिहो इहि आचारा॥ ए पाषंड जीव
के न रमां॥ मां नित्र मांनि जीव के क्रमां॥ करि आचार जु ब्रह्म संतावा॥ नांव बिनां संतोष न पावा॥ सालिगराम सिला करि पूजा
तुलसी तोड़ि भया नर दूजा॥ ठाकुर ले पाटै पौढावा॥ भोग लगाइ अरु आपै षावा॥ साच सील का चौका दीजै॥ भाव भगति की से
वा कीजै॥ भाव भगति की सेवा मांनै॥ सतगुर प्रगट कहै नहीं छांनै॥ अनभै उपजि न मन ठहराई॥ परकीरति मिलि मन न मंन्य
न समाई॥ जब लग भाव भगति नहीं करिहौ॥ तब लग भवसागर क्यूं तिरिहौ॥ भाव भगति बिसवास बिन॥ कटै न संसै सूल
कहै कबीर हरि भगति बिन॥ मुकति नहीं रे मूल॥ ७॥ रमैंणी ७॥ इति श्री कबीर जी की बांणी संपूरण समाप्तः॥ साषी॥ ८
८१०॥ अंग॥ ६९॥ पद॥ ४०२॥ राग॥ १५॥ ह्य पूर्ण संवत १५६१ लिष्यक ता थाणा समयी षेमचंद पठनार्थं मलूक
दास बाचै विचाजी श्री रामराम याद्रिसि पुस्तकं द्रष्ट्वा तादृशं लिखितं मया यदि शुद्धं अशुद्धं वा मम दोषो न दियतां॥

संवत् १५६१ की हस्तलिखित प्रति के अंतिम पृष्ठ की प्रतिलिपि ।

की शुद्धता को देखकर हमारा मन बहुत प्रसन्न हुआ, और साधु काशीदासजी साहब ने इस त्रिज्या के शोधने में पूर्ण परिश्रम उठाकर सहायता दी है।" (बाबू मुरलीधर) यहाँ यह स्पष्ट नहीं है कि साधु काशीदासजी साहब की जो प्रति थी वह किस संवत् की थी और उसका आधार क्या था ? यों बीजक को कबीर के विचारों का पुराना संग्रह मानने में कोई आपत्ति नहीं होनी चाहिए।

कबीर ग्रंथावली

प्रामाणिकता के दृष्टिकोण को सामने रखते हुए काशी नागरी प्रचारिणी सभा से रायबहादुर श्री (अब डाक्टर) श्यामसुंदरदास जी ने कबीर ग्रंथावली का प्रकाशन किया। यह संस्करण दो प्राचीन प्रतियों के आधार पर प्रस्तुत किया गया है। एक प्रति संवत् १५६१ की लिखी हुई है और दूसरी संवत् १८८१ की। "दोनों प्रतियाँ सुंदर अक्षरों में लिखी हैं और पूर्णतया सुरक्षित हैं। इन दोनों प्रतियों के देखने पर यह प्रकट हुआ कि इस समय कबीरदास जी के नाम से जितने ग्रंथ प्रसिद्ध हैं उनका कदाचित् दशमांश भी इन दोनों प्रतियों में नहीं है। यद्यपि इन दोनों प्रतियों के लिपिकाल में ३२० वर्ष का अंतर है पर फिर भी दोनों में पाठ-भेद बहुत ही कम है। संवत् १८८१ की प्रति में संवत् १५६१ वाली प्रति की अपेक्षा केवल १३१ दोहे और ५ पद अधिक हैं।" नागरी प्रचारिणी सभा के इस संस्करण का मूल आधार संवत् १५६१ की लिखी हस्तलिखित प्रति है जिसके प्रथम और अंतिम पृष्ठों के चित्र इस संस्करण के साथ प्रकाशित हैं। यदि इस प्रति को बारीकी से देखा जाय तो इसकी प्रामाणिकता के संबंध में संदेह बना ही रहता है। संदेह का पहला कारण तो यह है कि इस हस्तलिखित प्रति की पुष्पिका ग्रंथ में लिखे गए अक्षरों से भिन्न और मोटे अक्षरों में लिखी गई है। समस्त ग्रंथ और पुष्पिका लिखने में एक ही हाथ नहीं मालूम होता। प्रति का अंतिम अंश यह है:—

इतिश्रीकबीरजीकीबांणींसंपूरणसमाप्तः ॥ साषी ॥८१०॥ अंग ॥६६॥ पद ४०२॥ राग १५॥

पुष्पिका यह है :—**संपूर्णसंवत् १५६१ लिप्पकृतावाणारसमध्यषेमचंद पठनाथ् मलुकदासबाचबिचाजांसूश्री रामरामछयाद्रसि पूस्तकंद्रष्ट्वाताइसंलितंमया यदिशुद्धंतोवाममदोशोनदियतां ॥**

प्रति के अंतिम अंश का 'संपूरण' पुष्पिका में 'संपूर्ण' हो गया है। इस संबंध में श्री हज़ारी प्रसाद द्विवेदी भी लिखते हैं, "एक बार 'इतिश्री कबीर

जी की बाणी संपूरण समातः ||......' इत्यादि लिखकर फिर से अपेक्षाकृत मोटी लिखावट से 'सपूर्ण संवत् १५६१' इत्यादि लिखना क्या संदेहास्पद नहीं है? पहली बार का 'संपूरण' और दूसरी बार का 'संपूर्ण' काफ़ी संकेतपूर्ण हैं। एक ही शब्द के ये दो रूप—हिज्जे और आकार-प्रकार में स्पष्ट ही बता रहे हैं कि ये एक हाथ के लिखे नहीं हैं। ऐसा जान पड़ता है कि अंतिम डेढ़ पंक्तियाँ किसी बुद्धिमान की कृति हैं।'[1] इस प्रकार इस प्रति की पुष्पिका संपूर्ण ग्रंथ के बाद की लिखी हुई जान पड़ती है। पुष्पिका में एक बात और ध्यान देने योग्य है। मूल में 'ल' 'क' 'श्री' जिस आकार-प्रकार में लिखे गए हैं उस आकार-प्रकार में वे पुष्पिका में नहीं लिखे गए। फिर मूल प्रति में 'य' और 'व' के नीचे बिंदु रक्खे गए हैं जो पुष्पिका के 'य' और 'व' के नीचे नहीं हैं। 'दोष' के हिज्जे के अंतर ने तो यह स्पष्ट ही निश्चित कर दिया है कि पुष्पिका और मूल एक ही व्यक्तिद्वारा नहीं लिखे गए। मूल के अंतिम पृष्ठ की चौथी पंक्ति में है:—'पीया दूध रुध्र है आया। मुई गाइ तब दोष लगाया।' यही 'दोष' पुष्पिका में 'दोशो न दियतां' में 'दोश' लिखा गया है। इसी प्रकार मूल में 'इंद्री स्वारथि सब कीया बंध्या भ्रम सरीर' में 'इंद्री' के 'द्र' का जो रूप है वह पुष्पिका में 'याद्रसि पूस्तकं द्रष्टा' में 'याद्रसि' और 'द्रष्टा' के 'द्र' का रूप नहीं है। इन अनेक कारणों से यह प्रति प्रामाणिक ज्ञात नहीं होती। संदेह का दूसरा कारण यह है कि इस प्रति में पंजाबीपन बहुत है जब कि बनारस में लिखी जाने के कारण इसमें पूर्वीपन ही अधिक होना चाहिए। फिर कबीर की बोली 'पूरबी' ही अधिक होनी चाहिए क्योंकि उन्होंने कहा भी है कि उनका सारा जन्म 'सिवपुरी (काशी) में ही व्यतीत हुआ।[2] इस पंजाबीपन का कारण स्वयं ग्रंथ के संपादक बाबू श्यामसुंदरदास की 'समझ में नहीं आता।' वे लिखते हैं "या तो यह लिपिकर्त्ता की कृपा का फल है अथवा पंजाबी साधुओं की संगति का प्रभाव है।" यदि यह पंजाबीपन लिपिकर्त्ता की 'कृपा का फल' है तो प्रति में कबीर साहब का शुद्ध पाठ ही कहाँ रहा? और यदि यह पंजाबी साधुओं की संगति का प्रभाव है तो क्या बनारस में रहने वाले कबीर साहब

[1]कबीर—पृष्ठ १९ (हिंदी-ग्रंथ-रत्नाकर सीरीज़, बंबई १९४२)

[2]सगल जनम सिवपुरी गवाइआ।
मरती बार मगहरि उठि आइआ॥ रागु गौड़ी १५

पर बनारस की बोली या बनारस के साधुओं का कुछ भी प्रभाव नहीं पड़ा? संपादक द्वारा दिए गए ये दोनों कारण केवल मन समझाने के लिए हैं। इस संस्करण में जो पाठ प्रामाणिक माना गया है उसमें भी अनेक भूलें हैं। हस्तलिखित प्रतियों में एक लकीर में सभी शब्द मिलाकर लिख दिए जाते हैं, एक शब्द दूसरे शब्द से अलग नहीं रहता। अतः पंक्ति को पढ़ने में दृष्टि का अभ्यास होना चाहिए जिससे शब्दों का अलग अलग क्रम स्पष्ट पढ़ा जा सके। हस्तलिखित प्रति को छपाते समय संपादक को संदर्भ और अर्थ समझ कर शब्दों का स्पष्ट रूप लिखना चाहिए। कबीर ग्रंथावली में अनेक स्थलों पर शब्दों को अलग-अलग लिखने में भूल हो गई है। कहीं एक शब्द दूसरे से जोड़ दिया गया है, कहीं किसी शब्द को तोड़ कर आगे और पीछे के शब्दों में मिला दिया गया है जिससे अर्थ का अनर्थ हो गया है। उदाहरणार्थ रागु गौड़ी के बारहवें पद की दो पंक्तियाँ लीजिए :—

धौल मंदलिया बैलर बाबी, कऊवा ताल बजावै।
पहरि चोल नांगा दह नाचै, भैंसा निरति करावै ॥[1]

यहाँ 'बैलर बाबी' और 'चोल नांगा दह नाचै' का कोई अर्थ नहीं होता। वास्तव में 'बैलर बाबी' के स्थान पर होना चाहिए 'बैल रबाबी' और 'चोल नांगा दह नाचै' के स्थान पर 'चोलना गादह नाचै'। इस प्रकार के अशुद्ध पाठ कबीर ग्रंथावली में भरे पड़े हैं। अतः कबीर की कविता का प्रामाणिक पाठ इस संस्करण द्वारा भी प्रस्तुत नहीं किया जा सका।

कबीर का प्रामाणिक पाठ जानने के संबंध में हमारे पास कोई विशेष सामग्री नहीं है। कबीर ने पुस्तक-ज्ञान का सदैव तिरस्कार किया है[2]। अतः इसमें संदेह है कि उन्होंने किसी ग्रंथ की रचना की होगी। उन्होंने जीवन और संसार पर चिंतन कर उपदेश दिए और शिष्यों ने उन्हें स्मरण रखकर बाद में पुस्तक रूप से प्रस्तुत किए। कबीर ने पुस्तकों से अध्ययन तो नहीं किया[3]

[1] कबीर ग्रंथावली, पृष्ठ ९२

[2] कबीर संसा दूरि करु कागद देह बिहाइ।
बावन अखर सोधि कै हरि चरिनी चितु लाइ ॥सलोकु १७३

[3] बिदिआ न परउ बादु नही जानउ।
हरि गुन कथत सुनत बउरानो ॥ रागु बिलावलु २

किंतु उन्होंने अपना ज्ञान सत्संग और स्वानुभूति से अवश्य अर्जित किया। वे साधारणतः पढ़े लिखे हो सकते हैं क्योंकि अक्षर-ज्ञान से संबंध रखने वाली 'बावन अखरी' उन्होंने लिखी है। यह कहा जा सकता है कि 'पंद्रह तिथि' 'सात वार' और 'बावन अखरी' जोगेसुरीबानी की परंपरा हो सकती है और नाथपंथ से उसका विशेष प्रचार भी हो सकता है किंतु एक बात है। कबीर की 'पंद्रह थिंती' 'सात बार' के समानांतर गोरखबानी में 'पंद्रह तिथि' और 'सतवार' की रचना तो हमें मिलती है किंतु 'बावन अखरी' की रचना प्राप्त नहीं होती। 'बावन अखरी' की परंपरा की भी संभावना हो सकती है क्योंकि जायसी जैसे सूफ़ी सिद्धांत से प्रभावित कवि ने 'अखरावट' की रचना कर वर्णमाला के बावन अक्षरों के संकेत लिखे हैं। फिर भी 'बावन अखरी' से कबीर में अक्षर-ज्ञान की संभावना हम मान सकते हैं। हाँ, यह अवश्य कहा जा सकता है कि कबीर की गति साहित्य-शास्त्र में अधिक नहीं थी। यदि वे साहित्य-शास्त्र से परिचित होते तो अपनी भाषा का शृंगार अवश्य करते और उसका अक्खड़पन निश्चय दूर कर देते। उनकी भाषा में साहित्यगत संस्कार नहीं हैं और वह जन-समुदाय की भाषा का अपरिष्कृत रूप ही लिए हुए है। छंदों में भी मात्रा और वर्ण की अनेक भूलें हैं। एक ही विचार अनेक बार दुहराया गया है। रूपक और उदाहरण साहित्य की परंपरा से नहीं लिए गए, वे जीवन की घटनाओं के प्रतिबिंब हैं। इस प्रकार उनकी भाषा और भाव-राशि साहित्य-क्षेत्र की परिधि से बाहर ही है। फिर जब उन्होंने एक बार भी 'लिखने' की बात नहीं कही तब उनकी वाणी का वास्तविक रूप प्राप्त होना कठिन ही नहीं, असंभव है।

खोज रिपोर्ट

कबीर के नाम से आज बहुत से ग्रंथ हमारे सामने हैं। वे स्वयं कबीर द्वारा रचित हैं अथवा उनके शिष्यों द्वारा, यह भी संदिग्ध है। इतनी बात तो निश्चित है कि वे एक ही लेखक के द्वारा नहीं लिखे गए। उनमें शैली की बहुत भिन्नता है यद्यपि सभी शैलियों की भाषा में साहित्यिकता बहुत थोड़ी है। उसका कारण यह है कि इन सभी ग्रंथों के लेखक संत ही थे, कवि नहीं। उनका दृष्टिकोण धार्मिक सिद्धांतों का प्रचार था, साहित्य-शैलियों का निर्माण नहीं।

नागरी प्रचारिणी सभा, बनारस की खोज रिपोर्ट के अनुसार सन् १९०१ से

लेकर सन् १६२२ की खोज में कबीर द्वारा रचित ८५ प्रतियों की सूची मिलती है। उनका विवरण इस प्रकार है :—

सन्	ग्रंथ नाम	पद्य-संख्या	विवरण
१६०१	१ कबीर जी की साखी	६२४	ज्ञान विषय पद्य
	२ राम सार	१२०	राम महिमा
१६०२	१ कबीर जी के पद	१५१२	पद
	२ कबीर जी की रमैनी	...	...
	३ कबीर जी की साखियाँ	...	...
	४ कबीर जी की साखी	...	इसकी एक प्रति और भी है।
	५ कबीर जी के दोहे	४३२	नीति और धर्म विषय के दोहे
	६ कबीर जी के पद	...	...
	७ कबीर जी के कृत	...	...
	८ राग सोरठ का पद	...	मीरां, कबीर और नामदेव जी के पद
१६०६	१ अमर मूल	...	...
	२ अनुराग सागर	...	...
	३ उग्र ज्ञान मूल सिद्धांत	...	...
	४ कबीर परिचय की साखी	...	...
	५ ब्रह्म निरूपण	...	...
	६ शब्दावली	...	इसकी एक प्रति और भी है।
	७ हंसमुक्तावली	...	...
१६०७-१६०८-१६०६			
	१ अठपहरा	२०	आठ प्रहर के दैनिक आचार
	२ अनुराग सागर	१५६०	आध्यात्मिक विचार
	३ अमर मूल	११५५	अध्यात्म ज्ञान

सन्	ग्रंथ नाम	पद्य-संख्या	विवरण
	४ उग्रगीता	१०२५	कबीर और धर्मदास में ज्ञान-संवाद
	५ कबीर और धर्मदास की गोष्ठी	२६	,, ,,
	६ कबीर परिचय की साखी	३३५	... ...
	७ कबीरबानी	८००	धर्मदास को उपदेश
	८ निर्भय ज्ञान	७००	धर्मदास से कबीर का आत्म-चरित्र वर्णन
	९ ब्रह्म निरूपण	३००	ब्रह्म का स्वरूप वर्णन
	१० रमैनी	४८	सिद्धांत विषयक पद्य
	११ रामरक्षा	६३	रामोच्चारण से। आत्म-रक्षा
	१२ शब्द वंशावली	८७	आध्यात्मिक तत्व
	१३ शब्दावली	१८५०	,, ,, इसकी एक प्रति और है।
	१४ संत कबीर बंदी छोर	८५	आध्यात्मिक सिद्धांत
	१५ हिंडोरा वा रेखता	२१	आध्यात्मिक विषय पर गीत
	१६ हंसमुक्तावली	३४०	... ...
	१७ ज्ञानस्तोत्र	२५	आध्यात्मिक सिद्धांत और ब्रह्म-निरूपण
	१८ कबीर की बानी	१६५	,,
१९०९-१९१०-१९११			
	१ अक्षरखंड की रमैनी	६१	आध्यात्मिक उपदेश
	२ अक्षरभेद की रमैनी	६०	आध्यात्मिक ज्ञान
	३ अगाध मंगल	३४	योग-साधन
	४ अनुराग सागर	१५०४	आध्यात्मिक उपदेश
	५ अलिफ़ नामा (१)	३४	,,
	६ अलिफ़ नामा (२)	४१	,,
	७ अर्ज़नामा कबीर का	२०	प्रार्थना

सन्	ग्रंथ नाम	पद्य-संख्या	विवरण
	८ आरती कबीर कृत	६०	आरती-विधि
	९ कबीर अष्टक	२३	ब्रह्म-प्रशंसा
	१० कबीर गोरख की गुष्टि	१६०	कबीर गोरख संवाद
	११ कबीर जी की साखी	१६००	अध्यात्म ज्ञान
	१२ कबीर साहब की बानी	३८३०	"
	१३ कर्मकांड की रमैनी	८८	"
	१४ गोष्ठी गोरख कबीर की	६५	गोरख कबीर संवाद
	१५ चौका पर की रमैनी	४१	धार्मिक सिद्धांत
	१६ चौंतीसा कबीर का	७५	"
	१७ छप्पय कबीर का	२६	भक्तों के विषय में
	१८ जन्मबोध	२५०	आध्यात्मिक ज्ञान
	१९ तीसा जंत्र	४८	"
	२० नाम माहात्म्य (१)	३२	नाम महिमा
	२१ नाम माहात्म्य (२)	३९५	"
	२२ पिया पिछानबे को अंग	४०	अध्यात्म ज्ञान
	२३ पुकार कबीर कृत	२२	ब्रह्म-स्तुति
	२४ बलख की पैज	११५	कबीर और शाह बलख संवाद
	२५ बारामासी	५०	अध्यात्म ज्ञान
	२६ बीजक कबीर का	५७०	"
	२७ भक्ति का अंग	३४	भक्ति का प्रभाव
	२८ मुहम्मद बोध	४४०	कबीर और मुहम्मद संवाद
	२९ माषौं षंड चौंतीसा	५५५	अध्यात्मज्ञान, भक्ति और सद्गुण
	३० मंगल शब्द	१०३	ब्रह्म-प्रशंसा
	३१ रेखता	१६७०	गुरु महिमा और अध्यात्म ज्ञान
	३२ शब्द अलह टुक	१६५	आध्यात्मिक सिद्धांत
	३३ शब्द राग काफ़ी और राग फगुवा	२३०	"

२१५६

सन्	ग्रंथ नाम	पद्य संख्या	विवरण
	३४ शब्द राग गौरी और रागभैरव	१०४	आध्यात्मिक सिद्धांत
	३५ सतनामा या सत कबीर	७२	,,
	३६ सतसंग कौ अंग	३०	सत्संग महिमा
	३७ साध कौ अंग	४७	भक्त और भक्ति-निरूपण
	३८ सतसंग कौ अंग	३०	सत्संग महिमा
	३९ स्वाँस गुंजार	१५६७	प्राणायाम
	४० ज्ञानगुदड़ी	३०	आध्यात्मिक सिद्धांत
	४१ ज्ञानचौंतीसा	११५	,,
	४२ ज्ञानसरोदय	२००	संगीत और अध्यात्म सिद्धांत
	४३ ज्ञानसंबोध	५७०	संत महिमा
	४४ ज्ञानसागर	१६८०	अध्यात्म ज्ञान
१९१७-१९१८-१९१९			
	१ कायापंजी	८०	योग
	२ विचारमाला	९००	उपदेश
	३ विवेकसागर	३२५	उपदेश और गीत
१९२०-१९२१-१९२२			
	१ बीजक	१४८०	भक्ति, ज्ञान
	२ सुरति संवाद	३००	ब्रह्म-स्तुति
	३ ज्ञानचौंतीसा	१३०	ज्ञान और भक्ति

यदि इन सभी प्रतियों के नाम और विषय पर दृष्टि डाली जाय तो ज्ञात होगा कि कुछ ग्रंथ भिन्न नाम की प्रतियों में हैं और कुछ अन्य बड़े ग्रंथों के भाग मात्र है। यथा 'सतसंत कौ अंग' (३६) या 'साध कौ अंग' (३७) निश्चय ही कबीर जी के पद या कबीर जी की साखी के अंग हैं। यदि स्वतंत्र ग्रंथों की गिनती की जाय तो वे अधिक से अधिक ५६ होंगे। किंतु क्या ये सभी ग्रंथ प्रामाणिक हैं? कुछ ग्रंथ तो ऐसे हैं जो केवल काल्पनिक कथावस्तु के आधार पर हैं, जैसे बलख की पैज, मुहम्मद बोध अथवा कबीर गोरष की गुष्टि। शाह बलख, मुहम्मद और गोरखनाथ से कभी कबीर का संवाद हुआ ही न होगा क्योंकि ये सब कबीर के पूर्ववर्ती हैं। कबीरपंथी साधुओं ने कबीर साहब का महत्त्व बढ़ाने के लिए उनकी प्रशंसा में ये ग्रंथ लिख दिये होंगे।

नागरी प्रचारिणी सभा की खोज रिपोर्ट में कुछ ही ग्रंथों का लिपिकाल दिया गया है। इसके अनुसार सबसे पुराने हस्तलिखित ग्रंथ निम्नलिखित हैं :—

१	कबीर जी के पद	३	कबीर जी की साखी
२	कबीर जी की रमैनी	४	कबीर जी कौ कृत

इन ग्रंथों का लिपिकाल विक्रम संवत् १६४६ दिया गया है और रचना-काल संवत् १६०० । कबीर १६०० तक जीवित नहीं रहे यह निर्विवाद है। अतः ये ग्रंथ उनके द्वारा नहीं लिखे जा सकते; उनके शिष्यों द्वारा इनकी रचना कही जा सकती है। ये सभी ग्रंथ जोधपुर के राज्य-पुस्तकालय में सुरक्षित कहे गए हैं। मैंने जोधपुर के राज्य-पुस्तकालय से कबीर संबंधी सभी ग्रंथों की प्रति-लिपियाँ मँगवाईं। वहाँ से मुझे ८ हस्तलिखित प्रतियाँ प्राप्त हुईं जो निम्नलिखित हैं:—

जोधपुर राज्य पुस्त-कालय के ग्रंथ

१	कबीर गोरष गुष्ट	(पत्र संख्या ७)
२	कबीर जी की मात्रा	(,, १)
३	कबीर परिचय	(,, १३)
४	कबीर रैदास संवाद	(,, २)
५	कबीर साखी	(,, ३६)
६	कबीर धम्माल	(,, ११)
७	कबीर पद	(,, २४)
८	कबीर साखी	(,, ६)

इन प्रतियों में खोज रिपोर्ट द्वारा निर्दिष्ट 'कबीर जी कौ कृत' और 'कबीर जी की रमैनी' नहीं हैं। 'कबीर जी की साखी' और 'कबीर जी के पद' अवश्य हैं। किंतु जोधपुर राज्य पुस्तकालय से प्राप्त हुए एक ग्रंथ को छोड़कर किसी भी ग्रंथ में लिपिकाल नहीं दिया गया है। केवल 'कबीर गोरष गुष्ट' का काल संवत १७६५ दिया गया है। अतः खोज रिपोर्ट का प्रमाण संदिग्ध और अविश्वसनीय है।

मैंने कबीर संबंधी अनेक हस्तलिखित ग्रंथ देखे हैं किंतु उनके शुद्ध रूप के संबंध में मुझे विश्वास कम हुआ है। इसके अनेक कारण हैं :—

अनेक हस्तलिखित ग्रंथ

१. कबीर-पंथ के अनुयायी प्रमुखतः समाज की निम्नश्रेणी के होने के कारण साहित्य और भाषा के ज्ञान में अत्यंत साधारण होंगे। अतः हस्तलिपि-लेखन में उनसे बहुत सी भूलें हो सकती हैं।

२. कबीर का काव्य अधिकतर मौखिक ही रहा। वह गुरु के मुख में अधिक प्रभावशाली है, पुस्तक में नहीं। अतः कबीरपंथ में पुस्तक का महत्त्व गुरु से अपेक्षाकृत कम है। सद्गुरु का उपदेश 'कर्ण विभूषण' के रूप में स्वीकार किया जाना चाहिए, पुस्तक-पाठ से नहीं। इसलिए पुस्तक-पाठ सदैव अप्रधान समझा गया है। जब गुरु का उपदेश प्रधान हो गया तब परंपरागत पाठ में परिवर्तन होने की आशंका यथेष्ट हो जाती है। प्रत्येक गुरु उस पाठ में अपनी स्मरणशक्ति के अनुसार कम या अधिक परिवर्तन कर सकता है। फिर गुरु हो जाने पर तो अपनी ओर से घटाने और बढ़ाने का अधिकार भी वह रख सकता है। इस प्रकार प्रथम पाठ से यह उपदेश कितना दूर होगा, यह अनुमान किया जा सकता है। फिर युगों के प्रवाह में सिद्धांतों की रूप-रेखा में भी भिन्नता आ सकती है। नये सिद्धांतों के बीच में पड़ कर कविता की दिशा दूसरी ही हो जाती है।

३. कबीर के सिद्धांत जनता में व्यापक रूप से प्रचलित थे। उनके विचार भिन्न-भिन्न प्रांतों में भिन्न-भिन्न वर्ग के लोगों में प्रचारित होते रहे। अतः प्रांतीयता के दृष्टिकोण से अथवा अशिक्षित जनता के संपर्क में आने से उनके पदों और साखियों में बहुत भिन्नता आ सकती है। कबीर ग्रंथावली का पंजाबीपन इस बात का प्रमाण है। भाषा और भावों को इस भिन्नता से बचाने के लिए कभी कोई संघ और संगीति की आयोजना नहीं हुई। न कभी कोई ऐसा प्रयत्न हुआ जिससे भिन्न-भिन्न प्रांतों में प्रचलित वाणी को एक रूप दे दिया जाता जैसा कि बौद्ध या जैन धर्मों में हुआ करता था। योग्य और मान्य आचार्यों के विचार-विनिमय अथवा परामर्श से जो काव्य में एकरूपता आती वह प्रक्षिप्त अथवा भूले हुए सिद्धांतों को व्यवस्थित कर सकती। किंतु इस प्रकार के प्रयत्न कबीरपंथ में कभी नहीं हुए।

४. हस्तलिखित ग्रंथों में जो पंक्तियाँ लिखी जाती हैं वे एक पूरी लकीर की लंबाई में कभी पूर्ण होती हैं, कभी अपूर्ण। यहाँ तक कि शब्द भी टूट जाते हैं। प्रतिलिपि करने में ऐसे स्थलों पर अनेक भूलें हो जाती हैं। पंक्तियों

में शब्द भी आपस में जुड़े रहते हैं और वे शब्द स्पष्टतः आँखों के सामने न रहने से कभी-कभी प्रतिलिपियों में छूट जाते हैं। ऐसे प्रसंग अनेक बार हस्त-लिखित प्रतियों में पाये जाते हैं। इस संबंध में कबीर ग्रंथावली से एक उदाहरण दिया जा चुका है। एक पूरा शब्द जब पंक्ति के अंत में टूट जाता है तब कभी-कभी उसे दूसरी पंक्ति में जोड़ने से भ्रांति हो जाती है। विराम चिन्हों के अभाव में यह कठिनाई और भी बढ़ जाती है।

५. कहीं-कहीं अशुद्ध शब्द या चरण के नीचे बिंदु रखकर उसे छोड़ने का संकेत होता है या उस पर हरताल लगा दी जाती है किंतु प्रतिलिपि-कार उस बिंदु को न समझकर अथवा हरताल के हलके पड़ जाने से अशुद्ध शब्द या चरण की प्रतिलिपि कर ही लेता है। वह हाशिया में दिए हुए छोड़े गये शब्दों को पंक्तियों में जोड़ भी लेता है।

६. कहीं-कहीं पत्र-संख्या न डालने से पदों के क्रम में भी बहुत अड़चन पड़ जाती है। पृष्ठों के बजाय पत्रों पर ही संख्या लिखी जाती है। अतः एक पत्र की संख्या मिट जाने पर दूसरा पत्र अपने संदर्भ की सूचना नहीं दे सकता जब तक कि उसमें कोई टूटा हुआ शब्द या चरण न हो। इस कठिनाई से वह पत्र ग्रंथ में कहाँ जोड़ा जाय यह एक प्रश्न हो जाता है। यदि दो-तीन पत्रों के संबंध में ऐसी कठिनाई हो गई तो सारा हस्तलिखित ग्रंथ ही क्रम-विहीन हो जाता है। उदाहरण के लिए नागरी प्रचारिणी सभा द्वारा प्रकाशित कबीर ग्रंथावली में 'गोकल नाइक बीठुला मेरो मन लागौ तोहि रे' (पद ५) के बाद 'अब मैं पाइबौ रे ब्रह्म गियान' (पद ६) है किंतु जोधपुर-राज्य पुस्तकालय की 'अथ कबीर जी के पद' में पद ५ के बाद 'मन रे मन ही उलटि समाना' पद है जो कबीर ग्रंथावली में ८वाँ पद है। अनुमान होता है कि जिस मूल प्रति से जोधपुर-राज्य पुस्तकालय की प्रतिलिपि बनाई गई होगी उसका एक पत्र खो गया होगा।

७. कबीर के काव्य की प्रतियां स्वयं कवि द्वारा अथवा किसी संस्था द्वारा न लिखी जाकर भिन्न-भिन्न स्थानों में तथा भिन्न-भिन्न युगों में की गई हैं। छपाई के अभाव में प्रामाणिक प्रतियों की प्रतिलिपियों में भी अनेक अशुद्धियाँ आ जाती हैं। किसी प्रति की जितनी ही अधिक प्रतिलिपियाँ होंगी उसमें अशुद्धियों का अनुपात उतना ही अधिक बढ़ता जावेगा। फिर बड़ी रचना होने के कारण एक ही प्रति की प्रतिलिपियों में अनेक व्यक्तियों का हाथ हो सकता है। वहाँ

भूलें और भी अधिक हो सकती हैं। समानता का अभाव तो हो ही जायगा। फिर यदि लिपिकार अहंभाव से युक्त होगा तो वह पाठ को अपनी ओर से शुद्ध भी कर लेगा।

८. भाषा-विज्ञान के अनुसार अनेक पीढ़ियों में उच्चारण-भेद हो जाना स्वाभाविक है। अतः जब तक मूल प्रति या उससे की गई प्रामाणिक प्रति न मिले तब तक पाठ के संबंध में पूर्ण आश्वस्त होना अत्यंत कठिन है।

९. किसी रचना के भिन्न-भिन्न पाठों में ठीक पाठ चुनने का कार्य यदि किसी गुरु के द्वारा किया भी गया तो उसके चुनाव की उपयुक्तता भी संदिग्ध ही है। और यदि चुना हुआ पाठ मूल पाठ से भिन्न है तो फिर मूल पाठ आगे चलकर सदैव के लिए ही लोप हो जाता है।

इस प्रकार प्रतिलिपिकारों की अज्ञानता, समय का अत्याचार, गुरुओं की अहम्मन्यता, छपाई के अभाव में हस्तलेखन की कठिनाइयाँ, कविता के भिन्न-भिन्न प्रांतों में व्यापक और मौखिक प्रचार ने कबीर के काव्य को मूल से कितना विकृत किया होगा इसका अनुमान हम सरलता से कर सकते हैं। जब तक किसी प्राचीनतम प्रति का अन्य समकालीन प्रतियों से मिलान कर शुद्ध पाठ प्रस्तुत न किया जाय तब तक हम कबीर के शुद्ध पाठ के संबंध में संतुष्ट नहीं हो सकते।

उपर्युक्त समीक्षा को दृष्टि में रखते हुए कबीर की रचना का प्रामाणिक पाठ प्राप्त करना कठिन है। मेरे सामने अधिक से अधिक विश्वसनीय पाठ श्री आदि गुरु ग्रंथ साहब का ज्ञात होता है। श्री ग्रंथ साहब का संकलन पाँचवें गुरु श्री अर्जुनदेव ने सन् १६०४ (संवत् १६६१) में किया था। सन् १६०४ का यह पाठ अत्यंत प्रामाणिक है। इसका कारण यह है कि आदि श्री गुरु ग्रंथ सिक्खों का धार्मिक ग्रंथ है। यह ग्रंथ सिक्खों द्वारा 'देव स्वरूप' पूज्य होने के कारण अपने रूप में अक्षुण्ण है और इसके पाठ को स्पर्श करने का साहस किसी को नहीं हो सका। यहाँ तक कि एक-एक मात्रा को मंत्रशक्ति से युक्त समझकर उसे पूर्ववत् ही लिखने और छापने का क्रम चला आया है। यह ग्रंथ गुरुमुखी लिपि में है। जब गुरुमुखी लिपि से यह देवनागरी लिपि में छापा गया तब 'शब्द के स्थान शब्द' रूप में ही इसका रूपान्तर हुआ क्योंकि सिक्ख धर्म के अनुयायियों में विश्वास है कि 'महान पुरुषों की तरफ से जो

श्री गुरु ग्रंथ साहब

अक्षरों के जोड़-तोड़ मंत्र रूप दिव्य वाणी में हुआ करते हैं, उनके मिलाप में कोई अमोघ शक्ती होती है जिसको सर्वसाधारण हम लोग नहीं समझ सकते। परंतु उनके पठन-पाठन में यथातथ्य उच्चारन से ही पूर्ण सिद्धि प्राप्त हो सकती है। इसके सिवाय यह भी है कि श्री गुरु ग्रंथ साहिब जी के प्रतिशत ८० शब्द ऐसे हैं जो हिंदी पाठक ठीक-ठीक समझ सकते हैं। इस विचार के अनुसार ही यह हिंदी बीड़ गुरमुखी लिखत अनुसार ही रखी गई है अर्थात् केवल गुरमुखी अक्षरों के सथान हिंदी (देवनागरी) अक्षर ही किये गये हैं।' (प्रकाशक की विनय पृष्ठ १, भाई मोहनसिंह वैद्य)।[1] इस प्रकार आदि श्री गुरु ग्रंथ साहब जी का जो पाठ सन् १६०४ में गुरु अर्जुनदेव जी द्वारा प्रस्तुत किया गया था, वह आज भी वर्तमान है। किसी पंडित द्वारा वह नहीं 'शोधा' गया। अतः इस पाठ को हम अधिक से अधिक प्रामाणिक पाठ मान सकते हैं। फिर गुरुमुखी जिसमें श्री गुरु ग्रंथ साहब लिखा गया है, देवनागरी से अपेक्षाकृत कम प्रचलित है। अतः देवनागरी लिपि में प्रतिलिपिकारों से जितनी अशुद्धियों की संभावना हो सकती है उतनी गुरुमुखी लिपि की प्रतिलिपियों में नहीं।

गुरुमुखी लिपि में लिखे जाने पर भी कबीर के काव्य का व्याकरण पूर्वी हिंदी का रूप ही लिए हुए है। उसमें स्थान-स्थान पर पंजाबी प्रभाव अवश्य दृष्टिगत होता है किंतु प्रधान रूप से उसमें हमें पूर्वी हिंदी (अवधी) व्याकरण के रूप ही मिलते हैं। संस्कृत से आए हुए संज्ञा-प्रातिपदिकों (stems) के स्वरांत यद्यपि अवधी और पंजाबी में व्यंजनांत हो गए हैं तथापि पंजाबी में जो संयुक्त व्यंजन द्वित्व हो जाते हैं, वे अवधी में नहीं हैं। उदाहरणार्थ संस्कृत का 'अग्नि' पंजाबी में अग्ग या अग्गी हो गया है किंतु अवधी में आगी, अगन या अगनि है। कबीर ने अगनि ही का प्रयोग किया है, अग्गी का नहीं।

व्याकरण

अगनि भी जूठी पानी भी जूठा (बसंतु ७)

इस प्रकार अनेक संज्ञा शब्दों के रूप लिखे जा सकते हैं। पंजाबी में हम के लिए असां, तुम के लिए तुसी या तुसां और वे या उनके लिए ओन्ना है। कबीर ने अवधी के हम, तै, तुम, ते या तिन का ही प्रयोग किया है।

काजी **तै** कवन कतेब बखानी (आसा ८)

[1] आदि श्री गुरु ग्रंथ साहेब जी—मोहनसिंह वैद्य तरनतारन (अमृतसर) १९२७।

ऐसे घर **हम** बहुतु बसाए। (गउड़ी १३)

तुम धन धनी उदार तिआगी। (बिलावलु ७)

तिन कउ क्रिपा भई है अपार (बिलावलु ७)

'मैं' का प्रयोग पंजाबी और ब्रजभाषा तथा अवधी में समान रूप से है किंतु यह 'मैं' वहीं प्रयुक्त होता है जहाँ उसकी आवश्यकता सकर्मक क्रियाओं के भूतकालीन कृदंत के पहले होती है। प्रस्तुत 'मैं' संस्कृत 'मया' के करण-कारक के एक वचन का रूप है। सकर्मक क्रियाओं के भूतकालीन कृदंत के अतिरिक्त अन्य स्थलों पर ब्रजभाषा में 'हौं' का प्रयोग होता है। पंजाबी में यह 'हौं' 'हउ' के रूप में पाया जाता है। कबीर ने दो-एक स्थानों पर 'हउ' का प्रयोग अवश्य किया है।

'हउ' पूतु तेरा तूं बापु मेरा (आसा ३)

जहाँ बैसि **हउ** भोजनु खाउ। (बसंतु ७)

यह 'हउ' या तो ब्रजभाषा का प्रभाव है या पंजाबी का।

कबीर ने अपने काव्य में अवधी ही के कारक चिह्न प्रयुक्त किए हैं। कर्ता का **'ऐ'** चिह्न है (जो आकारांत शब्दों में सकर्मक भूतकाल की क्रिया के साथ आता है।)

भोगन **हारे** भोगिआ इसु मूरति के मुख छारु। (आसा १४)

कर्म कारक की विभक्ति **कउ** है।

हम **कउ** साथरु उन्ह **कउ** खाट (गौंड ६)

करण कारक की विभक्ति **सिउ** या **सौ** है।

रे जन मनु माधउ **सिउ** लाईऐ। (गउड़ी ६),

जउ तुम अपने जन **सौ** कामु (गउड़ी ४२),

संप्रदान कारक की विभक्ति **'कउ'** है।

कहु कबीर **ताकउ** पुनरपि जनम नही (गउड़ी ५३)

अपादान कारक की विभक्ति **ते** है।

प्रभ खंभ **ते** निकसै कै बिसथार। (बसंतु २),

संबंध कारक की विभक्ति **कै** या **कर** है।

दिल खलहल **जाके** जरद रु बानी (भैरउ १५)

मूए मरम को का **कर** जाना (गउड़ी ८),

अधिकरण कारक की विभक्ति **मैं** या **महि** है।

माइआ महि जिसु रखै उदासु (भैरउ १),

आगि लगाइ मंदर मैं सोवहि (गउड़ी ४४)

कहीं-कहीं खड़ी बोली और ब्रजभाषा की भी विभक्तियाँ हैं किंतु पंजाबी की नूं (कर्म) नें (करण) तों (अपादान) दा (संबंध) विच्च (अधिकरण) की विभक्तियाँ कहीं नहीं हैं। क्रियाओं के संबंध में कबीर ने बड़ी स्वतंत्रता ली है। कहीं खड़ी बोली, कहीं ब्रजभाषा और कहीं अवधी की क्रियाओं के रूप कबीर की कविता में पाये जाते हैं। अवधी में स्वरांत धातुएँ क्रिया-निर्माण में 'वा' ग्रहण करती हैं 'या' नहीं। कबीर ने अधिकतर 'वा' का प्रयोग ही किया है। 'अरु जे तहा कुसम रसु पावा। अकह कहा कहि का समझावा।' (गउड़ी ७५) वर्तमान, भूत और भविष्यत् काल के क्रिया रूप भी कविता में देखे जा सकते हैं। वर्तमान काल में

ना जानउ बैकुंठ है कहाँ। (भै० १६)

कहा नर गरबसि थोरी बात (सारंग १)

इस घर मह है सु तू ढूंढ़ि खाहि। (बसंत ८) रूप हैं।

हमें 'गरबसि' के साथ साथ भरहि (रामकली ५), बजावहि (रामकली ६), करहि (रामकली ६) आदि रूप भी मिलते हैं। भूतकाल में अवधी के प्रायः सभी क्रिया रूप पाये जाते हैं। अनेक स्थानों पर मध्यम पुरुष और अन्य पुरुष 'मेलसि' के स्थान पर 'मेलउ' का रूप मिलता है। (रामकली १) भविष्यत् काल में हमें 'मरिबो' (गउड़ी १२), चढ़िबो (गौंड़ ६), जैबो, ऐबो (धनासरी ४) आदि के रूप मिलते हैं :—

इंद्रलोक सिवलोकहि जैबो। ओछे तप करि बहुरि न ऐबो।

किंतु इसके साथ ही खड़ी बोली के भविष्यत् काल के रूप भी कहीं-कहीं दीख पड़ते हैं :—

अंत की बार लहैगी न आढ़ै (आसा ३४)

पंजाबी के ऐ, सी, होएगा आदि रूप नहीं मिलते। विस्तार भय से अनेक उदाहरण नहीं दिए जा सकते। इस विषय पर एक अलग ग्रंथ की आवश्यकता है किंतु यहाँ यह स्पष्ट देखा जा सकता है कि कबीर ने अवधी के क्रिया रूपों पर ही अपनी दृष्टि अधिक रक्खी है। फिर भी कुछ पंजाबी प्रभाव उनकी भाषा पर दृष्टिगत होते ही हैं :

१. कबीर ने रागु गउड़ी में जो 'बावन अखरी' लिखी है उसमें प्रत्येक

अक्षर का रूप गुरुमुखी वर्णमाला के व्यंजन के उच्चारण के अनुसार ही रक्खा गया है। उदाहरणार्थ हम 'क' 'ख' 'ग' 'घ' आदि को 'कका', 'खखा', 'गगा', 'घघा' के रूप में पाते हैं। गुरुमुखी उच्चारण के अनुरूप होते हुए भी वर्णमाला देवनागरी ही की है क्योंकि गुरुमुखी में 'स' और 'ह' कवर्ग के पूर्व ही आते हैं। देवनागरी में वे अंतस्थ के बाद आते हैं। कबीर ने 'स' और 'ह' को अंतस्थ के बाद ही रक्खा है। एक बात और है। गुरुमुखी में ऊष्म में केवल एक ही 'स' होता है। कबीर ने अपनी 'बावन अखरी' में 'स' 'ख' 'स' पर भी अपने संकेत लिखे हैं। प्रथम 'स' का अभिप्राय 'श' से है और 'ख' का अभिप्राय 'ष' से। इस प्रकार 'श', 'ष', 'स' तीनों प्रकार के ऊष्म वर्णों का समावेश 'बावन अखरी' में है जो देवनागरी वर्णमाला के अनुसार है।

२. पंजाबी में धातु से भूतकालिक कृदंत 'आ' अथवा 'इआ' लगा कर बनाए जाते हैं। 'इ' में अंत होने वाली धातुएँ 'आ' से जुड़ कर भूतकालिक कृदंत बनती हैं और 'आउ' अथवा 'आहु' में अंत होनेवाली अंत का 'उ' छोड़ कर 'इया' से जुड़ कर कृदंत बनती हैं। ऐसे अनेक उदाहरण कबीर की रचना में पाये जाते हैं :—

> जब हम एकु एकु करि **जानिआ**। तब लोगह काहे दुखु **मानिआ** (गउड़ी ३)
>
> अब मोहि जलत राम जलु **पाइआ**। राम उदकि तनु जलत **बुझाइआ**। (गउड़ी १),
>
> गुर चरण लागि हम बिनवता पूछत कह जीउ **पाइआ** (आसा १),
>
> जिह मरनै सभु जगतु **तरासिया**। (गउड़ी २०) आदि।

३. पंजाबी उच्चारण और शब्दावली का भी प्रयोग कुछ स्थलों पर हुआ है। 'न' के स्थान पर 'ण' का प्रयोग देखिए :—

> इतु संगति नाही **मरणा**। हुकुमु **पछाणि** ता खसमै **मिलणा**। (सिरी १)

पंजाबी के 'आखणा' (कहना) का प्रयोग भी दो-चार स्थलों पर हुआ है:—

> 'एस नो **आखीऐ** किआ करै बिचारी।' (गउड़ी ५०)
>
> ओइ हरि के संत न **आखीअहि** बानारसि के ठग। (आसा २)।

किंतु ये सब प्रभाव कबीर की कविता पर गौण रूप से पड़े हैं उसी प्रकार जैसे कि खड़ी बोली और ब्रजभाषा के प्रभाव। प्रमुखतः कबीर की कविता पूर्वी

हिंदी के रूप लिए हुए है और यह देख कर आश्चर्य होता है कि पंजाबी भाषा की धर्म पुस्तक श्री आदि गुरु ग्रंथ साहब में कबीर की कविता का पंजाबी संस्कार नहीं हुआ, वह अपने स्वाभाविक रूप में वर्तमान है। ऐसा प्रतीत होता है कि गुरु अंगद जी ने तत्कालीन अधिक से अधिक प्रामाणिक पाठ संग्रह किया होगा और उसको उसी रूप में अपनी नवीन लिपि (जो लंडा लिपि का परिष्करण कर श्री गुरु ग्रंथ साहब में नियोजित की थी) में लिख दिया। यही बात हमें नामदेव जी के पदों में मिलती है जो श्री गुरु ग्रंथ साहब में हैं। नामदेव की भाषा मराठी है और गुरु ग्रंथ साहब में नामदेव की वाणी मराठी रूप ही में सुरक्षित है। अतः हम श्री गुरु ग्रंथ साहब में आए हुए कबीर के कविता-पाठ को अधिक से अधिक प्रामाणिक मानते हैं। खेद की बात है कि अभी तक हिंदी विद्वानों का ध्यान गुरु ग्रंथ साहब में कबीर के काव्य की ओर आकर्षित नहीं हुआ। संभवतः कारण यह हो कि उक्त ग्रंथ गुरुमुखी लिपि में है और उस लिपि से हिंदी भाषा-भाषियों का परिचय नहीं है। किंतु अब तो श्री भाई मोहनसिंह वैद्य ने खालसा प्रचारक प्रेस तरनतारन (पंजाब) से और सर्व हिंद सिख मिशन ने अमृत प्रिंटिंग प्रेस, अमृतसर से देवनागरी लिपि में श्री गुरु ग्रंथ साहब का प्रकाशन किया है। नागरी प्रचारिणी सभा से प्रकाशित कबीर ग्रंथावली के परिशिष्ट में श्री श्यामसुंदरदास ने श्री गुरु ग्रंथ साहब में आए हुए कबीर के पदों को उद्धृत अवश्य किया है किंतु उसमें कुछ पद छूट गए हैं। श्री गुरु ग्रंथ साहब में कबीर की साखियों (सलोकों) की संख्या २४३ है। कबीर ग्रंथावली में केवल १६२ है। श्री गुरु ग्रंथ साहब में कबीर की पद संख्या २२८ है, कबीर ग्रंथावली में केवल २२२ है। इस प्रकार कबीर ग्रंथावली में ३६ साखियाँ (सलोक) और ६ पद नहीं हैं जो श्री गुरु ग्रंथ साहब में हैं। मैंने 'संत कबीर' का संपादन श्री गुरु ग्रंथ साहब के पाठ के अनुसार ही बड़ी सावधानी से किया है। इसमें कबीर का काव्य पाठ्य-भाग और संख्या की दृष्टि से ठीक ठीक प्रस्तुत किया गया है। अतः कबीर की काव्य संबंधी सभी सामग्री को देखते हुए 'संत कबीर' के पाठ को अधिक से अधिक प्रामाणिक समझना चाहिए।

संत कबीर का प्रस्तुत संस्करण

पंद्रहवीं शताब्दी में मध्यदेश एक नवीन युग की प्रतीक्षा कर रहा था। उसकी संस्कृति को एक आघात लगा था और उसके आदर्श खँडहरों का रूप ले रहे थे। मुसलमान शासकों के बढ़ते हुए प्रभाव ने इस्लाम को जितनी

अधिक शक्ति दी, उतनी ही अधिक व्यापकता भी। जनता के संपर्क में यह नया विश्वास दुर्निवार रूप से उसके जीवन के चारों ओर छा गया। हिंदू धर्म इस्लाम को अन्य विदेशी धर्मों की भाँति आत्मसात् न कर सका क्योंकि इस्लाम सत्ता के साथ उठा था और उसकी प्रवृत्ति हिंदुओं के प्रति विरोधशील थी। हिंदू और मुसलमानों के संस्कारों की इस विषमता ने धार्मिक वातावरण में एक अशांति उत्पन्न कर दी थी। अनेक हिंदू मुसलमान हो गए थे और अनेक अपनी सत्य-निष्ठा में संत्रस्त थे। एक शरीर में जैसे दो प्राण हों जिनमें निरंतर संघर्ष होता हो।

कबीर का परिचय

इस्लाम अपने व्यावहारिक रूप में सरल हो, उसमें आचार की कष्ट-साध्य परंपराएँ न हों, उसे राज्य-संरक्षण प्राप्त हो और उसे अंगीकार करने पर पदाधिकार का ऐश्वर्य प्राप्त हो, फिर भी जिसकी शिराओं में हिंदू दर्शन और शास्त्र की सूक्तियों ने रक्त बन कर प्राण-संचार किया हो उसे इस्लाम का सामीप्य शरीर पर उठे हुए व्रण की भाँति कष्टकर क्यों न होता?—फिर शासकों पर छाए हुए उलमाओं के प्रभाव ने—जो फ़ीरोज़ और सिकंदर पर विशेष रूप से था—जिस धार्मिक असहिष्णुता को जन्म दिया था, वह पद-पद पर सांप्रदायिकता की आग लगा रही थी? एक ओर तो राजनीति की निरंकुशता भय और आतंक की सृष्टि करती, दूसरी ओर सूफ़ियों की शांतिप्रिय और आध्यात्मिक दृष्टि हिंदू और मुसलमानों को अपनी ओर आकर्षित करते हुए उन्हें इस्लाम में श्रद्धा रखने के लिए प्रेरित करती थी। ऐसी स्थिति में हिंदू और मुसलमानों में किसी प्रकार का धार्मिक समझौता होना आवश्यक था। दोनों को एक ही देश में निवास करना था। दोनों में से एक भी अपना अस्तित्व खोने के लिए तैयार न था। विग्रह की नीति से दोनों की उन्नति का मार्ग बंद था। अतः एक धार्मिक समझौते के लिए परि-स्थितियाँ उत्पन्न हुईं और मध्यदेश में एक नवीन युग का निर्माण हुआ। उस युग का सूत्रपात करने में संत कबीर का प्रमुख हाथ था।

जो लोग हिंदू धर्म का शास्त्रीय ज्ञान रखते थे उन्हें तो धर्म की वास्तविक पहिचान थी। वे कट्टरता से अपने धर्म का समर्थन करते थे और प्राणों के भय से भी धर्म-परिवर्तन के लिए तैयार न थे किंतु जो लोग धर्म को केवल जीवनगत विश्वास के रूप में मानते थे, जिन्हें धर्म की गूढ़ बातों से परिचय नहीं था,

जो सांस्कृतिक आदर्शों का ज्ञान नहीं रखते थे उनके धर्म-परिवर्तन का प्रश्न विशेष महत्त्व नहीं रखता था। फिर पदाधिकार का प्रलोभन एवं भौतिक जीवन का ऐश्वर्य उन्हें किसी भी धर्म की ओर आकर्षित कर सकता था, चाहे वह धर्म इस्लाम हो अथवा अन्य कोई। ऐसी जनता को अपने धर्म पर दृढ़ रहने का बल केवल संत कबीर से ही प्राप्त हुआ। मुसलमानी संस्कृति में पोषित होकर भी उन्होंने ऐसे सर्वजनीन सिद्धांतों का प्रचार किया जिनमें हिंदू धर्म को भी अपने स्थान पर स्थिर रहने की दृढ़ता प्राप्त हुई। हिंदू धर्म के जाति-बंधन की यंत्रणा से मुक्ति दिलानेवाला 'संत मत' कबीर के द्वारा ही प्रवर्त्तित हुआ जिसमें भगवान की भक्ति के लिए जाति की निकृष्टता बाधक नहीं है। यह सत्य है कि रामानंद ने उपासना-क्षेत्र में जाति-बंधन को शिथिल कर दिया था और अपने शिष्यों में समाज के निम्न श्रेणी के भक्तों को भी स्थान दिया था किंतु वे इस सिद्धांत को जनता में प्रचलित नहीं कर सके। तत्कालीन प्रभावों से अप्रभावित रहकर केवल हिंदू धर्म के सांप्रदायिक क्षेत्र में किंचित् स्वतंत्रता जनता को अधिक संतुष्ट नहीं कर सकी। काशी के धार्मिक और सांस्कृतिक मंडल में स्वयं रामानंद अधिक स्वतंत्र नहीं हो सके। फिर वे अपनी संकुचित स्वतंत्रता से जनता को युग-धर्म का स्पष्ट संदेश भी मुक्त-कंठ से नहीं दे सकते थे। जो व्यक्ति सूर्योदय के पूर्व ही पंचगंगाघाट से स्नान कर लौट आता हो, इस भय से कि किसी की कलुष-दृष्टि कहीं उस पर न पड़ जाय, वह 'समभाव' के सिद्धांत को कहाँ तक व्यावहारिक रूप दे सकेगा, यह स्पष्ट है। दूसरी ओर कबीर ने तत्कालीन परिस्थितियों का बल एकत्र कर युग-धर्म को पहचान कर एक निर्भीक संप्रदाय की सृष्टि की जिसमें 'एकेश्वरवाद' और 'समत्त्व सिद्धांत' की प्रमुख भावना थी। एक ईश्वर की दृष्टि में 'कीड़ी' और 'कुंजर' समान हैं, ब्राह्मण और चाण्डाल में कोई भेद नहीं। दोनों में एक ही ब्रह्म की ज्योति है जिस प्रकार काली और सफ़ेद गाय में एक ही रंग का दूध है।

कबीर का महत्त्व

हिंदुओं के समस्त धार्मिक साहित्य की रचना संस्कृत में थी। फलतः धर्म-ग्रंथों का अध्ययन या तो ब्राह्मण पंडितों तक ही सीमित था अथवा ऐसे व्यक्तियों तक जो किसी भाँति चेष्टा कर विद्याध्ययन करने में समर्थ हो सकते थे। साधारण जनता धर्म के शास्त्रीय ज्ञान से संपर्क रखने में अपने को अयोग्य पाती थी। अतः धार्मिक सिद्धांतों को जनता के समीप तक उन्हीं की भाषा में

पहुँचाने का श्रेय कबीर को है। रामानंद की शक्ति का आश्रय लेकर कबीर ने साधारण भाषा के द्वारा अपने मार्मिक सिद्धांतों को अत्यंत स्पष्ट रूप में जनता के सामने रक्खा। उस समय भाषा बन रही थी। मध्यदेश की भाषा में उस समय साहित्य की रचना नहीं के बराबर थी। अमीर ख़ुसरो की पहेलियाँ जीवन के किसी गंभीर तथ्य का निरूपण नहीं कर सकी थीं, उनमें केवल मनोरंजन और कौतूहल था। नाथ संप्रदाय की रचनाओं में भी भाषा का माध्यम लिया गया किंतु वे समस्त रचनाएँ प्रश्नोत्तर के रूप में होकर केवल सिद्धांतोक्तियाँ ही बन कर रह गईं। यदि कहीं वर्णन भी है तो वह उपासना पद्धति के नीरस विशिष्ट रूपकों में। कबीर ने सब से पहले भाषा में जीवन की जटिल समस्याओं को सुलझाया और धर्म और दर्शन के ऐसे सिद्धांत निरूपित किए जो सरलता से जनता द्वारा हृदयंगम किए जा सकते थे। यह मानने में कोई आपत्ति नहीं हो सकती कि नाथपंथ की विचार-शैली और रूपक-रहस्य का प्रभाव कबीर पर विशेष रूप से पड़ा है। उन्होंने सिद्धांत और वाक्य भी नाथपंथ से प्राप्त किये हैं किंतु कबीर नाथपंथ के आदर्शों तक ही नहीं रुक गए। उन्होंने नाथपंथ से प्राप्त की गई सामग्री को अधिक व्यावहारिक और जन-सुलभ बनाने की चेष्टा की। जीवन के अंग-प्रत्यंग की समीक्षा कर उन्होंने धर्म और जीवन को इतना सरल और सुगम साधना-संपन्न बनाया कि वह प्राणों में निवास करने योग्य बन गया। यह प्रचार उन्हें जनता के बीच करना था। अतः स्पष्ट और शक्ति-संपन्न शैली ही इस उद्देश्य के उपयुक्त थी। जो कबीर के काव्य की तुलना तुलसी के काव्य से करना चाहते हैं उन्हें तत्कालीन भाषा और जनता की मनोवृत्ति नहीं भूल जानी चाहिए। कबीर को साहित्यिक भाषा का शिलान्यास करना था और अव्यवस्थित धार्मिक विषमता के प्रथम आघात को रोकने का प्राचीर खड़ा करना था। काव्य के अंगों का सुकुमार सौंदर्य जनता के जर्जरित विश्वासों को आकर्षित न कर सकता था। प्रेम और आख्यानक काव्य की प्रशस्त परंपरा ने तुलसी की अनेक कठिनाइयाँ हल कर दी थीं और वे अपने आदर्शों और घटना-सूत्रों को अधिक काव्य-सौंदर्य और प्रतिभा-पटों से सुसज्जित कर सकते थे। कबीर ने अपनी प्रखर भाषा और तीखी भाव-व्यंजना से जिस काव्य का सृजन किया वह साहित्यिक मर्यादा का अतिक्रमण भले ही कर गया हो किंतु उसके द्वारा साहित्य और धर्म में युगांतर अवश्य आया। हिंदुओं और मुसलमानों के बीच की सांप्रदायिक सीमा तोड़ कर उन्हें एक ही भाव-

धारा में बहा ले जाने का अपूर्व बल कबीर के काव्य में था। और यह बल जनता के बीच बोली और समझी जाने वाली रूखी और अपरिष्कृत भाषा के ऊपर अवलंबित था जिसमें धार्मिक पाखंडों और अंधविश्वासों को तोड़ने का विद्यु त-वेग था। जहाँ भारतीय समाज में हिंदू और मुसलमानों की बीच बंधुत्व भाव का अंकुर उत्पन्न करना कबीर का अभिप्राय था वहाँ व्यक्तिगत साधना की पुनीत अनुभूति भी उनका लक्ष्य था। अपने स्वाधीन और निर्भीक विचारों से उन्होंने सुधार के नवीन मार्ग की ओर संकेत किया। उनकी समदृष्टि ने ही उन्हें सर्वजनीन और सार्वभौमिक बना दिया।

कबीर के इस काव्य में जो जीवन संबंधी सिद्धांत हैं उनका आधार शास्त्रीय ग्रंथ नहीं हैं। उन्होंने इन सिद्धांतों को अनुभूत अथवा दैनिक जीवन में प्रतिदिन घटित होने वाली परिस्थितियों के प्रकाश में ही लिखा है। उनके तर्क दर्शन-सम्मत न हों किंतु वे सहज ज्ञान से ओत-प्रोत हैं। नग्न घूमने से यदि योग मिलता तो वन के सभी मृग मुक्त हो जाते।[१] सिर का मुंडन कराने से यदि सिद्धि पाई जा सकती तो मुक्ति की ओर भेड़ क्यों न चली गई?[२] इस प्रकार के तर्क पंडित और शास्त्रियों द्वारा मान्य नहीं हो सकते तथापि जनता के हृदय में सत्य और विश्वास की अमिट रेखा खींच सकते हैं क्योंकि इस प्रकार के तर्क उनके अनुभव से दूर नहीं हैं। इसीलिए जहाँ शास्त्रियों और समाज के उच्च वर्ग के व्यक्तियों में कबीर के सिद्धांतों के लिए आदर नहीं है, वहाँ साधारण जनता समस्त श्रद्धा-संपत्ति से उन सिद्धांतों का गीत गाती है। कबीर ने इन्हीं अनुभूत सिद्धांतों और जीवन की वास्तविकताओं द्वारा अपने काव्य को श्री-संपन्न किया है। पुस्तक-ज्ञान की अपेक्षा वे अनुभव-ज्ञान को अधिक महत्त्व देते हैं। पुस्तक-ज्ञान से तो अहंकार का विष उत्पन्न होता है किंतु जीवन के सहज ज्ञान से संतोष और विश्वास का मधुर रस मन में संचरित होने लगता है।

[१] नगन फिरत जो पाइऐ जोगु।
बन का मिरगु मुकति सभु होगु॥

राग़ु गउड़ी ४

[२] मूंड मुंडाए जो सिधि पाई।
मुकती भेड न गईआ काई॥ वही।

भारतीय जनश्रुतियों में संतों और महात्माओं की जीवन-तिथियों को कभी महत्त्व नहीं दिया गया। अंधविश्वास और अज्ञान से भरी हुई कहानियाँ, श्रद्धा और अलौकिक चमत्कार पर आस्था रखने की प्रवृत्तियाँ हमें अपने संतों और कवियों की ऐतिहासिक स्थिति का निर्णय करने की ओर उत्साहित नहीं करतीं। जिन कवियों ने देश और जाति के दृष्टिकोण को बदलकर उसकी उन्नति का मार्ग प्रशस्त किया है और हमारे लिए साहित्य की अमर निधि छोड़ी है, उनका जन्म-काल और जीवन का ऐतिहासिक दृष्टिकोण विस्मृति के अंधकार में छिपा हुआ है। कबीर की जन्म-तिथि भी हमारे सामने प्रामाणिक रूप में नहीं है।

कबीर की ऐतिहासिक स्थिति

कबीर-पंथ के ग्रंथों में कबीर के जीवन के संबंध में जितने अवतरण या संकेत मिलते हैं, उनमें जन्म-तिथि का उल्लेख नहीं है। ग्रंथों में तो कबीर को सत्पुरुष का प्रतिरूप मानते हुए, उन्हें सब युगों में वर्तमान कहा गया है। 'ग्रंथ भवतारण' में कबीर के वचनों का उल्लेख इस भाँति किया गया है कि 'मैंने युग-युग में अवतार धारण किये हैं और प्रकट रूप से मैं संसार में निरंतर वर्तमान हूँ। सतयुग में मेरा नाम सत सुकृत था, त्रेता में मुनींद्र, द्वापर में करुनाम और कलियुग में कबीर हुआ। इस प्रकार चारों युगों में मेरे चार नाम हैं और मैं इन युगों में माया रहित होकर निवास करता हूँ।'[1] इस दृष्टिकोण में ऐतिहासिक रूप से जन्म-तिथि के लिए कोई स्थान ही नहीं है। अन्य स्थलों पर कबीर को चित्रगुप्त और गोरखनाथ से वार्तालाप करते हुए लिखा गया है। 'अमरसिंहबोध' में कबीर और चित्रगुप्त में संवाद हुआ है जिसमें चित्रगुप्त ने

कबीर-पंथी ग्रंथ

[1]जुगन जुगन लीन्हा अवतारा, रहौं निरंतर प्रगट पसारा। १३७
सतयुग सत सुकृत कह टेरा, त्रेता नाम मुनेन्दहिं मेरा।
द्वापर में करुनाम कहाये, कलियुग नाम कबीर रखाये। १३८
चारों युग के चारों नाऊँ, माया रहित रहैं तिहि ठाऊँ।
सो जाघा पहुँचे नहि कोई, सुर नर नाग रहै मुख गोई। १३९

—ग्रंथ भवतारण। (धर्मदास लिखित) पृष्ठ ३१, ३२,
सरस्वती विलास प्रेस, नरसिंहपुर, सन् १९०८

कबीर द्वारा दी हुई राजा अमरसिंह की पवित्रता देखकर अपनी हार स्वीकार की है।[१] 'कबीर गोरष गुष्ट' में गोरख और कबीर में तत्त्व-सिद्धांत पर प्रश्नोत्तर हुए हैं और कबीर ने गोरख को उपदेश दिया है।[२] यह स्पष्ट है कि चित्रगुप्त देवरूप मान्य हैं और गोरखनाथ का आविर्भाव-काल कबीर की जन्म-तिथि से बहुत पहले है क्योंकि कबीर ने अपनी रचनाओं में नाथ आचार्यों को अनेक बार स्मरण किया है।[३] संत कबीर के चारों ओर जो आध्यात्मिक प्रकाश-मंडल खिंच रहा है, वह कबीर को एक मात्र दिव्य पुरुष के रूप में प्रदर्शित करना चाहता है। उसमें वास्तविक जन्म-तिथि खोजने की प्रेरणा भी नहीं है।

कबीर-पंथी साहित्य में एक ग्रंथ 'कबीर चरित्र बोध'[४] अवश्य है जिसमें कबीर की जन्म-तिथि का निर्देश है। "संवत् चौदह सौ पचपन विक्रमी जेष्ठ सुदी पूर्णिमा सोमवार के दिन सत्य पुरुष का तेज काशी के लहर तालाब में उतरा। उस समय पृथ्वी और आकाश प्रकाशित हो गया।" इस प्रकार कबीर-चरित्र बोध के अनुसार कबीर का आविर्भाव काल संवत् १४५५ (सन् १३९८) है। संभवतः इसी प्रमाण के आधार पर कबीर-पंथियों में कबीर के जन्म के संबंध में एक दोहा प्रचलित है:—

[१]साहेब गुप्त से कहे समुझाई। इनकू लोहा करो रे भाई।
लोहा से जो कंचन कियेऊ। यहि विधि हंसा निरमल भयऊ।
इतनी सुनि यम भये अधीना। फेर न तिनसे बोलन कीना॥
अमरसिंह बोध (श्री युगलानंद द्वारा संशोधित) पृष्ठ १०
श्रीवेङ्कटेश्वर प्रेस, बंबई, संवत् १९६३

[२]गोरष तेरी गंमि नहीं॥ संकर धरे न धीर।
तहाँ जुलाहा बंदगी॥ ठाढ़ा दास कबीर॥ ८३
कबीर गोरष गुष्ट, हस्तलिपि संवत् १७९५, पृष्ठ ९
(जोधपुर राज्य-पुस्तकालय)

[३]छिअ जती माइआ के बंदा।
नवै नाथ सूरज अरू चंदा॥
वही ग्रंथ, पृष्ठ २२०

[४]कबीर चरित्र बोध (बोधसागर, स्वामी युगलानंद द्वारा संशोधित) पृष्ठ ६, श्रीवेङ्कटेश्वर प्रेस, बंबई, संवत् १९६३

चौदह सौ पचपन साल गए, चन्द्रवार एक ठाट ठए।
जेठ सुदी बरसायत को, पूरनमासी प्रगट भए।

इस प्रकार कबीर का जन्म संवत् १४५५ में जेष्ठ पूर्णिमा चंद्रवार को कहा गया है। किंतु 'कबीर चरित्र बोध' की प्रामाणिकता के संबंध में कुछ कहा नहीं जा सकता और कबीर-पंथियों में प्रचलित जनश्रुति केवल विश्वास की भावना है, इतिहास का तर्कसम्मत सत्य नहीं।

प्रामाणिकता के दृष्टिकोण से कबीर का सर्वप्रथम उल्लेख संवत् १६४२ (सन् १५८५) में नाभादास लिखित भक्तमाल में मिलता है।

भक्तमाल

उसमें कबीर के संबंध में एक छप्पय लिखा गया है[1] :—

कबीर कानि राखी नहीं, वर्णाश्रम षट दरसनी॥
भक्ति विमुख जो धरम ताहि अधरम करि गायो।
जोग जग्य ब्रत दान भजन बिनु तुच्छ दिखायो॥
हिन्दू तुरक प्रमान रमैनी सबदी साखी।
पच्छपात नहिं बचन सबहि के हित की भाखी॥
आरूढ़ दसा ह्वै जगत पर, मुख देखी नाहिंन भनीं।
कबीर कानि राखी नहीं वर्णाश्रम षट दरसनी॥

इस छप्पय में कबीर के जीवन-काल का कोई निर्देश नहीं है, कबीर के धार्मिक आदर्श, समाज के प्रति उनका पक्षपात-रहित स्पष्ट दृष्टिकोण और उनकी कथन-शैली पर ही प्रकाश डाला गया है। इतना अवश्य कहा जा सकता है कि उनका आविर्भाव-काल ग्रंथ के रचना-काल संवत् १६४२ (सन् १५८५) के पूर्व ही होगा। श्री रामानंद पर लिखे गए छप्पय[2] से यह भी

[1]भक्तमाल (नाभादास), पृष्ठ ४६१-४६२

[2]श्रीरामानंद रघुनाथ ज्यों दुतिय सेतु जगतरन कियो।
अनंतानंद कबीर सुखा सुरसुरा पद्मावति नरहरि।
पीपा भावानंद, रैदास धना सेन सुरसर की घरहरि।
औरौ शिष्य प्रशिष्य एक तें एक उजागर।
विश्व मंगल आधार सर्वानंद दशधा के आगर॥
बहुत काल वपु धारि कै, प्रनत जनत कौ पार दियौ।
श्रीरामानंद रघुनाथ ज्यों दुतिय सेतु जगतरन कियौ॥ (भक्तमाल, छप्पय ३१)

स्पष्ट होता है कि कबीर रामानंद के शिष्य थे। यही एक महत्त्वपूर्ण बात भक्तमाल से ज्ञात होती है।

अबुलफ़ज़ल अल्लामी का 'आईन-ए-अकबरी'[1] दूसरा ग्रंथ है जिसमें कबीर का उल्लेख किया गया है। यह ग्रंथ अकबर महान् के राजत्व-काल के ४२वें वर्ष सन् १५९८ (संवत् १६५५) में लिखा गया था। इसमें कबीर का परिचय 'मुवाहिद' कह कर दिया गया है। इस ग्रंथ में कबीर का उल्लेख दो बार किया गया है। प्रथम बार पृष्ठ १२९ पर, द्वितीय बार पृष्ठ १७१ पर। पृष्ठ १२९ पर पुरुषोत्तम (पुरी) का वर्णन करते हुए लेखक का कथन है[2] :—

आईन-ए-अकबरी

"कोई कहते हैं कि कबीर मुवाहिद यहाँ विश्राम करते हैं और आज तक उनके काव्य और कृत्यों के संबंध में अनेक विश्वस्त जनश्रुतियाँ कही जाती हैं। वे हिंदू और मुसलमान दोनों के द्वारा अपने उदार सिद्धांतों और ज्योतित जीवन के कारण पूज्य थे और जब उनकी मृत्यु हुई, तब ब्राह्मण उनके शरीर को जलाना चाहते थे और मुसलमान गाड़ना चाहते थे।" पृष्ठ १७१ पर लेखक पुनः कबीर का निर्देश करता है[3] :—"कोई कहते हैं कि रत्तनपुर (सूबा अवध) में कबीर की समाधि है जो ब्रह्मैक्य का मंडन करते थे। आध्यात्मिक दृष्टि

[1] आईन-ए-अकबरी (अबुलफ़ज़ल अल्लामी) कर्नल एच० एस० जेरेट द्वारा अनूदित। भाग २, कलकत्ता, सन् १८९१

[2] 'Some affirm that Kabir Muahhid reposes here and many authentic traditions are related regarding his sayings and doings to this day. He was revered by both Hindu and Muhammadan for his catholocity of doctrine and the illumination of his mind, and when he died the Brahman wished to burn his body and Muhammadans to bury it.'

Ain-i-Akabari. page 129.

[3] Some say that at Rattanpur (Subah of Oudh) is the tomb of Kabir the assertor of the unity of God. The portals of the spiritual discernment were partly opened to him and he discarded the *effete* doctrines of his own time. Numerous verses in the Hindi Language are still extant of him containing important theological truths.

Ibid, page 171.

का द्वार उनके सामने अंशतः खुला था और उन्होंने अपने समय के सिद्धांतों का भी प्रतिकार कर दिया था। हिंदी भाषा में धार्मिक सत्यों से परिपूर्ण उनके अनेक पद आज भी वर्तमान हैं।"

आईन-ए-अकबरी की रचना-तिथि (सन् १५९८) में ही महाराष्ट्र संत तुकाराम का जन्म हुआ। तुकाराम ने अपने गाथा-अभंग ३२४१ में कबीर का निर्देश किया है :—"गोरा कुम्हार, रविदास चमार, कबीर मुसलमान, सेना नाई, कन्होपात्रा वेश्या...चोखामेला अछूत, जनाबाई कुमारी अपनी भक्ति के कारण ईश्वर में लीन हो गए हैं।"

किंतु आईन-ए-अकबरी और संत तुकाराम के निर्देशों से भी कबीर के आविर्भाव-काल का संकेत नहीं मिलता। यह अवश्य कहा जा सकता है कि कबीर की जन्म-तिथि संवत् १६५५ (सन् १५९८) के पूर्व ही होगी जैसा कि हम भक्तमाल पर विचार करते हुए कह चुके हैं।

विक्रम की सत्रहवीं शताब्दी के उत्तरार्ध में हमें एक और ग्रंथ मिलता है जिसमें कबीर के जीवन का विस्तृत विवरण है। वह है श्री अनंतदास लिखित 'श्री कबीर साहिब जी की परचई'। अनंतदास का आविर्भाव संत रैदास के बाद हुआ और उनका काल पंद्रहवीं शताब्दी का उत्तरार्ध माना गया है।[1] 'हस्तलिखित हिंदी पुस्तकों का संक्षिप्त विवरण' में पृष्ठ ८७ पर १२८ नं० की हस्तलिखित प्रति का समय सन् १६०० (संवत् १६५७) दिया गया है। इस प्रति के दो भाग हैं जिनमें पीपा और रैदास की जीवन परचियाँ दी गई हैं। कबीर की जीवन-परची का उल्लेख नहीं है। जब अनंतदास ने पीपा और रैदास की जीवन की परचियों के साथ कबीर की जीवन परची भी लिखी तब उसका समय भी सन् १६०० के आसपास ही होना चाहिए, यद्यपि इस कथन के लिए हम कोई प्रमाण प्रस्तुत नहीं कर सकते। अनंतदास लिखित जो 'श्री कबीर साहिब जी की परचई' की हस्तलिखित प्रति मेरे पास है, उसका लेखन काल संवत् १८४२ (सन् १७८५) है। यह हस्तलिखित प्रति 'वाणी हजार नौं' के गुटिका का भाग मात्र है[2] और किसी अन्य प्राचीन प्रति की

कबीर साहिब जी की परचई

[1] खोज रिपोर्ट १९०९-११

[2] इती श्री सरब गोटिको संपूरण ॥ वांणी हजार नौ ॥९०००॥ संपूरण भवेत्

नक़ल है। इस ग्रंथ में यद्यपि कबीर के जीवन की तिथि नहीं है तथापि उनके जीवन की कुछ महत्त्वपूर्ण घटनाओं का उल्लेख अवश्य है :—

१. वे जुलाहे थे और काशी में निवास करते थे।[१]
२. वे गुरु रामानंद के शिष्य थे।[२]
३. बघेल राजा वीरसिंह देव कबीर के समकालीन थे।[३]
४. सिकंदर शाह का काशी में आगमन हुआ था और उन्होंने कबीर पर अत्याचार किए थे।[४]
५. कबीर ने १२० वर्ष की आयु पाई।[५]

तिथियों को छोड़कर जिन महत्त्वपूर्ण बातों का उल्लेख इस 'परची' में किया गया है, उनसे कबीर के जीवन-काल के निर्णय में बहुत सहायता मिलेगी।

संवत् १६६१ (सन् १६०४) में सिख धर्म के पाँचवें गुरु श्री अर्जुनदेव जी ने श्री गुरु ग्रंथ साहब का संकलन किया।[६] इसमें कबीर के 'रागु' और

॥ संवत ॥१८४२॥ वियाला की मीती । पोस सुद सूकल पषे ॥तिथ्यौनांम पंचमी॥ ५ बार मंगलवार ॥ कै दिन सुभ भवेत् ॥ लिषते च नग्र कोलीया मध्ये । लिषतं च साध बिह्मदास॥ स्वामी जी श्री श्री श्री श्री श्री अमरदास जी ॥ कौ सिष ॥ स्वांमीजी श्रीश्रीश्रीश्रीश्रीश्री श्रीश्रीश्रीश्रीश्री श्री ॥ १०८ ॥ सेवादास जी कौ पोता सिष ॥

[१]कासी बसै जुलाहा ऐक । हरि भगतिन की पकडी टेक ॥

[२]नृमल भगति कबीर की चीह्नी । परदा षोल्या दछ्या दीन्ही ॥
भाग बडै रांमांनंद गुरु पाया । जां मन मरन का भरम गमाया॥

[३]बरसिंघदे बाघेलौ राजा । कबीर कारनि षोई लाजा ॥

[४]स्याह सिकंदर कासी आया । काजी मुलां कै मनि भाया ॥... ...
कहै सिकंदर ऐसी बाता । हूँ तोहि देषू दोजिग जाता ।... ...
गाफल संक न मांनै मोरी । अब देषूं साची करामाति तोरी ।
बांध्यौ पग मेल्ह्यौं जंजीरू । ले बोरयौ गंगा कै नीरू ॥...

[५]बालपनौं धोषा मैं गयौ । बीस बरस तै चेत न भयौ ॥
बरस सऊ लग कीनी भगती । ता पीछै पाई है मुक्ती ॥

[६]कबीर— हिज़ बायोग्रैफ़ी (डा० मोहनसिंह)

'सलोकु' का संग्रह अवश्य है किंतु उनके अविर्भाव काल के संबंध में किसी पद में भी संकेत नहीं है। अनेक स्थलों पर संतों की पंक्ति में हमें कबीर का उल्लेख अवश्य मिलता है।

श्री गुरू ग्रंथ साहब

१. नाम छीबा कबीरु जुलाहा पूरे गुरते गति पाई।[१] (नानक सिरी रागु)
२. नामा जैदेउ कबीरु त्रिलोचनु अउ जाति रविदासु चमिआरु चलईआ।[२] (नानक, रागु बिलावलु)
३. बुनना तनना तिआगि कै प्रीति चरन कबीरा।
   नीच कुला जोलाहरा भइओ गुनीय गहीरा ॥[३] (भगत धंनेजी, रागु आसा)
४. नामदेव कबीरु तिलोचनु सधना सैनु तरै।
   कहि रविदासु सुनहु रे संतहु हरिजीउ ते सभै सरै ॥[४] (भगत रविदास जी, रागु मारू)
५. हरि के नाम कबीर उजागर। जनम जनम के काटे कागर।[५] (भगत रविदास जी, रागु आसा)
६. जाकै ईदि बकरीदि कुल गऊ रे बधु करहि
   मानीअहि सेख सहीद पीरा।
   जाकै बाप वैसी करी पूत ऐसी सरी,
   तिहू रे लोक परसिध कबीरा ॥[६] (भगत रविदास जी, रागु मलार)
७. गुण गावै रविदासु भगतु जैदेव त्रिलोचन।
   नामा भगतु कबीरु सदा गावहि सम लोचन ॥[७]
   (सवईए महले पहले के)

[१] आदि श्री गुरु ग्रंथ साहब जी, पृष्ठ ३६
[२] वही पृष्ठ ४५१
[३] ,, पृष्ठ २६४
[४] ,, पृष्ठ ५१८
[५] ,, पृष्ठ २६४
[६] ,, पृष्ठ ६१८
[७] ,, पृष्ठ ७४८

इस ग्रंथ में हमें कबीर के निर्देश के साथ उनकी समकालीन किसी भी घटना का विवरण नहीं मिलता। नानक के उद्धरण में यह अवश्य संकेत है कि कबीर ने 'पुरे गुर' से 'गति पाई' थी। 'पूरे गुर' से क्या हम श्री रामानंद का संकेत पा सकते हैं? डा० मोहनसिंह ने 'पुरे गुर' से 'ब्रह्म' का अर्थ लगाया है[1]। यह अर्थ चिंत्य भी हो सकता है।

संवत् १७०२ (सन् १६५५) में प्रियादास द्वारा लिखी गई नाभादास के भक्तमाल की टीका में कबीर का जीवन-वृत्त विस्तारपूर्वक दिया गया है।

भक्तमाल की टीका

इस टीका से यह स्पष्ट होता है कि कबीर सिकंदर लोदी के समकालीन थे।[2] और सिकंदर लोदी ने कबीर के स्वतंत्र और 'अधार्मिक' विचार सुनकर उन पर मनमाने अत्याचार किए। इस टीका में भक्तमाल की इस बात का भी समर्थन किया गया है कि कबीर रामानंद के शिष्य थे और यह समर्थन कबीर के जीवन का विवरण देते हुए कबीर संबंधी छप्पय की व्याख्या में दिया गया है। सत्रहवीं शताब्दी के उत्तरार्ध में दबिस्तान का लेखक मोहसिन फ़ानी (मृत्यु हिजरी १०८१; सन् १६७०) भी कबीर को रामानंद का शिष्य बतलाते हुए लिखता है:—"जन्म से जुलाहे कबीर, जो ब्रह्मैक्य में विश्वास रखने वाले हिंदुओं में मान्य थे, एक बैरागी थे। कहते हैं कि जब कबीर आध्यात्मिक पथ-प्रदर्शक की खोज में थे, वे अच्छे अच्छे हिंदू और मुसलमानों के पास गए किंतु उन्हें कोई इच्छित व्यक्ति नहीं मिला। अंत में किसी ने उन्हें प्रतिभाशील वृद्ध ब्राह्मण रामानंद की सेवा में जाने का निर्देश किया।"

उपर्युक्त ग्रंथों से कबीर के जीवन की दो विशेष घटनाओं का पता हमें लगता है कि (१) वे रामानंद के शिष्य थे और (२) वे सिकंदर लोदी के समकालीन थे। यदि हम इन दोनों घटनाओं का समय निर्धारित कर सकें तो हमें कबीर का आविर्भाव-काल ज्ञात हो सकेगा। यह संभव हो सकता है कि प्रियादास की टीका और मोहसिन फ़ानी का दबिस्तान जो सत्रहवीं

[1] By one Perfect Guru is meant God, the Lord.
Kabir—His Biography, page 23

[2] देखि कै प्रभाव फेरि उपज्यो अभाव द्विज आयो पातसाह सो सिकंदर सुनांव है। भक्तमाल, पृष्ठ ४६६

शताब्दी की रचनाएँ हैं और कबीर के प्रथम निर्देश करने वाले ग्रंथों के बहुत बाद लिखी गई थीं, जनश्रुतियों से प्रभावित हो गई हों और सत्य से दूर हों। किन्तु समय निर्धारण की सुविधा के लिए अभी हमें उपर्युक्त दोनों घटनाओं को स्मरण रखना चाहिए।

सब से प्रथम हमें यह देखना चाहिए कि कबीर ने क्या अपनी रचनाओं में इन दोनों घटनाओं का उल्लेख किया है? प्रस्तुत ग्रंथ के पद और 'सलोक' जो

'संत कबीर' के उल्लेख

हमें लगभग प्रामाणिक मानना चाहिए, रामानंद के नाम का कहीं उल्लेख नहीं करते। एक स्थान पर एक पद अवश्य ऐसा मिलता है जिससे रामानंद का संकेत निकाला जा सकता है। वह पद है:—

सिव की पुरी बसै बुधि सारु।
तह तुम्ह मिलि कै करहु बिंचारु॥

(रागु भैरउ, १०)

'शिव की पुरी (बनारस) में बुद्धि के सार-स्वरूप (रामानंद ?) निवास करते हैं। वहाँ उनसे मिल कर तुम (धर्म-विचार) करो।' किंतु शिवपुरी का अर्थ 'बनारस' न होकर 'ब्रह्मरंध्र' भी हो सकता है जिस अर्थ में गोरखपंथी उसका प्रयोग करते हैं। स्वयं गोरखनाथ ने 'ब्रह्मरंध्र' के अर्थ में 'शिवपुरी' का प्रयोग किया है:—

अहूठ पटण मैं भिष्या करै। ते अवधू शिवपुरी संचरै।[1]

'साढ़े तीन (अहुठ) हाथ का शरीर ही वह नगर है जिसमें घूम फिर कर वह भिक्षा माँगता है। हे अवधूत! ऐसे धूर्त शिवलोक (ब्रह्मरंध्र) में संचरण करते हैं।' कबीर पर गोरखपंथ का प्रभाव विशेष रूप से था अतः रामानंद के अर्थ में यह पद संदिग्ध है। इसका प्रमाण हम नहीं मान सकेंगे।

सिकंदर लोदी के अत्याचार का संकेत कबीर के इन संकलित पदों में दो स्थानों पर मिलता है। पहला संकेत हमें रागु गौंड के चौथे पद में मिलता है और दूसरा रागु भैरउ के अट्ठारहवें पद में। दोनों पद नीचे लिखे जाते हैं:—

[1] गोरखबानी—डा० पीतांबरदत्त बडथ्वाल, पृष्ठ १६। साहित्य-संमेलन, प्रयाग। १९९९

१. भुजा बाँधि भिला करि डारिओ ।
हसती क्रोपि मूंड महि मारिओ ॥
हसति भागि कै चीसा मारै ।
इआ मूरति कै हउ बलिहारै ॥
आहि मेरे ठाकुर तुमरा जोरु ।
काजी बकिबो हसती तोरु ॥१॥
रे महावत तुझु डारउ काटि ।
इसहि तुरावहु घालहु साटि ॥
हसति न तोरै धरै धिआनु ।
वाकै रिदै बसै भगवानु ॥२॥
किआ अपराधु संत है कीन्हा ।
बाँधि पोटि कुंचर कउ दीना ॥
कुंचरु पोट लै लै नमसकारै ।
बूझी नहीं काजी अंधिआरै ॥३॥
तीनि बार पतीआ भरि लीना ।
मन कठोरु अजहू न पतीना ॥
कहि कबीर हमरा गोबिंदु ।
चउथे पद महि जनका जिंदु ॥४॥
(रागु गौंड, ४)

२. गंग गुसाइनि गहिर गंभीर ।
जंजीर बाँधि करि खरे कबीर ॥
मनु न डिगै तनु काहे कउ डराइ ।
चरन कमल चित रहिओ समाइ ॥१॥
गंगा की लहरि मेरी टुटी जंजीर ।
म्रिगछाला पर बैठे कबीर ॥२॥
कहि कबीर कोऊ संग न साथ ।
जल थल राखन है रघुनाथ ॥३॥
(रागु भैरउ १८)

इन पदों में क़ाज़ी द्वारा कबीर पर हाथी चलवाने और ज़ंजीर से बँधवा कर कबीर को गंगा में डुबाने का वर्णन है। किंतु इन दोनों पदों में सिकंदर

लोदी का नाम नहीं है। परची आदि ग्रंथों में सिकंदर लोदी ने जो जो अत्याचार किए थे, उनमें उपर्युक्त दोनों घटनाएँ सम्मिलित हैं। अतः यहाँ पर इन दोनों घटनाओं को सिकंदर लोदी के अत्याचारों के अंतर्गत मानने में अनुमान किया जा सकता है।

'आहि मेरे ठाकुर तुमरा जोरु' और 'गंगा की लहरि मेरी टूटी जंजीर' जैसी पंक्तियों से ज्ञात होता है कि कबीर ने अपने अनुभवों का वर्णन स्वयं ही किया है। यदि ये पद प्रामाणिक समझे जायँ तो कबीर सिकंदर लोदी के समकालीन माने जा सकते हैं।

कबीर और सिकंदर लोदी का समय

कबीर और सिकंदर लोदी के समय के संबंध में भारतीय इतिहासकारों ने जो तिथियाँ दी हैं, उनका उल्लेख इस स्थान पर आवश्यक है। वह इस प्रकार है :—

इतिहासकार का नाम	ग्रंथ	कबीर का समय	सिकंदर लोदी का समय
१ बील	ओरिएंटल बायोग्रेफ़िकल डिक्शनरी	जन्म सन् १४९० (संवत् १५४७)	यही समय
२ फ़रक़हार	आउट लाइन अव् दि रिलीजस लिटरेचर अव् इंडिया	सन् १४००-१५१८ (संवत् १४५७-१५७५)	सन् १४८९-१५१७ (संवत् १५४६-१५७४)
३ हंटर	इंडियन एम्पायर	सन् १३००-१४२० (संवत् १३५७-१४७७)	नहीं दिया।
४ ब्रिग्स	हिस्ट्री अव् दि राइज़ अव् दि मोहमडन पावर इन इंडिया	नहीं दिया।	सन् १४८८-१५१७ (संवत् १५४५-१५७४)

इतिहासकार का नाम	ग्रंथ	कबीर का समय	सिकंदर लोदी का समय
५ मेकालिफ़	सिख रिलीजन भाग ६	सन् १३६८-१५१८ (संवत् १४५५-१५७५)	सिंहासनासीन सन् १४८८ (संवत् १५४५)
६ वेसकट	कबीर एंड दि कबीर पंथ	सन् १४४०-१५१८ (संवत् १४९७-१५७५)	सन् १४९६ (संवत् १५५३) (जौनपुर गमन)
७ स्मिथ	आक्सफ़र्ड हिस्ट्री अव् इंडिया	सन् १४४०-१५१८ (संवत् १४९७ १५७५)	सन् १४८९-१५१७ (संवत् १५४६-१५७४)
८ भंडारकर	वैष्णविज़्म शैविज़्म एंड माइनर रिली-जस सिस्टिम्स	सन् १३९८-१५१८ (संवत् १४५५-१५७५)	सन् १४८८-१५१७ (१५४५-१५७४)
९ ईश्वरी-प्रसाद	न्यू हिस्ट्री अव् इंडिया	ईसा की पंद्रहवीं शताब्दी	सन् १४८९-१५१७ (संवत् १५४६-१५७४)

उपर्युक्त इतिहासकारों में प्रायः सभी इतिहासकार कबीर और सिकंदर लोदी को समकालीन होना मानते हैं। ब्रिग्स जिन्होंने अपना ग्रंथ 'हिस्ट्री अव् दि राइज़ अव् दि मोहमडन पावर इन इंडिया', मुसलमान इतिहासकारों के हस्तलिखित ग्रंथों के आधार पर लिखा है, वे सिकंदर लोदी का बनारस आना हिजरी ९०० (अर्थात् सन् १४९४) मानते हैं। वे लिखते हैं कि बिहार के हुसेनशाह शरकी से युद्ध करने के लिए सिकंदर ने गंगा पार की और

'दोनों सेनाएँ एक दूसरे के सामने बनारस से १८ कोस (२७ मील) की दूरी पर' एकत्र हुई ।[1] प्रियादास ने अपनी भक्तमाल की टीका में सिकंदर लोदी और कबीर में संघर्ष दिखलाया है । श्री सीतारामशरण भगवानप्रसाद ने उस टीका में एक नोट देते हुए लिखा है कि 'यह प्रभाव देख कर ब्राह्मणों के हृदय में पुनः मत्सर उत्पन्न हुआ । वे सब काशीराज को भी श्री कबीर जी के वश में जान कर, बादशाह सिकंदर लोदी के पास जो आगरे से काशी जी आया था पहुँचे ।'[2]

अतः श्री कबीर साहिब जी की परचई, भक्तमाल और संत कबीर के रागु गौंड ४ और रागु भैरउ १८ के आधार पर हम कबीर और सिकंदर लोदी को समकालीन मान सकते हैं । सिकंदर लोदी का समय सभी प्रमुख इतिहासकारों के अनुसार सन् १४८८ या १४८९ से सन् १५१७ (संवत् १५४५-४६ से १५७५) माना गया है । अतः कबीर भी सन् १४८८-८९ से १५१७ (संवत् १५४५-४६ से १५७५) के लगभग वर्तमान होंगे । डा० रामप्रसाद त्रिपाठी ने अपने लेख 'कबीर जी का समय'[3] में स्पष्ट करने की चेष्टा की है कि कबीर जी सिकंदर लोदी के समकालीन नहीं हो सकते । उन्होंने इसके दो प्रमुख कारण दिए हैं । पहला तो यह है कि जिन ग्रंथों के आधार पर सिकंदर का विश्वसनीय इतिहास लिखा गया है, उनमें कबीर और सिकंदर लोदी का संबंध कहीं भी उल्लिखित नहीं है । और दूसरा कारण यह है कि सिकंदर की धार्मिक दमन नीति की प्रबलता से कबीर अधिक दिनों तक अपने धर्म का प्रचार करते हुए जीवित रहने नहीं दिए जा सकते थे । किंतु ये दोनों कारण अधिक पुष्ट नहीं कहे जा सकते । अबुलफ़ज़ल ने अकबर का विश्वसनीय इतिहास लिखते हुए भी आईन अकबरी में तुलसीदास का उल्लेख नहीं किया है यद्यपि वे अकबर के समकालीन थे और प्रसिद्ध व्यक्तियों में गिने जाते थे । दूसरे कबीर ने जो धार्मिक प्रचार किया था वह तो हिंदू और मुसलमानी धर्म की सम्मिलित समालोचना के रूप में था । उनके सिद्धांतों में मूर्तिपूजा की उतनी ही अवहेलना

[1] हिस्ट्री अव् दि राइज़ अव् मोहमेडन पावर इन इंडिया (जान ब्रिग्स) लंदन १८२९, पृष्ठ ५७१-७२

[2] भक्तमाल सटीक, पृष्ठ ४७० सीतारामशरण भगवानप्रसाद (लखनऊ १९१३)

[3] हिंदुस्तानी, अप्रैल १९३२, पृष्ठ २०७-२१०

थी जितनी की 'मुल्ला के बाँग देने' की। अतः कबीर को एक बारगी ही विधर्मी प्रचारक नहीं कहा जा सकता और वे एक मात्र हिंदू धर्म प्रचारकों की भाँति मृत्यु-दंड से दंडित न किए गए हों। उन्हें दंड अवश्य दिया गया हो जिससे वे युक्तिपूर्वक अपने को बचा सके। फिर एक बात यह भी है कि सिकंदर को बनारस में रहने का अधिक अवकाश नहीं मिला जिससे वह कबीर को अधिक दिनों तक जीवित न रहने देता। इतिहासकारों ने सिकंदर लोदी का बनारस आगमन सन् १४६४ में माना है और उसे राजनीतिक उलझनों के कारण शीघ्र ही जौनपुर चले जाना पड़ा। अतः राजनीति में अत्यधिक व्यस्त रहने के कारण सिकंदर लोदी कबीर की ओर अधिक ध्यान न दे सका हो और कबीर जीवित रह गए हों। उसने चलते-फिरते क़ाज़ी को आज्ञा दे दी कि कबीर को दंड दिया जाय और वह दंड उनका जीवन समाप्त करने में अपूर्ण रहा हो। इस प्रकार जो दो कारण डा० रामप्रसाद त्रिपाठी ने दिये हैं, केवल उनके आधार पर यह निष्कर्ष निकालना कि कबीर सिकंदर लोदी के समकालीन नहीं हो सकते, मेरी दृष्टि से समीचीन नहीं है।

आरकिआलाजिकल सर्वे अव् इंडिया — इस संबंध में अभी एक कठिनाई शेष रह जाती है।

आरकिआलाजिकल सर्वे अव् इंडिया से ज्ञात होता है कि बिजली ख़ाँ ने बस्ती ज़िले के पूर्व में, आमी नदी के दाहने तट पर कबीरदास या कबीर शाह का एक स्मारक (रौज़ा) सन् १४५० (संवत् १५०७) में स्थापित किया।[1] बाद में सन् १५६७ में (१२७ वर्ष बाद) नवाब फ़िदाई ख़ाँ ने उसकी मरम्मत की। इसी स्मारक (रौज़ा) के आधार पर कबीर साहब के कुछ आधुनिक आलोचकों ने कबीर का निधन सन् १४५० (संवत् १५०७) या उसके कुछ पूर्व माना है। यदि कबीर का निधन सन् १४५० में हो गया था तो वे सिकंदर लोदी के समकालीन नहीं हो सकते जिसका राजत्वकाल सन् १४८८ या १४८६ से प्रारंभ होता है। अर्थात् कबीर के निधन के अड़तीस वर्ष बाद सिकंदर लोदी राज्यसिंहासन पर बैठा। आरकिआलाजिकल सर्वे अव् इंडिया में दिए गए अवतरण के संबंध में मेरा विचार अन्य आलोचकों से भिन्न है। सन् १४५० में

[1] आरकिआलाजिकल सर्वे अव् इंडिया (न्यू सीरीज़) नार्थ वैस्टर्न प्राविंसेज़ भाग २, पृष्ठ २२४।

स्थापित किए गए बस्ती ज़िले के स्मारक (रौज़े) को मैं कबीर का मरण-चिह्न नहीं मानता। गुरु ग्रंथ साहब में उल्लिखित कबीर के प्रस्तुत पदों में एक पद कबीर की जन्म-भूमि का उल्लेख करता है। उस पद के अनुसार कबीर की जन्म-भूमि मगहर में थी। रागु रामकली के तीसरे पद की कुछ पंक्तियाँ इस प्रकार हैं :—

तोरे भरोसे मगहर बसिओ, मेरे तन की तपति बुझाई।
पहिले दरसनु मगहर पाइओ, पुनि कासी बसे आई॥[1]

इस उद्धरण से ज्ञात होता है कि काशी में बसने के पूर्व कबीर मगहर में निवास करते थे। मगहर बस्ती के नैऋत्य (दक्षिण-पूर्व) में २७ मील दूर पर ख़लीलाबाद तहसील में एक गाँव है। मैं तो समझता हूँ कि कबीर मगहर में आमी नदी के दाहने तट पर ही निवास करते थे जहाँ बिजली ख़ाँ ने रौज़ा बनवाया है। बिजली ख़ाँ कबीर का बहुत बड़ा भक्त और अनुयायी था। जब उसने यह देखा कि मगहर के निवासी कबीर ने काशी में जाकर अक्षय कीर्ति अर्जित की है तब उसने अपनी भक्ति और श्रद्धा के आवेश में कबीर के निवास-स्थान मगहर में स्मृति-चिह्न के रूप में एक चबूतरा या सिद्धपीठ बनवा दिया जो कालान्तर में नष्ट हो गया। जब १२७ वर्ष बाद सन् १५६७ में नवाब फ़िदाई ख़ाँ ने उसकी मरम्मत की तो इस समय तक कबीर साहब का निधन हो जाने के कारण सन् १४५० ईस्वी में बिजली ख़ाँ द्वारा बनवाए गए स्मृति-चिह्न को लोगों ने या स्वयं नवाब फ़िदाई ख़ाँ ने समाधि या रौज़ा मान लिया। तभी से मगहर का वह स्मृति-चिह्न रौज़े के रूप में जनता में प्रसिद्ध हो गया। इस दृष्टिकोण से सन् १४५० का समय बिजली ख़ाँ द्वारा चिह्नित कबीर का प्रसिद्धि काल ही है और वे १४५० के बाद जीवित रहकर सिकंदर लोदी के समकालीन रह सकते हैं। अब कबीर की जन्मतिथि के संबंध में विचार करना चाहिए।

कबीर ने अपनी रचनाओं में जयदेव और नामदेव का उल्लेख किया है—

[1] संत कबीर, पृष्ठ १७८।

गुर प्रसादी जैदेउ नामां।
भगति कै प्रेमि इनही है जाना।[1]
(रागु गउड़ी ३६)

इससे ज्ञात होता है कि जयदेव और नामदेव कबीर से कुछ पहले हो चुके थे। यहाँ यह निर्धारित करना आवश्यक है कि जयदेव और नामदेव का आविर्भाव काल क्या है? नाभादास अपने ग्रंथ भक्तमाल में जयदेव का निर्देश करते हुए उन्हें गीत गोविंद का रचयिता मानते हैं।[2] किंतु अन्य छप्पयों की भाँति उसमें कोई तिथि-संवत् नहीं है। आलोचकों के निर्णयानुसार जयदेव लक्ष्मणसेन के समकालीन थे जिनका आविर्भाव ईसा की बारहवीं शताब्दी माना जाता है।[3] अतः जयदेव का समय भी बारहवीं शताब्दी है।

जयदेव और नामदेव का उल्लेख

भक्तमाल में नामदेव का भी उल्लेख है।[4] इस उल्लेख में विशेष बात

[1]संत कबीर, पृष्ठ ३९

[2]जयदेव कवि नृप चक्कवै, खंड मंडलेश्वर आन कवि।
प्रचुर भयो तिहुँ लोक गीत गोविंद उजागर।
कोक काव्य नवरस सरस सिंगार को सागर।
अष्टपदी अभ्यास करै तेहि बुद्धि बढावैं।
राधारमन प्रसन्न सुनन निश्चय तह आवैं॥
संत सरोरुह षंड कों पदमापति सुखजनक रवि।
जयदेव कवि नृप चक्कवै, खंड मंडलेश्वर आन कवि॥
(भक्तमाल, छप्पय ३९)

[3]संस्कृत ड्रामा—ए० बी० कीथ, पृष्ठ २७२

बारहवीं शताब्दी में एक दूसरे जयदेव भी थे जो नैयायिक और नाटककार थे। ये महादेव और सुमित्रा के पुत्र थे और कुंडिन (बरार) के निवासी थे। किंतु कबीर का तात्पर्य इनसे नहीं है।

[4]नामदेव प्रतिज्ञा निर्वही ज्यों त्रेता नरहरिदास की।
बालदशा बीठल पानि जाके पै पीयौ।
मृतक गऊ जीवाय परचौ असुरन कौं दीयौ॥
सेज सलिल तैं काढ़ि पहिल जैसी ही होती।

यह है कि नामदेव के भक्ति-प्रताप की महिमा कहते हुए नाभादास ने उनके समकालीन 'असुरन' का भी संकेत किया है। यह 'असुरन' यवनों या मुसलमानों का पर्यायवाची शब्द है। इस संकेत से यह निष्कर्ष निकलता है कि नामदेव का आविर्भाव उस समय हुआ था जब मुसलमान लोग भारत में—विशेषकर दक्षिण भारत में बस गए थे क्योंकि नामदेव का कुटुंब पहले नरसी बामणी गाँव (करहाल, सतारा) में ही निवास करता था। बाद में वह पंढरपुर में आ बसा था जहाँ नामदेव का जन्म हुआ। नामदेव के जन्म की परंपरागत तिथि शक ११९२ या सन् १२७० ईस्वी है। इस प्रकार वे ज्ञानेश्वरी के लेखक ज्ञानेश्वर के समकालीन थे। ज्ञानेश्वर ने अपनी ज्ञानेश्वरी सन् १२९० में समाप्त की थी।

नामदेव मूर्ति-पूजा के विरुद्ध थे। इस विचार को दृष्टि में रखते हुए डा० भंडारकर का कथन है कि 'नामदेव का आविर्भाव उस समय हुआ होगा जब मुसलमानी आतंक प्रथम बार दक्षिण में फैला होगा। दक्षिण में मुसलमानों ने अपना राज्य चौदहवीं शताब्दी के प्रारंभ में स्थापित किया। मूर्तिपूजा के प्रति मुसलमानों की घृणा को धार्मिक हिंदुओं के हृदय में प्रवेश पाने के लिए कम से कम सौ वर्ष लगे होंगे। किंतु इससे भी अधिक स्पष्ट प्रमाण कि नामदेव का आविर्भाव उस समय हुआ जब मुसलमान महाराष्ट्र प्रदेश में बस गए थे, स्वयं नामदेव के एक गीत (नं० ३६४) से मिलता है जिसमें उन्होंने तुरकों के हाथ से मूर्तियों के तोड़े जाने की बात कही है। हिंदू लोग पहले मुसलमानों ही को 'तुरक' कहा करते थे। इस प्रकार नामदेव संभवतः चौदहवीं शताब्दी के लगभग या उसके अंत ही में हुए होंगे।'[1] पुनः डा० भंडारकर का कथन है कि नामदेव की मराठी ज्ञानेश्वर की मराठी से अधिक अर्वाचीन है जब कि नामदेव ज्ञानेश्वर के समकालीन थे। फिर नामदेव की हिंदी रचनाएँ भी तेरहवीं शताब्दी की अन्य हिंदी रचनाओं से अधिक अर्वाचीन हैं। इस कारण नाम-

देवल उलट्यो देखि सकुच रहे सब ही सोती ॥
'पण्डुरनाथ' कृत अनुग ज्यों छानि सुकर छाई घास की ।
नामदेव प्रतिज्ञा निर्बही ज्यों त्रेता नरहरिदास की ॥
(भक्तमाल, छप्पय ३८)

[1] वैष्णविज्म, शैविज़्म एंड माइनर रिलीजस सिस्टिम्स—(भंडारकर), पृष्ठ ९२

देव का आविर्भाव तेरहवीं शताब्दी के बाद ही हुआ। नामदेव का परंपरागत आविर्भाव-काल जो ज्ञानेश्वर के साथ तेरहवीं शताब्दी में रक्खा जाता है, ऐतिहासिकता के विरुद्ध है।

प्रो० रानाडे का मत है कि नामदेव ज्ञानेश्वर के समकालीन ही थे और परंपरागत उनका आविर्भाव-काल सही है। नामदेव की कविता में भाषा की अर्वाचीनता इस कारण है कि नामदेव की कविता बहुत दिनों तक मौखिक रूप से जनता के बीच में प्रचलित रही और युगों तक मुख में निवास करने के कारण कविता की भाषा समय-क्रम से अर्वाचीन होती गई। जनता के प्रेम और प्रचार ने ही कविता की भाषा को आधुनिकता का रूप दे दिया। मूर्ति तोड़े जाने के प्रसंगोल्लेख के संबंध में प्रो० रानाडे का कथन है कि नामदेव का यह निर्देश अलाउद्दीन ख़िलजी के दक्षिण पर आक्रमण करने के संबंध में है।

प्रो० रानाडे का विचार अधिक युक्तिसंगत है। नामदेव की कविता की आधुनिकता बहुत से पुराने हिंदी कवियों की कविता की आधुनिकता के समकक्ष है। जगनायक, कबीर, मीरां आदि की कविताओं में भी भाषा बहुत आधुनिक हो गई है, क्योंकि ये कविताएँ जनता के द्वारा शताब्दियों तक गाई गई हैं और उनकी भाषा में बहुत परिवर्तन हो गए हैं। भाषा के आधुनिक रूप के आधार पर हम मीरां, कबीर या जगनायक का काल-निरूपण नहीं कर सकते। यही बात नामदेव की काव्य-भाषा के संबंध में कही जा सकती है। अतः भाषा की आधुनिकता नामदेव के आविर्भाव-काल को परवर्ती नहीं बना सकती। प्रो० रानाडे ने अलाउद्दीन ख़िलजी की सेना के द्वारा दक्षिण भारत के आक्रमण में मूर्ति तोड़ने का जो मत प्रस्तुत किया है वह फ़रिश्ता की तवारीख़ से भी पुष्ट होता है। फ़रिश्ता की तवारीख़ का अनुवाद ब्रिग्स ने किया है। उसमें स्पष्ट निर्देश है कि ७१० वें वर्ष में सुलतान ने मलिक काफ़ूर और ख़्वाजा हजी को एक बड़ी सेना के साथ दक्षिण में द्वारसमुद्र और मआबीर (मलाबार) को जीतने के लिये भेजा, जहाँ स्वर्ण और रत्नों से संपत्तिशाली बहुत मंदिर सुने गए थे। उन्होंने मंदिरों से असंख्य द्रव्य प्राप्त किया जिसमें बहुमूल्य रत्नों से सजी हुई स्वर्ण मूर्तियाँ और पूजा की अनेक क़ीमती सामग्रियाँ थीं।[1]

---

[1] हिस्ट्री अव् दि राइज अव् दि मोहमडन पावर इन इंडिया (जान ब्रिग्स) भाग १, पृष्ठ ३७३।

इस प्रकार प्रो० रानाडे के मतानुसार नामदेव का आविर्भाव तेरहवीं शताब्दी के अंत में ही मानना चाहिए। जयदेव और नामदेव के आविर्भाव-काल को दृष्टि में रखते हुए हम यह कह सकते हैं कि कबीर का समय तेरहवीं शताब्दी के अंत या चौदहवीं शताब्दी के प्रारंभ के बाद ही होना चाहिए क्योंकि कबीर ने जयदेव और नामदेव को अपने पूर्व के भक्तों की भाँति श्रद्धापूर्वक स्मरण किया है।

इस प्रसंग में एक उल्लेख और महत्वपूर्ण है। 'श्री पीपाजी की बाणी'[1] में हमें कबीर की प्रशंसा में पीपा जी का एक पद मिलता है। वह पद इस प्रकार है :—

> जो कलि मांझ कबीर न होते।
> तौ ले··वेद अरु कलिजुग मिलि करि भगति रसातलि देते॥
> अगम निगम की कहि कहि पांडे फल भागोत लगाया।
> राजस तामस स्वातक कथि कथि इनही जगत भुलाया॥
> सरगुन कथि कथि मिष्टा षवाया काया रोग बढ़ाया।
> निरगुन नीम पीयौ नही गुरुमुष तातैं हाँटै जीव बिकाया॥
> बकता श्रोता दोऊं भूले दुनीयाँ सबै भुलाई।
> कलि बिछूं की छाया बैठा, क्यूं न कलपना जाई॥
> अंध. लुकटीयाँ गही जु अंधै परत कूंप कित थोरै।
> अबरन बरन दोऊंसे अंजन, आँषि सबन की फोरै॥
> हम से पतित कहा कहि रहेते कौंन प्रतीत मन धरते।
> नांनां बांनी देषि सुनि श्रवनां बहौ मारग अणसरते॥
> त्रिगुण रहत भगति भगवंत की तिहि बिरला कोई पावै।
> दया होइ जोइ कृपानिधान की तौ नांम कबीरा गावै॥
> हरि हरि भगति भगत कन लीना त्रिबधि रहत थित मोहे।
> पाषंड रूप भेष सब कंकर ग्यांन सुपलै सोहे॥
> भगति प्रताप राष्यबे कारन निज जन आप पठाया।
> नांम कबीर साच परकास्या तहाँ पीपै कछु पाया॥

पीपा का जन्म सन् १४२५ (संवत् १४८२) में हुआ था। जब पीपा ने कबीर की प्रशंसा मुक्तकंठ से की है तो इससे यह सिद्ध होता है कि या तो कबीर

[1] हस्तलिखित प्रति सरब गोटिका सं० १८४२, पत्र १८८

पीपा से पहले हो चुके होंगे अथवा कबीर ने पीपा के जीवन-काल में ही यथेष्ट ख्याति प्राप्त कर ली होगी। भक्तमाल के अनुसार पीपा रामानंद के शिष्य थे अतः कबीर भी रामानंद के संपर्क में आ सकते हैं। इतना तो स्पष्ट ही है कि कबीर सन् १४२५ (संवत् १४८२) के पूर्व ही हुए होंगे। अतः यह कहा जा सकता है कि कबीर का जन्म संवत् तेरहवीं शताब्दी के अंत या चौदहवीं शताब्दी के प्रारंभ से लेकर संवत् १४८२ के मध्य में होना चाहिए।

जन्म-तिथि

कबीर के संबंध में जिन ग्रंथों पर पहले विचार किया जा चुका है उनमें कोई भी कबीर की जन्म-तिथि का उल्लेख नहीं करते। केवल 'कबीर चरित्र बोध' में कबीर का जन्म 'चौदह सौ पचपन विक्रमी जेष्ठ सुदी पूर्णिमा सोमवार' को स्पष्टतः लिखा है। डा० माताप्रसाद गुप्त ने एस० आर० पिल्ले की इंडियन क्रोनोलॉजी के आधार पर गणित कर यह स्पष्ट किया है कि संवत् १४५५ की जेष्ठ पूर्णिमा को सोमवार ही पड़ता है। डा० श्यामसुंदरदास ने कबीर-पंथियों में प्रचलित दोहे:—

चौदह सौ पचपन साल गए, चन्द्रवार इक ठाट ठए।
जेठ सुदी बरसायत को, पूरनमासी प्रगट भए॥

के आधार पर 'गए' को व्यतीत हो जाने के अर्थ में मान कर कबीर का जन्म संवत् १४५६ सिद्ध करने का प्रयत्न किया है किंतु गणित करने से स्पष्ट हो जाता है कि ज्येष्ठ पूर्णिमा संवत् १४५६ को चंद्रवार नहीं पड़ता। अतः कबीर की जन्मतिथि के संबंध में संवत् १४५५ की ज्येष्ठ पूर्णिमा ही अधिक प्रामाणिक जान पड़ती है।

रामानंद का शिष्यत्व

अब यदि कबीर का जन्म संवत् १४५५ (सन् १३९८) में हुआ था तो क्या वे रामानंद के शिष्य हो सकते हैं? डा० मोहनसिंह ने अपनी पुस्तक 'कबीर—हिज़ बायोग्रेफ़ी' में कबीर को रामानंद का शिष्य नहीं माना है। उनका कथन है कि वे कबीर के जन्म के बीस वर्ष पूर्व ही महाप्रयाण कर चुके थे। मैं नहीं समझ सकता कि किस आधार पर डा० सिंह ऐसा लिखते हैं। वे रामानंद की मृत्यु, श्री गणेशसिंह लिखित अत्यंत आधुनिक पंजाबी पुस्तक भारत-मत-दर्पण के अनुसार सन् १३५४ में लिखते हैं और कबीर का जन्म सन् १३९८ में। उपयुक्त सन् निर्णय के अनुसार रामानंद कबीर के जन्म लेने के ४४ वर्ष पूर्व ही अपना जीवन समाप्त कर चुके होंगे

बीस वर्ष पूर्व नहीं, जैसा कि वे लिखते हैं। वे तो यहाँ तक कहते हैं कि कबीर ने अपने काव्य में अपने मनुष्य-गुरु का नाम कहीं लिखा भी नहीं इसलिए कबीर का गुरु मनुष्य-गुरु नहीं था वह केवल ब्रह्म, विवेक या शब्द था।[१] और इसके प्रमाण में वे गुरु ग्रंथ में आए हुए निम्नलिखित पद उद्धृत करते हैं :—

१. माधव जल की पिआस न जाइ।

... ...

तू सतिगुरु हउ नउ तनु चेला
कहि कबीर मिलु अंत की बेला।

(रागु गउड़ी २)

२. संता कउ मति कोई निंदहु संत राम है एकु रे।
कहु कबीर मैं सो गुरु पाइआ जाका नाउ बिबेकु रे।

(रागु सूही ५)

इसमें कोई संदेह नहीं है कि कबीर ने अपने गुरु का नाम अपने काव्य में नहीं लिया है किंतु इसका कारण उनके हृदय में गुरु के प्रति अपार श्रद्धा का होना कहा जा सकता है। कबीर ने ईश्वर तथा विवेक को भी अपना गुरु कहा[२] किंतु इससे यह सिद्ध नहीं होता कि कबीर का कोई मनुष्य-गुरु था ही नहीं। हमें कबीर की रचना में ऐसे पद भी मिलते हैं जिनमें कबीर ने अपने गुरु से संसार की उत्पत्ति और विनाश समझा कर कहने की विनय की है।

गुर चरण लागि हम बिनवता पूछत कहु जीउ पाइआ।
कवन काज जगु उपजै बिनसै कहु मोहि समझाइआ॥

(रागु आसा १)

[१]कबीर—हिज़ बायोग्रेफ़ी, पृष्ठ ११, १४

We must therefore conclude that when there is no mention of the name as that of the Guru, we are to take that fact as the Non-existance of a personal teacher and that the real Guru is the Shabad itself.

[२]कहु कबीर मैं सो गुरु पाइआ जाका नाउ बिबेकु रे। (रागु सूही ५)

(श्री गुरु के चरणों का स्पर्श करके मैं विनय करता हूँ और पूछता हूँ कि मैंने यह प्राण क्यों पाए हैं? यह जीव संसार में क्यों उत्पन्न और नष्ट होता है? कृपा कर मुझे समझा कर कहिए।)

एक स्थान पर कबीर ने अपने गुरु का संकेत भी किया है :—

सतिगुर मिलेआ मारगु दिखाइआ।
जगत पिता मेरै मनि भाइआ॥

रागु आसा ३

(जब मुझे सतगुरु मिले तब उन्होंने मुझे मार्ग दिखलाया जिससे जगत-पिता मेरे मन को भाये—अच्छे लगे)।

और 'गुर प्रसादि मैं सभु कछु सूझिआ' (रागु आसा ३) में वे अपने ही अनुभव की बात कहते हैं। आगे चल कर वे इसी को दुहराते हैं :—

गुर परसादी हरि धन पाइओ।
अंते चल दिआ नालि चलिओ॥

रागु आसा १९

(मैंने गुरु के प्रसाद से ही यह हरि (रूपी) धन पाया है अंत में नाड़ी चली जाने पर हम भी वहाँ से चल सकते हैं।)

इन पदों को ध्यान में रखते हुए हम कबीर के 'मनुष्य-गुरु' की कल्पना भली भाँति कर सकते हैं। फिर कबीर की रचना में कुछ ऐसे अवतरण भी हैं जहाँ गुरु और हरि के व्यक्तित्व में भेद जान पड़ता है, दोनों एक ही ज्ञात नहीं होते। उदाहरणार्थ :—

सिमरि सिमरि हरि हरि मनि गाईऐ।
इहु सिमरनु सतिगुर ते पाईऐ॥

रागु रामकली ६

(उस स्मरण से तू बार-बार हरि का गुण गान मन में कर और यह स्मरण तुझे सतगुर से ही प्राप्त होगा।) दूसरा उदाहरण लीजिए :—

बार बार हरि के गुन गावउ।
गुर गमि भेदु सु हरि का पावउ॥

रागु गउड़ी ७७

(रोज़-रोज़ या बारंबार हरि के गुण गाओ और गुरु से प्राप्त किए गए रहस्य से हरि को प्राप्त करो।) अथवा

अगम अगोचरु रहै निरंतरि गुर किरपा ते लहीऐ ।
कहु कबीर बलि जाउ गुर अपने सत संगति मिलि रहीऐ ॥

राग गउड़ी, ४८

(वह अगम है, इंद्रियों से परे है, केवल गुरु की कृपा से ही उसकी प्राप्ति हो सकती है। कबीर कहता है कि मैं अपने गुरु की बलि जाता हूँ। उन्हीं की अच्छी संगति में मिल कर रहना चाहिए।)

इस प्रकार के बहुत से उदाहरण दिए जा सकते हैं जिनमें कबीर के 'मनुष्य-गुरु' होने का प्रमाण है। अब यह निश्चित करना है कि जब कबीर के 'मनुष्य-गुरु' होने का प्रमाण हमें मिलता है तो क्या रामानंद उनके गुरु थे ?

भक्तमाल में यह स्पष्टतः लिखा है कि रामानंद के शिष्यों में कबीर भी एक थे।[1] यह कहा जा सकता है कि कबीर रामानंद के 'प्रशिष्य' हो सकते हैं और उनका काल रामानंद के काल के बाद हो सकता है किंतु भक्त-माल में दी हुई नामावली में कबीर के नाम को जो प्रधानता दी गई है उससे यह स्पष्ट होता है कि कबीर रामानंद के शिष्यों में ही होंगे। हम पीछे देख चुके हैं कि दबिस्तान का लेखक मोहसिन फ़ानी (हिजरी १०८१, सन् १६७०) और नाभादास के भक्तमाल की टीका लिखने वाले प्रियादास (सन् १६५५) कबीर को रामानंद का शिष्य लिख चुके हैं। प्रियादास की टीका से प्रभावित होकर अन्य ग्रंथकारों ने भी कबीर को रामानंद का शिष्य माना है। दूसरी बात जो भक्तमाल से ज्ञात होती है वह यह है कि रामानंद को बहुत लंबी आयु मिली। 'बहुत काल वपु धारि कै' से यह बात स्पष्ट होती है। अन्य

[1] श्री रामानंद रघुनाथ ज्यों दुतिय सेतु जग तरन कियो।
अनन्तानन्द कबीर सुखा सुरसुरा पद्मावति नरहरि।
पीपा भावानन्द रैदास धना सेन सुरसर की घरहरि ॥
औरौ शिष्य प्रशिष्य एक तें एक उजागर।
विश्वमंगल आधार सर्वानंद दशधा के आगर ॥
बहुत काल बपु धारि कै प्रनत जनन कौं पार दियौ।
श्री रामानंद रघुनाथ ज्यौं दुतिय सेतु जग तरन कियौ ॥

भक्तमाल, छप्पय ३१

भक्तों के संबंध में नाभादास ने लंबी आयु की बात नहीं लिखी। इससे ज्ञात होता है कि रामानंद को 'असाधारण' आयु मिली होगी, तभी तो उसका संकेत विशेष रूप से किया गया। अब हमें यहाँ रामानंद का समय निर्धारित करने की आवश्यकता है।

रामानंद ने वेदांत-सूत्र का जो भाष्य लिखा है उसमें उन्होंने अमलानंद रचित वेदांत कल्पतरु का उल्लेख (१, ४, ११) किया है।

रामानंद का समय

डा० भंडारकर ने अमलानंद रचित वेदांत कल्पतरु का समय निरूपण करते हुए उसका काल तेरहवीं शताब्दी का मध्य-काल माना है। अपने आधार के लिए उन्होंने यह ऐतिहासिक तथ्य निर्धारित किया कि अमलानंद राजा कृष्ण के राज्यकाल (सन् १२४७ से १२६०) में थे और उसी समय उन्होंने अपना ग्रंथ वेदांत कल्पतरु लिखा।[1] यदि अमलानंद तेरहवीं शताब्दी के मध्यकाल में थे तो रामानंद अधिक से अधिक उनके समकालीन हो सकते हैं अन्यथा वे कुछ वर्षों के बाद हुए होंगे। इस प्रकार रामानंद का आविर्भाव काल सन् १२६० के बाद या सन् १३०० के लगभग होगा। अगस्त्य संहिता के आधार पर भी रामानंद का आविर्भाव काल सन् १२९९ या १३०० ठहरता है।

यदि हम रामानंद का जन्म-समय सन् १३०० (संवत् १३५७) निश्चित करते हैं तो वे कबीर के जन्म-समय पर ९८ वर्ष के रहे होंगे क्योंकि हमने कबीर का जन्म सन् १३९८ (संवत् १४५५) निर्धारित किया है। कबीर ने कम से कम २० वर्ष में गुरु से दीक्षा पाई होगी अतः कबीर का गुरु होने के लिए रामानंद की आयु ११८ वर्ष की होनी चाहिए। यदि 'बहुत काल वपु धारि' का अर्थ हम ११८ या इससे अधिक लगावें तो रामानंद निश्चय रूप से कबीर के गुरु हो सकते हैं। सन् १३०० के जितने वर्षों बाद रामानंद का जन्म होगा उतने ही वर्ष कबीर के शिष्यत्व के दृष्टिकोण से रामानंद की आयु से निकल सकते हैं। यहाँ एक नवीन ग्रंथ का उल्लेख करना अप्रासंगिक न होगा। उस ग्रंथ का नाम 'प्रसंग पारिजात' है[2] और उसके रचयिता श्री चेतनदास नाम के कोई

[1] दि नाइंथ इंटरनैशनल कांग्रेस अव् ओरिएंटलिस्ट्स-भाग १, पृष्ठ ४२३ (फुटनोट) लंदन, १८९२

[2] स्वामी रामानंद और प्रसंग पारिजात—श्रीशंकरदयालु श्रीवास्तव एम० ए०

साधु-कवि हैं। इस ग्रंथ की रचना संवत् १५१७ में कही जाती है। प्रसंग पारिजात में उल्लेख है कि ग्रंथ प्रणेता 'श्री रामानंद जी की वर्षी के अवसर पर उपस्थित थे और उस समय स्वामी जी की शिष्य मंडली ने उनसे यह प्रार्थना की कि हमारे गुरु की चरितावली तथा उपदेशों को—जिनका आपने चयन किया है, ग्रंथ रूप में लिपि-बद्ध कर दीजिए।' इससे ज्ञात होता है कि श्री चेतनदास रामानंद जी के संपर्क में अवश्य आए होंगे।

यह ग्रंथ पैशाची भाषा के शब्दों से युक्त देशवाड़ी प्राकृत में लिखा गया है। इसमें 'अदणा' छंद में लिखी हुई १०८ अष्टपदियाँ हैं। सन् १८९० के लगभग यह ग्रंथ गोरखपुर के एक मौनी बाबा ने, मौखिक रूप से अयोध्या के महात्मा बालकराम विनायक जी को उनके बचपन में लिखवाया था।

इस ग्रंथ के अनुसार रामानंद का जन्म प्रयाग में हुआ था। वे दक्षिण से प्रयाग में नहीं आए थे जैसा कि आजकल विद्वानों ने निश्चित किया है। इसके अनुसार भक्तमाल में उल्लखित रामानंद के शिष्यों की सूची भी ठीक है और कबीर निश्चित रूप से रामानंद के शिष्य कहे गए हैं। इस ग्रंथ का ऐतिहासिक महत्व इसलिए भी अधिक है कि इसमें कबीर का जन्म संवत् १४५५ और रामानंद का अवसान-संवत् १५०५ दिया गया है। यदि यह ग्रंथ प्रामाणिक है तो कबीर अवश्य ही रामानंद के शिष्य होंगे।

मैंने ऊपर एक हस्तलिखित प्रति का निर्देश किया है जिसमें 'वाणी हज़ार नौ' संग्रहीत हैं। इसका नाम सरब गुटिका है। यह प्रति प्राचीन मूल प्रतियों की प्रतिलिपि है। इसमें मुझे अनंतदास रचित श्रीकबीर साहिब जी की परचई' के अतिरिक्त एक और ग्रंथ ऐसा मिला है जिसमें रामानंद से कबीर का संबंध इंगित है।

सरब गुटिका

यह ग्रंथ है—प्रसिद्ध भक्त सैन जी रचित **कबीर अरु रैदास संवाद**। यह ६६ छंदों में लिखा गया है और इसमें कबीर और रैदास का विवाद वर्णित है। यह सैन वही हैं जिनका निर्देश श्री नाभादास ने अपने भक्तमाल में रामानंद के शिष्यों में किया है। प्रोफ़ेसर रानाडे के अनुसार सैन सन् १४४८ (संवत् १५०५) में हुए[1]। इस प्रकार वे कबीर

(हिंदुस्तानी—अक्टूबर १९३२)

[1] मिस्टिसिज़्म इन महाराष्ट्र--प्रो० रानाडे। पृष्ठ १९०

और रैदास के समकालीन रहे होंगे। सैन नाई थे किंतु थे बहुत बड़े भक्त। ये बीदर के राजा की सेवा में नियुक्त थे और उनके बाल बनाया करते थे। एक बार इन्होंने अपनी भक्ति-साधना में राजा की सेवा में जाने से भी इनकार कर दिया था। इनकी भक्ति में यह शक्ति थी कि ये दर्पण के प्रतिबिंब में ईश्वर को दिखला सकते थे। इनके **'कबीर अरु रैदास संवाद'** में रैदास और कबीर में सगुण और निर्गुण ब्रह्म के संबंध में वाद-विवाद हुआ है। अंत में रैदास ने कबीर को भी अपना गुरु माना है और उनके सिद्धांतों को स्वीकार किया है। उसी प्रसंग में रैदास का कथन है :—

रैदास कहै जी !

तुम साची कही सही सतवादी। सबलां सज्या लगाई॥

सबल सिंघार्‌या निबला तार्‌या। सुनौ कबीर गुरभाई॥३१॥

कबीर ने भी कहा है :—

कबीर कहै जी !

भरम ही डारि दे करम ही डारि दे। डारि दे जीव की दुबध्याई।

आत्मरांम करौ विश्रांमां। हम तुम दोन्यूं गुर भाई॥६४॥

कबीर कहै जी !

नृगुण ब्रह्म सकल कौ दाता। सो सुमरौ चित लाई।

को है लुघ दीरघ को नांही। हम तुम दोन्यूं गुरभाई॥६६॥

इन अवतरणों से ज्ञात होता है कि कबीर और रैदास एक ही गुरु के शिष्य थे और ये गुरु रामानंद ही थे जिनकी शिष्य-परंपरा में अन्य शिष्यों के साथ कबीर और रैदास का नाम भी है। सैन द्वारा यह निर्देश अधिक प्रामाणिक है।

यदि हम उपर्युक्त समस्त सामग्री पर विचार करें तो नाभादास के 'बहुत काल वपु धारि कै' का अवतरण, भक्तमाल में उल्लिखित रामानंद की शिष्य-परंपरा, अनंतदास और सैन का कबीर संबंधी विवरण, प्रसंग पारिजात, फ़ानी का दबिस्तान और प्रियादास की टीका, ये सभी कबीर को रामानंद के शिष्य होने का प्रमाण देते हैं। इनके विरुद्ध हमें कोई विशिष्ट प्रमाण नहीं मिलता। अतः कबीर को रामानंद का शिष्य मानने में कोई आपत्ति नहीं होनी चाहिए।

कबीर का निधन कब हुआ, यह कहीं भी प्रामाणिक रूप से हमें नहीं मिलता। यदि कबीर सिकंदर लोदी के समकालीन थे तो वे सिकंदर लोदी के

राज्यारोहण काल सन् १४८८ या १४८९ (संवत् १५४५ या १५४६) तक अवश्य ही जीवित रहे। इस काल के कितने समय बाद कबीर का निधन हुआ यह नहीं कहा जा सकता।

कबीर की मृत्यु

कबीर की मृत्यु के संबंध में अभी तक हमें तीन अवतरण मिलते हैं:—

(१) सुमंत पंद्रा सौ उनहत्तरा हाई।
सतगुर चले उठ हंसा ज्याई॥
(धर्मदास—द्वादश पंथ)

यह संवत् है १५६९

(२) पंद्रह सै उनचास में मगहर कीन्हों गौन।
अगहन सुदि एकादशी, मिले पौन मों पौन॥ (भक्तमाल की टीका)

यह संवत् है १५४९

(३) संवत् पंद्रह सै पछत्तरा, कियो मगहर को गौन।
माघ सुदी एकादशी रलो पौन में पौन॥
(कबीर जनश्रुति)

यह संवत् है १५७५

जान ब्रिग्स के अनुसार सिकंदर काशी हिजरी ९००, सन् १४९४ (संवत् १५५१) में आया था। तभी कबीर उसके सामने उपस्थित किए गए थे। अतः उपर्युक्त भक्तमाल की टीका का उद्धरण (२) अशुद्ध ज्ञात होता है। उद्धरण (१) में तिथि और दिन दोनों नहीं है; उद्धरण (३) में तिथि तो है किंतु दिन नहीं है। अतः इन दोनों की प्रामाणिकता गणना के आधार पर निर्धारित नहीं की जा सकती। अनंतदास की 'परचई' के अनुसार कबीर ने एक सौ बीस वर्ष की आयु पाई। उनके जन्म संवत् में एक सौ बीस वर्ष जोड़ने से संवत् १५७५ होता है जो जनश्रुति से मान्य है। किंतु जनश्रुति इतिहास सम्मत नहीं हुआ करती। अतः हम यदि कबीर को सिकंदर लोदी का समकालीन निश्चित करते हुए भी जनश्रुति के आधार पर निर्णय की पुष्टि नहीं कर सकते। अनंतदास की परचई भक्ति-भावना के कारण लिखी जाने के कारण संभवतः आयु-निर्देश में कुछ अतिशयोक्ति की पुट दे दे क्योंकि अनंतदास ने अपनी 'परचई' में संवत का उल्लेख न कर आयु का परिमाण

ही दिया है। संवत् के अभाव में हम इस आयु-निर्देश पर विशेष श्रद्धा नहीं रख सकते।

अंत में अधिक से अधिक हम यही स्थिर कर सकते हैं कि संत कबीर का जन्म संवत् १४५५ (सन् १३९८) में और निधन संवत् १५५१ (सन् १४९४) के लगभग हुआ था जब सिकंदर लोदी काशी आया। इस प्रकार संत कबीर ने ९६ वर्ष या उससे कुछ ही अधिक आयु पाई। मांसाहार को घृणा की दृष्टि से देखनेवाले सात्विक जीवन के अधिकारी संत के लिए यह आयु अधिक नहीं कही जा सकती।

कबीर का जीवन-वृत्त

धार्मिक काल के काव्य में एक विशेषता यह रही है कि कवियों ने अपनी भक्ति के उन्मेष में आत्म-विश्वास या आत्म-भर्त्सना की अनेक पंक्तियाँ लिखी हैं। ऐसी पंक्तियों में उनके जीवन-वृत्त पर थोड़ा-बहुत प्रकाश अवश्य पड़ गया है। जीवन-वृत्त की ये बातें स्वयं कवि द्वारा लिखी जाने से अत्यंत प्रमाणिक होती हैं और उनके विषय में किसी प्रकार का संदेह नहीं रह जाता। जीवन-वृत्त के किसी प्रसंग के ऊपर अवतरण न मिलने पर कभी-कभी हमारे मन में क्षोभ उठता है और हम सोचते हैं कि यदि कवि और भी आत्म-भर्त्सना या आत्म-निंदा करता तो संभव है, हमें उसके जीवन-वृत्त की अधिक सामग्री मिल जाती। संत कबीर में हमें आत्म-चरित संबंधी अनेक अवतरण मिलते हैं, क्योंकि कबीर ने आत्म-भर्त्सना के साथ ही आत्म-विश्वास और चेतावनी की बहुत सी बातें कही हैं। ऐसे अवतरण नीचे दिए जाते हैं :—

१. जन्म ... ...

२. माता—

कहत कबीर सुनहु मेरी माई। (गूज० २, आसा ३३)

मुसि मुसि रोवै कबीर की माई। (गू० २)

मुई मेरी माई हउ खरा सुखाला। (आ० ३)

नित उठि कोरी गागरि आनै लीपत जीउ गइओ।

ताना बाना कछू न सूझै हरि हरि रस लपटिओ॥

हमारे कुल कऊने रामु कहिओ।

जब की माला लई निपूते तब ते सुखु न भइओ॥

[माता का कथन] (बि० ४)

३. पिता—

बापि दिलासा मेरो कीन्हा। (आ० ३)

पिता हमारो वड गोसाई। तिसु पिता पहि हउ किउ करि जाई।

(आ० ३)

बलि तिस बापै जिनि हउ जाइआ। (आ० ३)

४. बाल्यकाल—

बारह बरस बालपन बीते बीस बरस कछु तपु न कीओ। (आ०१५)

५. जाति और आजीविका—

कबीर मेरी जाति कउ सभु को हसने हारु। (स० २)
हम घर सूत तनहि नित ताना। (आ० २६)
तू ब्राह्मन मैं कासी क जुलहा बूझहु मोर गिआना। (आ० २६)
कहत कबीर कारगह तोरी। सूतै सूत मिलाए कोरी। (आ० ३६)
तनना बुनना सभु तजिओ है कबीर।
हरि का नामु लिखि लीओ सरीर। (गूज० २)
जिउ जलु जल महि पैसि न निकसै तिउ ढुरि मिलिओ जुलाहो।
(धना० ३)
तू ब्रहमनु मैं कासीक जुलहा मुहि तोहि बराबरी कैसे कै बनहि।
(राम० ५)
बुनि बुनि आप आपु पहिरावउ। (भै० ७)

६. निवास—

पहले दरसन मगहर पाइओ फुनि कासी बसे आई। (राम० ३)
जैसा मगहरु तैसी कासी हम एकै करि जानी। (राम० ३)
तोरे भरोसे मगहर बसिओ। (राम० ३)
किआ कासी किआ ऊखरु मगहरु। (धना० ३)

७. स्त्री—

मेरी बहुरिआ को धनिया नाउ।
लै राखिओ राम जनीआ नाउ॥ (आ० ३३)
पहिली करूपि कुजाति कुलखनी।
अबकी सरूपि सुजाति सुलखनी। (आ० ३२)
मूंड पलोसि कमर बधि पोथी।
हम कउ चाबनु उन कउ रोटी॥ [स्त्री का कथन] (गौं० ६)
सुनि अंधली लोई बेपीर। (गौं० ६)

८. पुत्र—

बूड़ा बंसु कबीर का उपजिओ पूत कमालु। (स० ११५)
बिटवहि राम रमउवा लावा।

ये बारिक कैसे जीवहि रघुराई। (गू० २)

लरकी लरिकन खैबो नाहि। (गौं० ६)

९. गुरु—

मेरो गुर प्रसादि मनु मानिआ। (सो० ५)

सतगुर मिले त मारगु दिखाइआ। (आ० ३)

गुर चरण लागि हम बिनवता (आ० १)

गुर किंचत किरपा कीनी। (सो० ४)

जब हूए क्रिपाल मिले गुरदेबु। (गौं० ७)

कहु कबीर गुर किरपा छूटे। (गौं० ८)

धंनु गुरदेव अति रूप बिचखन। (गौं० १०)

हम राखे गुर आपने उनि कीनो आदेसु। (स० ८)

कहि कबीर अब जानिआ गुरि गिआनु किआ समझाइ। (आ० २)

हरि जी क्रिपा करे जउ अपनी तौ गुर के सबदि समावहिगे। (मा० ४)

गुर सेवा ते भगति कमाई। (भै० १)

कबीर साचा सतिगुरु मै मिलिआ सबदु जु बाहिआ एकु। (स० १५७)

१०. अध्ययन—

बिदिया न परउ बादु नही जानउ। (बि० २)

११. पर्यटन (हज)

हज हमारी गोमती तीर।

जहा बसहि पीतंबर पीर (आ० १३)

कबीर हज जह हउ फिरिओ कउतक ठाओ ठाइ। (स० १४)

कबीर हज काबे हउ जाइ था आगे मिलिआ खुदाइ (स० १९७)

कबीर हज काबे होइ होइ गइआ केती बार कबीर (स० १९८)

१२. परिस्थितियाँ (अ) धार्मिक—

इन मुंडिअन मेरी जाति गंवाई। (आ० ३३)

गज साढे तै तै धोतीआ तिहरे पाइनि तग।

गली जिन्हा जप मालीआ लोटे हाथ निबग॥

ओइ हरि के संत न आखीअहि बानारसि के ठग॥ (आ० २)

अनभउ किनै न देखिया बैरागीअड़े बिनु भै अनभउ होइ वणाहंबै।

(मा० ८)

अैसा जोगु कमावहु जोगी । जप तप संजमु गुरमुखि भोगी ।
(राम० ७)

बंदे खोजु दिल हर रोज ना फिर परेसानी माहि । (ति० १)
नादी बेदी सबदी मोनी जम के पटै लिखाइआ । (सो० ३)
काजी तै कवन कतेब बखानी । (आ० ८)
जोगी जती तपी संनिआसी बहु तीरथ भ्रमना ।
लुंजित मुंजित मोनि जटाधर अंति तऊ मरना ॥ (आ० ५)
जहा बसहिं पीतंबर पीर । (आ० १३)

(आ) राजनीतिक—

भुजा बांधि भिला करि डारिओ ।
हसती क्रोपि मूंड महि मारिओ ॥ (गौं० ४)
गंग गुसाइनि गहिर गंभीर ।
जंजीर बांधि करि खरे कबीर ॥ (भै० १८)

१३. विश्वास—

जिउ जल छोडि बाहरि भइओ मीना ।
पूरब जनम हउ तप का हीना । (ग० १७)
ओछी मति मेरी जाति जुलाहा ।
हरि का नामु लहिओ मै लाहा ॥ (गू० २)
पूरब जनम हम तुम्हरे सेवक अब तउ मिटिआ न जाई ॥ (रा० ४)
तोरउ न पाती पूजउ न देवा ।
राम भगति बिनु निहफल सेवा ॥ (भै० ६)
पंडित मुलां जो लिखि दीआ ।
छाडि चले हम कछू न लीआ ॥ (भै० ७)
किया कासी किआ ऊखरु मगहरु रामु रिदै जउ होई । (ध० ३)
जउ तनु कासी तजहि कबीरा रमईऐ कहा निहोरा । (ध० ३)
भजहु गोविंद भूलि मत जाहु ।
मानस जनम का एही लाहु ॥ (भै० ६)

१४. सुविधाजनक जीवन में विश्वास—

जपीऐ नामु जपीऐ अंनु ।
अंभै कै संगि नीका बंनु ॥ (गौं० ११)

भूखै भगति न कीजै । यह माला अपनी लीजै ॥
हउ मांगउ संतन रेना । मै नाही किसी का देना (सो० ११)

१५. आत्मग्लानि—
कहु कबीर हम ऐसे लखन ।
धंनु गुरुदेव अति रूप बिचखन ॥ (गौं० १०)
जिह घर कथा होत हरि संतन इक निमख न कीनो मै फेरा ।
लंपट चोर दूत मतवारे तिन संगि सदा बसेरा ॥ (रा० ८)
संतन संग कबीरा बिगरिओ । (भै० ५)

१६. भक्त निर्देश—
कलि जागे नामा जैदेव । (ब० २)

१७. वृद्धावस्था—
तीस बरस कछु देव न पूजा फिरि पछुताना बिरधि भइओ । (आ० १५)
बारिक ते बिरधि भइआ होना सो होइआ । (आ० २३)

१८. मृत्यु—
सगल जनमु सिवपुरी गवाइआ ।
मरती बार मगहरि उठि आइआ ॥
बहुतु बरस तपु कीआ कासी ।
मरनु भइआ मगहर की बासी ॥ (ग० १५)

उपर्युक्त अवतरणों से कबीर के जीवन की जो प्रमुख घटनाएं हमें ज्ञात होती हैं, वे इस प्रकार हैं । कबीर का जन्म एक मुसलमान परिवार में हुआ था । कबीर की माता स्वयं कहती है कि 'हमारे कुल में किसने राम का नाम लिया है ? "और जब से इस 'निपूते' कबीर ने जप की माला हाथ में ली है तब से किसी प्रकार भी सुख से भेंट नहीं हो सकी । इसका जीवन प्रतिदिन 'गागरि' लाकर (घर) लीपते ही व्यतीत हुआ ।" इसी कारण कबीर की माता उनके धार्मिक विश्वासों से किसी प्रकार भी संतुष्ट नहीं थी । संतों के सत्संग से उन्होंने अपना व्यवसाय छोड़ दिया था जिससे घर के बच्चों और परिजनों को सदैव अन्न-कष्ट होता था । कबीर की माता एकांत में रोया करती थी कि कबीर ने जब तनना-बुनना सब छोड़ दिया है तब ये बच्चे बेचारे किस प्रकार जीवित रह सकेंगे ? किंतु कबीर को अटल विश्वास था कि 'रघुराई' ही हम सब का दाता है अतः उसे इन बच्चों की भी ख़बर है । ज्ञात होता है,

कुछ दिन बाद कबीर की माता का देहांत हो गया था और इससे कबीर पूर्ण-रूपेण निश्चिंत हो गए थे क्योंकि अब उन्हें सत्संग में अपना समय व्यतीत करने से रोकनेवाला कोई नहीं था। वे अपनी भक्ति-भावना में इतने तन्मय थे कि उन्हें दगली (रुई की अंगरखी) पहनने का न तो ध्यान ही था और न पाले की भीषणता ही उन्हें ज्ञात होती थी। कबीर के पिता एक बड़े गोसांई थे, उनके प्रति कबीर की बहुत श्रद्धा थी। वे प्रायः कबीर के दुःखी होने पर उन्हें सान्त्वना भी दिया करते थे। कबीर का जन्म मगहर में हुआ था। बाद में वे काशी आ गए थे। उन्होंने अपने बाल्यकाल के बारह वर्ष तथा युवा-काल के बीस वर्ष बिना सत्संग के ही व्यतीत कर दिये थे। जाति से वे जुलाहे थे और सभी कोई उनकी जाति का उपहास करता था। पहले तो नित्यप्रति अपने घर पर ही ताना तनते थे। फिर उन्होंने तनना-बुनना छोड़ कर और अपने करघे को तोड़ कर अपने शरीर पर हरि का नाम लिख लिया और वे साधु-सत्संग करने लगे।

कबीर की संभवतः दो स्त्रियाँ थीं। पहली कुरूप थी, उसकी जाति का कोई पता नहीं था और उसमें गार्हस्थ्य के कोई लक्षण नहीं थे। दूसरी सुंदरी थी, अच्छी जाति की थी तथा अच्छे लक्षणों से संपन्न थी। पहली स्त्री का नाम था 'लोई' और दूसरी स्त्री का नाम था धनियाँ जिसे लोग रामजनियाँ भी कहते थे। संभवतः यह वैश्या रही हो किंतु कबीर की दृष्टि में वैश्या किसी भाँति हीन न समझी गई हो। साधुओं के प्रति कबीर की भक्ति बढ़ने पर संभवतः लोई को भी कष्ट होने लगा हो जैसे पहले कबीर की माता को कष्ट होता था क्योंकि कबीर अपने घर का सारा भोजन साधु-संन्यासियों को बाँट देते थे; घर के लोगों को चने चबा कर ही अपना पेट भरना पड़ता था। साधु-संन्यासियों को तो कबीर घर की खाट दे दिया करते थे और स्वयं अपने परिजनों के साथ ज़मीन पर सोते थे।

कबीर के संतान भी थी। एक पुत्र और एक पुत्री। संत-संतति होने से इन्हें प्रायः अन्न-कष्ट रहता था। पुत्र का नाम कमाल था जो कबीर के सुख का कारण नहीं था। वह सगुणोपासकों की श्रेणी में सम्मिलित हो गया था। इसलिये कबीर ने उसे अपना वंश-विनाशक समझ रक्खा था।

कबीर का गुरु में अटल विश्वास था। उन्होंने गुरु की वंदना अनेक प्रकार से की है यद्यपि उन्होंने अपने गुरु के नाम का उल्लेख नहीं किया है।

ज्ञात होता है ये गुरु रामानंद ही थे। अपने गुरु की सेवा से ही उन्होंने भक्ति अर्जित की थी। गुरु की प्राप्ति को वे ईश्वर की कृपा के फल-स्वरूप ही समझते थे।

कबीर पुस्तक-ज्ञान में विश्वास नहीं रखते थे। वे किसी से वाद-विवाद भी नहीं करना जानते थे। आत्म-चिंतन और हरि-स्मरण यही उनकी भक्ति के साधन थे। मुसलमान होने के कारण वे अनेक बार 'हज' के लिए भी गए लेकिन गोमती नदी के किनारे 'पीतांबर पीर' की सेवा में जाना ही ये अपनी हज समझते थे। ये 'पीतांबर पीर बड़े सुंदर कंठ से गान किया करते थे और कबीर वहाँ बैठकर उन्हें बड़े प्रेम से सुना करते थे।

कबीर के समय में बनारस की धार्मिक परिस्थितियों में बड़ी विषमता थी। 'मुंडिया'[१] लोग बड़े आडंबर रचा करते थे। बनारस के बहुत से 'ठग' हरि के संत बन-बनकर साढ़े तीन गज़ की धोती पहन कर गले में जपमाला डाल कर हाथ में लोटे लेकर फिरा करते थे। इनके अतिरिक्त बैरागी, जोगी, बंदे (सूफ़ीमत में विश्वास रखने वाले), नादी, बेदी, शब्दी, मौनी, क़ाज़ी, यती तपी, संन्यासी, लुंजित और मुंजित (जैनी साधु) तथा 'पीर' भरे हुए थे। कबीर इन सब के कर्मकांडों और आडंबरों की बहुत कड़ी आलोचना किया करते थे।

अपने निर्भीक विचारों के कारण कबीर को अनेक कठिनाइयों का सामना करना पड़ा। उन पर अनेक अत्याचार हुए। ये अत्याचार सिकंदर लोदी द्वारा किये गए ज्ञात होते हैं। उसने कबीर की भुजाओं को बाँध कर हाथी के सामने डाल दिया किंतु कबीर नहीं मारे जा सके। बाद में उन्हें ज़ंजीरों से बाँध कर गंगा में डुबाने का प्रयत्न किया गया किंतु वे नहीं डूबे।

कबीर अपने विश्वासों में अत्यंत दृढ़ और विचारों में अटल थे। हरि-स्मरण में उनका पूर्ण विश्वास था। वे राम-भक्ति के अतिरिक्त संसार की सब बातों को निस्सार समझते थे। पंडित और मुल्लाओं के आदेशों पर इन्होंने अणुमात्र भी ध्यान नहीं दिया। वे जन्मान्तरवाद में विश्वास रखते थे। उन्हें अपने भजन में इतना विश्वास था कि वे मुक्ति देने वाली काशी में न मरकर मगहर में मरे, जहाँ मरने पर लोकोक्ति के अनुसार गर्दभ योनि में

[१] ये रामानंदी संप्रदाय के अवधूत थे।

पुनः जन्म लेना पड़ता है। वे गोविंद के भजन में ही मनुष्य-जीवन की सार्थकता समझते थे। किंतु वे भूखे रह कर भक्ति नहीं करना चाहते थे। जीवन की सुविधा का भी उन्हें ध्यान था। वे अपने जीवन के लिये प्रतिदिन इतना भोजन चाहते थे—दो सेर आटा, थोड़ा नमक, पाव भर घी, आध सेर दाल। इतने अन्न से वे दोनों वक्त संतुष्ट हो सकते थे (रागु सोरठि ११)। वे एक चारपाई, एक तकिया, एक रुई से भरा हुआ दोहरा कपड़ा और ऊपर (ओढ़ने के लिए) एक कंबल भी चाहते थे। यों कभी कभी अपने अनुचित कर्मों के लिए उन्हें पश्चात्ताप और आत्मग्लानि भी होती थी। उन्हें पूर्व भक्तों में बहुत अधिक श्रद्धा थी। इन भक्तों में जयदेव और नामदेव उल्लेखनीय हैं।

कबीर को लंबी आयु मिली। उन्होंने अपनी वृद्धावस्था का भी वर्णन किया है और अपनी निर्बलता एवं शरीर-कृशता का भी उल्लेख किया है। अंत में समस्त जीवन शिवपुरी (बनारस) में तपस्वी की भाँति व्यतीत करने पर वे अपनी मृत्यु के समय मगहर के निवासी हुए।

जीवन-वृत्त की आलोचना

कबीर ने अपने व्यक्तिगत निर्देशों में कोई तिथि या संवत् का उल्लेख नहीं किया। अतः अंतर्साक्ष्य से हम उनके आविर्भाव काल अथवा निधन-काल के संबंध में कुछ भी नहीं कह सकते। उनका जन्म ऐसे जुलाहे कुल में हुआ था जिसमें उनके संत-जीवन के लिए विशेष सुविधाएँ थीं। कबीर ने अपने पिता को एक बड़ा गोसांई कहा है। बनारस और उसके आसपास उस समय के गोसांई 'दसनामी' भेद से अपनी उपासना में कहीं शिव और कहीं विष्णु के भक्त होते थे।[1] कबीर के पिता ऐसी जुलाहा जाति में थे जिसमें मुसलमानी संस्कारों के साथ ही साथ शिवोपासक योगियों के भी संस्कार थे और वे किसी शिवोपासक 'दसनामी' संप्रदाय में दीक्षित होने के कारण गोसांई कहलाते थे। इस समय नाथपंथ का प्रभाव इन योगियों पर विशेष रूप से था जिससे वे 'शरीर-साधन' की परंपरा में विश्वास रखते थे। कबीर

[1] हिंदू ट्राइब्स ऐंड कास्ट्स ऐज़ रिप्रेजेंटेड ऐट बनारस (पृष्ठ २५५)
एम० ए० शैरिंग (१८७१—८२)

ने अपने पिता का निर्देश करते हुए यह भी स्पष्ट रूप से कहा है कि "मैं उस पिता की बलि जाता हूँ जिनसे मैं उत्पन्न हुआ हूँ। उन्होंने पंच (इंद्रियों) से मेरा साथ छुड़ा दिया है, अब मैंने पंच (इंद्रियों के विष) को मार कर पैरों के नीचे दबा दिया है"[1] अतः यह स्पष्ट है कि कबीर के पिता जुलाहों की जाति में होकर भी योगियों के आचारों में विश्वास रखते थे। इस संबंध में मैं श्री हज़ारीप्रसाद द्विवेदी के मत से सहमत हूँ जिनके अनुसार कबीर जिस जुलाहा वंश में पालित हुए थे 'वह इसी प्रकार के नाथ मतावलंबी गृहस्थ योगियों का मुसलमानी रूप था।'[2] योगियों की परंपरा में होने के कारण कबीर के कुल में 'राम' नाम के लिए विशेष श्रद्धा न होगी इसलिए जब रामानंद के प्रभाव से कबीर ने राम-नाम स्वीकार किया होगा तो उनकी माता का क्षुब्ध होना स्वाभाविक था।

कबीर के जन्म के विषय में जो किंवदंती है कि वे विधवा ब्राह्मणी के पुत्र थे और उस विधवा ब्राह्मणी ने लोक-लज्जा की रक्षा के लिए उन्हें लहरतारा तालाब के समीप फेंक दिया था तथा इस अवस्था में उन्हें नीरू और नीमा जुलाहा-दंपति ने उठा लिया था, कोई विशेष महत्त्व नहीं रखती। हमारे सामने इस प्रकार का कोई ऐतिहासिक प्रमाण नहीं है। इसी भाँति उनका ज्योति-स्वरूप होकर लहरतारा के कमल-पत्र पर उतर कर शयन करना एक धार्मिक विश्वास है। इस संबंध में कुछ भी कहना कबीर-पंथियों की धार्मिक भावना पर आघात पहुँचाना है।

कबीर का जन्म-स्थान अभी तक 'काशी' माना जाता रहा है और इस संबंध में प्रायः ये पंक्तियाँ उद्धृत की जाती हैं:—'काशी में हम प्रगट भये हैं, रामानंद चिताए।' किंतु ये पंक्तियाँ न तो 'संत कबीर' में हैं और न किसी प्रामाणिक पोथी में ही पाई जाती हैं।' 'संत कबीर' में कबीर की एक पंक्ति ऐसी है जिससे ज्ञात होता है कि वे मगहर में ही उत्पन्न हुए थे। 'पहले दरसन मगहर पाइओ फुनि कासी बसे आई।' (रागु रामकली ३) यथेष्ट संकेतपूर्ण है। मृत्यु के समय उनका मगहर लौट जाना मनुष्य की उस स्वाभाविक प्रेरणा का भी प्रतीक हो सकता है जिससे वह अपनी जन्मभूमि या उसके समीप ही

[1] संत कबीर, रागु आसा ३, पृष्ठ ९२

[2] कबीर—श्री हज़ारीप्रसाद द्विवेदी, पृष्ठ ९

आकर मरना चाहता है। अतः मेरे दृष्टिकोण से कबीर का मगहर में जन्म मानना अधिक युक्तिसंगत है।

कबीर के पारिवारिक जीवन के संबंध में मतभेद है। कबीरपंथी साधुओं का कथन है कि लोई उनकी शिष्या मात्र थी, स्त्री नहीं। वह एक बनखंडी बैरागी की पोष्य पुत्री थी जिसे उसने लोई (ऊनी चादर) में लिपटा हुआ पाया था। कबीर की भक्ति और निस्पृह भावना देखकर वह उनके साथ रहने लगी थी। किंतु कबीर की 'मेरी बहुरिया को धनिआ नाउ' (रागु आसा ३३) और 'बूड़ा बंसु कबीर का उपजिओ पूतु कमालु' (सलोकु ११५) निश्चित रूप से सिद्ध करते हैं कि कबीर का पारिवारिक जीवन स्त्री और पुत्र से भरपूर था। उनसे चाहे कबीर को संतोष न रहा हो, यह दूसरी बात है। 'धनिआ' नाम के स्थान पर हमें 'धोई' नाम भी मिलता है जिसका संकेत श्री बनमाली जी 'कबीर का साखी ग्रंथ' की अवतरणिका में करते हैं।

कबीर ने जिस गुरु की विस्तार-पूर्वक-वंदना की है वे श्री रामानंद जी ही थे। कबीर को अपने निर्भीक धार्मिक विश्वासों के कारण सिकंदर लोदी से भी संघर्ष लेना पड़ा। इस विषय की यथेष्ट चर्चा कबीर की जन्म-तिथि के संबंध में हो चुकी है अतः यहाँ कुछ और लिखने की आवश्यकता नहीं। कबीर की मृत्यु के संबंध में भी निश्चित है कि उन्होंने मगहर में जाकर अपना शरीर-त्याग किया।

कबीर अपने धार्मिक आदर्शों में निःशंक और साहसी थे। उन्होंने अपने समय में प्रचलित सभी संप्रदायों के मिथ्याचार और आडंबरों की तीव्र आलोचना की है। हम उनके सिद्धांतों, धार्मिक विश्वासों और दार्शनिक दृष्टिकोण की विवेचना 'कबीर' नाम की पुस्तक में करेंगे।

सिरी रागु

१
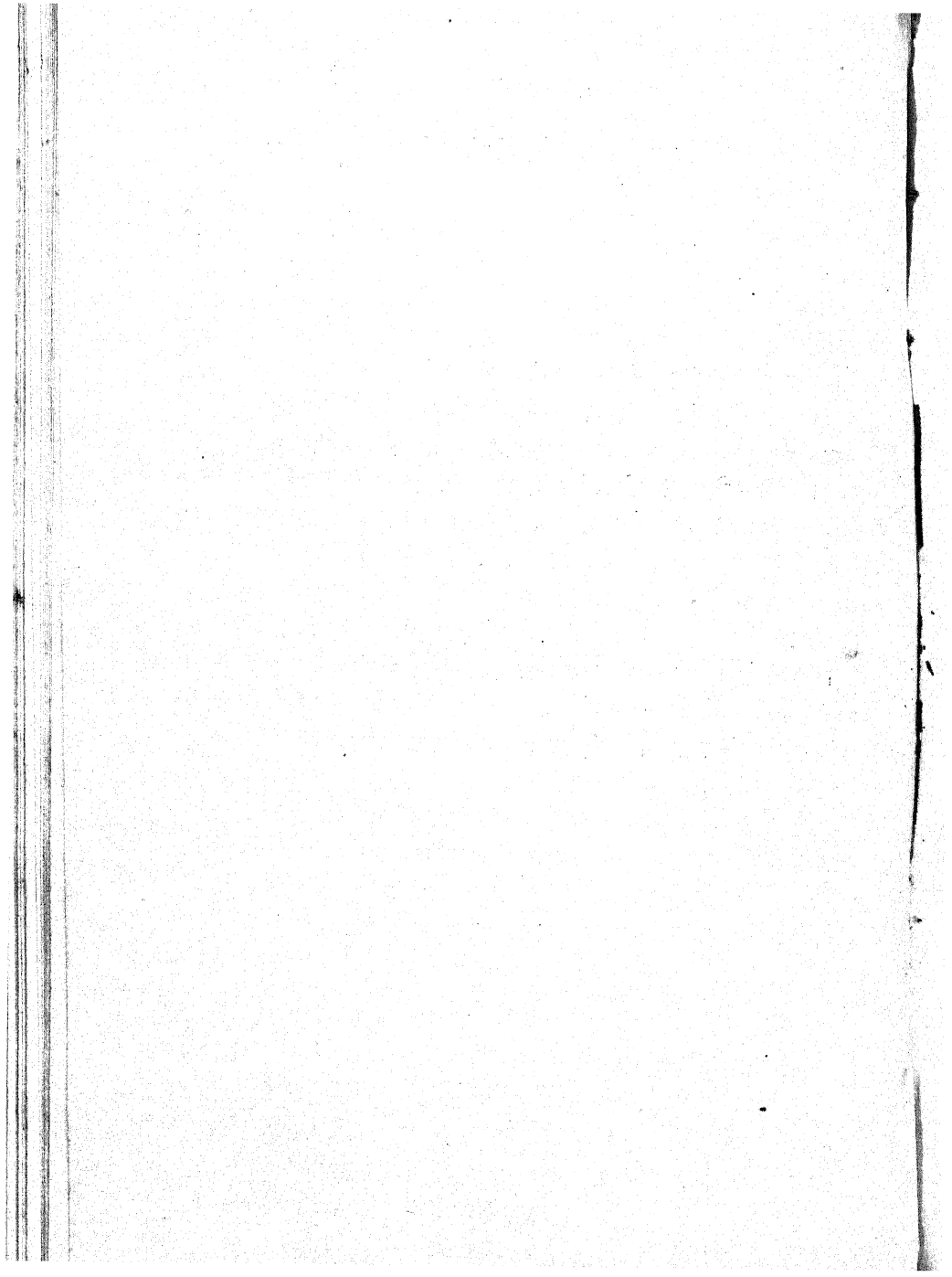
एकु सुआनु कै घरि गावणा ।
जननी जानत सुतु बडा होतु है
इतनाकु न जानै जि दिन दिन अवध घटतु है ॥
मोर मोर करि अधिक लाडु धरि पेखत ही जमराउ हसै ॥
ऐसा तैं जगु भरमि लाइआ ।
कैसे बूझै जब मोहिआ है माइआ ॥ १ ॥

कहत कबीर छोडि बिखिआ रस
इतु संगति निहचउ मरणा ॥
रमईआ जपहु प्राणी अनत जीवण
बाणी इनि बिधि भव सागरु तरणा ॥ २ ॥

जां तिसु भावै ता लागै भाउ ।
भरमु भुलावा बिचहु जाइ ।
उपजै सहजु गिआन मति जागै ।
गुर प्रसादि अंतरि लिव लागै ॥
इतु संगति नाही मरणा ।
हुकमु पछाणि ता खसमै मिलणा ॥ ३ ॥

२

अचरज एकु सुनहु रे पंडीआ
अब किछु कहनु न जाई ।
सुरि नर गण गंध्रब जिनि मोहे
त्रिभवण मेखुली लाई ॥
राजा राम अनहद किंगुरी बाजै
जाकी दिसटि नाद लिव लागै ॥ १ ॥

भाठी गगनु सिंङिआ अरु चुंङआ
कनक कलस इकु पाइआ ।
तिसु महि धार चुऐ अति निरमल
रस महि रसन चुआइआ ॥ २ ॥

एक जु बात अनूप बनी है
पवन पिआला साजिआ ।
तीनि भवन महि एको जोगी
कहहु कवनु है राजा ॥ ३ ॥

ऐसे गिआन प्रगटिआ पुरखोतम
कहु कबीर रंगि राता ।
अउर दुनी सभ भरमि भुलानी
मनु राम रसाइन माता ॥ ४ ॥

संत कबीर

राग गउड़ी

अब मोहि जलत राम जलु पाइआ ।
राम उदकि तनु जलत बुझाइआ ॥
मनु मारण कारणि बन जाईऐ ।
सो जलु बिनु भगवंत न पाईऐ ॥ १ ॥

जिह पावक सुरि नर है जारे ।
राम उदकि जन जलत उबारे ॥ २ ॥

भव सागर सुख सागर माही ।
पीवि रहे जल निखुटत नाही ॥ ३ ॥

कहि कबीर भजु सारिंगपानी ॥
राम उदकि मेरी तिखा बुझानी ॥ ४ ॥

२

माधउ जल की पियास न जाइ।
जल महिं अगनि उठी अधिकाइ ॥
तूं जलनिधि हउ जल का मीनु।
जल महि रहउ जलहि बिनु खीनु ॥ १ ॥

तूं पिंजरु हउ सूअटा तोर।
जमु मंजारु कहा करै मोर ॥ २ ॥

तूं तरवरु हउ पंखी आहि।
मंदभागी तेरो दरसनु नाहि ॥ ३ ॥

तूं सतिगुरु हउ नउतनु चेला।
कहि कबीर मिलु अंत की बेला ॥ ४ ॥

३

जब हम एको एकु करि जानिश्रा ।
तब लोगह काहे दुखु मानिश्रा ॥
हम अपतह अपुनी पति खोई ।
हमरै खोजि परहु मति कोई ॥ १ ॥

हम मंदे मंदे मन माही ।
साझ पाति काहू सिउ नाही ॥ २ ॥

पति अपति ताकी नही लाज ।
तब जानहुगे जब उघरैगो पाज ॥ ३ ॥

कहु कबीर पति हरि परवानु ।
सरब तिआगि भजु केवल रामु ॥ ४ ॥

४

नगन फिरत जौ पाइअै जोगु ।
बन का मिरगु मुकति सभु होगु ॥
किआ नागे किआ बाधे चाम ।
जब नही चीनसि आतम राम ॥ १ ॥

मूंड मुंडाए जो सिधि पाई ।
मुकती भेड न गईआ काई ॥ २ ॥

ब्रिंदु राखि जौ तरीअै भाई ।
खुसरै किउ न परम गति पाई ॥ ३ ॥

कहु कबीर सुनहु नर भाई ।
राम नाम बिनु किनि गति पाई ॥ ४ ॥

५

संधिआ प्रात इस्नानु कराही ।
जिउ भए दादुर पानी माही ॥
जउ पै राम राम रति नाही ।
ते सभि धरमराइ कै जाही ॥ १ ॥

काइआ रति बहु रूप रचाही ।
तिन कउ दइआ सुपनै भी नाही ॥ २ ॥

चारि चरन कहहि बहु आगर ।
साधू सुखु पावहि कलि सागर ॥ ३ ॥

कहु कबीर बहु काइ करीजै ।
सरबसु छोडि महारसु पीजै ॥ ४ ॥

६.

किश्रा जपु किश्रा तपु किश्रा ब्रत पूजा ।
जाकै रिदै भाउ है दूजा ॥
रे जन मनु माधउ सिउ लाईश्रै ।
चतुराई न चतुरभुजु पाईश्रै ॥ १ ॥

परहरु लोभु अरु लोकाचारु ।
परहरु कामु क्रोधु अहंकारु ॥ २ ॥

करम करत बधे अहंमेव ।
मिलि पाथर की करही सेव ॥ ३ ॥

कहु कबीर भगति करि पाइश्रा ।
भोले भाइ मिले रघुराइश्रा ॥ ४ ॥

७

गरभ वास महि कुलु नही जाती ।
ब्रहम बिंदु ते सभु उतपाती ॥
कहु रे पंडित बामन कब के होए ।
बामन कहि कहि जनमु मत खोए ॥ १ ॥

जौ तूं ब्राहमणु ब्रहमणी जाइआ ।
तउ आन बाट काहे नही आइआ ॥ २ ॥

तुम कत ब्राहमण हम कत सूद ।
हम कत लोहू तुम कत दूध ॥ ३ ॥

कहु कबीर जो ब्रहमु बीचारै ।
सो ब्राहमणु कहीअतु है हमारै ॥ ४ ॥

८

अंधकार सुखि कबहि न सोईहै ।
राजा रंकु दोऊ मिलि रोईहै ॥
जउ पै रसना रामु न कहिबो ।
उपजत बिनसत रोवत रहिबो ॥ १ ॥

जस देखीऔ तरवर की छाइआ ।
प्रान गए कहु कां की माइआ ॥ २ ॥

जस जंती महि जीउ समाना ।
मूए मरमु को का कर जाना ॥ ३ ॥

हंसा सरवरु कालु सरीर ।
राम रसाइन पीउ रे कबीर ॥ ४ ॥

जोति की जाति जाति की जोती ।
तितु लागे कंचूआ फल मोती ॥
कवनु सु घरु जो निरभउ कहीऐ ।
भउ भजि जाइ अभै होइ रहीऐ ॥ १ ॥

तटि तीरथि नही मनु पतीआइ ।
चार अचार रहे उरझाइ ॥ २ ॥

पाप पुंन दुइ एक समान ।
निज घरि पारसु तजहु गुन आन ॥ ३ ॥

कबीर निरगुण नाम न रोसु ।
इसु परचाइ परचि रहु एसु ॥ ४ ॥

१०

जो जन परमिति परमनु जाना ।
बातन ही बैकुंठ समाना ।
ना जाना बैकुंठ कहा ही ।
जानु जानु सभि कहहि तहा ही ॥ १ ॥

कहन कहावन नह पतीअईहै ।
तउ मनु मानै जा ते हउमै जईहै ॥ २ ॥

जब लगु मनि बैकुंठ की आस ।
तब लगु होइ नही चरन निवासु ॥ ३ ॥

कहु कबीर इह कहीऐ काहि ।
साध संगति बैकुंठै आहि ॥ ४ ॥

११०

उपजै निपजै निपजि समाई ।
नैनह देखत इहु जगु जाई ॥
लाज न मरहु कहहु घरु मेरा ।
अंत की बार नही कछु तेरा ॥ १ ॥

अनिक जतन करि काइआ पाली ।
मरती बार अगनि संगि जाली ॥ २ ॥

चोआ चंदनु मरदन अंगा ।
सो तनु जलै काठ कै संगा ॥ ३ ॥

कहु कबीर सुनहु रे गुनीआ ।
बिनसैगो रूपु देखै सभ दुनीआ ॥ ४ ॥

१२

अवर मूए किआ सोगु करीजै।
तउ कीजै जउ आपन जीजै ॥
मै न मरउ मरिबो संसारा।
अब मोहि मिलिओ है जीआवन हारा ॥ १ ॥

इआ देही परमल महकंदा।
ता सुख बिसरे परमानंदा ॥ २ ॥

कूअटा एकु पंच पनिहारी।
टूटी लाजु भरै मति हारी ॥ ३ ॥

कहु कबीर इक बुधि बीचारी ॥
ना ओहु कूअटा ना पनिहारी ॥ ४ ॥

असथावर जंगम कीट पतंगा।
अनिक जनम कीए बहु रंगा॥
असे घर हम बहुतु बसाए।
जब हम राम गरभ होइ आए॥ १॥

जोगी जती तपी ब्रहमचारी।
कबहू राजा छत्रपति कबहू भेखारी॥ २॥

साकत मरहि संत सभि जीवहि।
राम रसाइनु रसना पीवहि॥ ३॥

कहु कबीर प्रभ किरपा कीजै।
हारि परे अब पूरा दीजै॥ ४॥

१४

अैसो अचरजु देखिओ कबीर ।
दधि कै भोलै बिरोलै नीरु ॥
हरी अंगूरी गदहा चरै ।
नित उठि हासै हीगै मरै ॥ १ ॥

माता भैसा अंमुहा जाइ ।
कुदि कुदि चरै रसातलि पाइ ॥ २ ॥

कहु कबीर परगटु भई खेड ।
लेले कउ चूघै नित भेड ॥ ३ ॥

राम रमत मति परगटी आई ।
कहु कबीर गुरि सोझी पाई ॥ ४ ॥

जिउ जल छोडि बाहरि भइओ मीना।
पूरब जनम हउ तप का हीना ॥
अब कहु राम कवन गति मोरी।
तजीले बनारस मति भई थोरी ॥ १ ॥

सगल जनमु सिवपुरी गवाइआ।
मरती बार मगहरि उठि आइआ ॥ २ ॥

बहुतु बरस तपु कीआ कासी।
मरनु भइआ मगहर की बासी ॥ ३ ॥

कासी मगहर सम बीचारी।
ओछी भगति कैसे उतरसि पारी ॥ ४ ॥

कहु गुर गजि सिव सभु को जानै।
मुआ कबीरु रमत स्री रामै ॥ ५ ॥

१६

चोआ चंदन मरदन अंगा ।
सो तनु जलै काठ कै संगा ॥
इसु तन धन की कवन बडाई ।
धरनि परै उरवारि न जाई ॥ १ ॥

राति जि सोवहि दिन करहि काम ।
इकु खिनु लेहि न हरि को नाम ॥ २ ॥

हाथि तडोर मुखि खाइओ तंबोर ।
मरती बार कसि बाधिओ चोर ॥ ३ ॥

गुरमति रसि रसि हरि गुन गावै ।
रामै राम रमत सुखु पावै ॥ ४ ॥

किरपा करि कै नामु द्रिड़ाई ।
हरि हरि बासु सुगंध बसाई ॥ ५ ॥

कहत कबीर चेति रे अंधा ।
सति रामु झूठा सभु धंधा ॥ ६ ॥

Miss Madhuri.

जम ते उलटि भए है राम।
दुख बिनसे सुख कीओ बिसराम॥
बैरी उलटि भए है मीता।
साकत उलटि सुजन भए चीता॥
अब मोहि सरब कुसल करि मानिआ।
सांति भई जब गोबिदु जानिआ॥ १॥

तन महि होती कोटि उपाधि।
उलटि भई सुख सहजि समाधि॥
आपु पछानैं आपै आप।
रोगु न बिआपै तीनौ ताप॥ २॥

अब मनु उलटि सनातनु हूआ।
तब जानिआ जब जीवत मूआ॥
कहु कबीर सुखि सहजि समावउ।
आपि न डरउ न अवर डरावउ॥ ३॥

संत कबीर

१८

पिंडि मुअै जीउ किह घरि जाता ।
सबदि अतीति अनाहदि राता ॥
जिनि रामु जानिआ तिनहि पछानिआ ।
जिउ गूंगे साकरु मनु मानिआ ॥ १ ॥

अैसा गिआनु कथै बनवारी ।
मन रे पवन द्रिड़ सुखमन नारी ॥
सो गुरु करहु जि बहुरि न करना ।
सो पदु रवहु जि बहुरि न रवना ॥
सो धिआनु धरहु जि बहुरि न धरना ।
अैसे मरहु जि बहुरि न मरना ॥ २ ॥

उलटी गंगा जमुन मिलावउ ।
बिनु जल संगम मन महि न्हावउ ॥
लोचा समसरि इहु बिउहारा ।
ततु बीचारि किआ अवरि बीचारा ॥ ३ ॥

अपु तेजु बाइ प्रिथमी अकासा ।
अैसी रहत रहउ हरि पासा ॥
कहै कबीर निरंजन धिआवउ ।
तितु घरि जा जि बहुरि न आवउ ॥ ४ ॥

१६

कंचन सिउ पाईऔ नही तोलि ।
मनु दे रामु लीआ है मोलि ॥
अब मोहि रामु अपुना करि जानिआ ।
सहज सुभाइ मेरा मनु मानिआ ॥ १ ॥

ब्रहमै कथि कथि अंतु न पाइआ ।
राम भगति बैठे घरि आइआ ॥ २ ॥

कहु कबीर चंचल मति तिआगी ।
केवल राम भगत निज भागी ॥ ३ ॥

२०

जिह मरनै सभु जगतु तरासिश्रा ।
सो मरना गुर सबदि प्रगासिश्रा ॥
अब कैसे मरउ मरनि मनु मानिश्रा ।
मरि मरि जाते जिन रामु न जानिश्रा ॥ १ ॥

मरनो मरनु कहै सभु कोई ।
सहजे मरै अमरु होइ सोई ॥ २ ॥

कहु कबीर मनि भइश्रा अनंदा ।
गइश्रा भरमु रहिश्रा परमानंदा ॥ ३ ॥

२१

कत नही ठउर मूलु कत लावउ।
खोजत तन महि ठउर न पावउ॥
लागी होइ सु जानै पीर।
राम भगति अनीआले तीर॥ १॥

एक भाइ देखउ सभ नारी।
किआ जानउ सह कउन पिआरी॥ २॥

कहु कबीर जा कै मसतकि भागु।
सभ परहरि ता कउ मिलै सुहागु॥ ३॥

२२

जा कै हरि सा ठाकुरु भाई।
मुकति अनंत पुकारणि जाई॥
अब कहु राम भरोसा तोरा।
तब काहू का कवनु निहोरा॥ १॥

तीनि लोक जाकै हहि भार।
सो काहे न करै प्रतिपार॥ २॥

कहु कबीर इक बुधि बीचारी।
किआ बसु जउ बिखु दे महतारी॥ ३॥

२३

बिनु सत सती होइ कैसे नारि ।
पंडित देखहु रिदै बीचारि ॥
प्रीति बिना कैसे बधै सनेहु ।
जब लग रसु तब लग नही नेहु ॥ १ ॥

साहनि सतु करै जीअ अपनै ।
सो रमये कउ मिलै न सपनै ॥ २ ॥

तनु मनु धनु ग्रिहु सउपि सरीरु ।
सोई सुहागनि कहै कबीरु ॥ ३ ॥

बिखिआ बिआपिआ सगल संसारु ।
बिखिआ लै डूबी परवारु ॥
रे नर नाव चउड़ि कत बोड़ी ।
हरि सिउ तोड़ि बिखिआ संगि जोड़ी ॥ १ ॥

सुरि नर दाधे लागी आगि ।
निकटि नीरु पसु पीवसि न झागि ॥ २ ॥

चेतत चेतत निकसिओ नीरु ।
सो जलु निरमलु कथत कबीरु ॥ ३ ॥

२५

जिह कुलि पूतु न गिआन बीचारी ।
विधवा कस न भई महतारी ॥
जिह नर राम भगति नहि साधी ।
जनमत कस न मुओ अपराधी ॥ १ ॥

मुचु मुचु गरभ गए कीन बचिआ ।
बुडभुज रूप जीवे जग मझिआ ॥ २ ॥

कहु कबीर जैसे सुंदर सरूप ।
नाम बिना जैसे कुबज कुरूप ॥ ३ ॥

२६

जो जन लेहि खसम का नाउ ।
तिनकै सद बलिहारै जाउ ॥
सो निरमलु निरमल हरि गुन गावै ।
सो भाई मेरै मनि भावै ॥ १ ॥

जिह घट रामु रहिआ भरपूरि ।
तिन की पग पंकज हम धूरि ॥ २ ॥

जाति जुलाहा मति का धीरु ।
सहजि सहजि गुण रमै कबीरु ॥ ३ ॥

२७

गगनि रसाल चुऐ मेरी भाठी ।
संचि महा रसु तनु भइआ काठी ॥
उआ कउ कहीऐ सहज मतवारा ।
पीवत राम रसु गिआन बीचारा ॥ १ ॥

सहज कलालनि जउ मिलि आई ।
आनंदि माते अनदिनु जाई ॥ २ ॥

चीनत चीतु निरंजन लाइआ ।
कहु कबीर तौ अनभउ पाइआ ॥ ३ ॥

२८

मन का सुभाउ मनहि बिआपी ।
मनहि मारि कवन सिधि थापी ॥
कवनु सु मुनि जो मनु मारै ।
मन कउ मारि कहहु किसु तारै ॥ १ ॥

मन अंतरि बोलै सभु कोई ।
मन मारे बिनु भगति न होई ॥ २ ॥

कहु कबीर जो जानै भेउ ।
मनु मधुसूदनु त्रिभवण देउ ॥ ३ ॥

२६

ओइ जु दीसहि अंबरि तारे।
किनि ओइ चीते चीतनहारे॥
कहु रे पंडित अंबरु का सिउ लागा।
बूझै बूझनहारु सभागा॥ १॥

सूरज चंदु करहि उजीआरा।
सभ महि पसरिआ ब्रहम पसारा॥ २॥

कहु कबीर जानैगा सोइ।
हिरदै रामु मुखि रामै होइ॥ ३॥

३०

बेद की पुत्री सिंम्रिति भाई ।
सांकल जेवरी लैहै आई ॥
आपन नगरु आप ते बाधिआ ।
मोह कै फाधि काल सरु सांधिआ ॥ १ ॥

कटी न कटै तूटि नह जाई ।
सा सापनि होइ जग कउ खाई ॥ २ ॥

हम देखत जिनि सभु जगु लूटिआ ।
कहु कबीर मै राम कहि छूटिआ ॥ ३ ॥

३१.

देइ मुहार लगामु पहिरावउ ।
सगलत जीनु गगन दउरावउ ॥
अपनै बीचारि असवारी कीजै ।
सहज कै पावड़ै पगु धरि लीजै ॥ १ ॥

चलु रे बैकुंठ तुझहि ले तारउ ।
हिच हित प्रेम कै चाबुक मारउ ॥ २ ॥

कहत कबीर भले असवारा ।
बेद कतेब ते रहहि निरारा ॥ ३ ॥

३२

जिह मुखि पांचउ अंम्रित खाए ।
तिह मुख देखत लूकट लाए ॥
इकु दुखु राम राइ काटहु मेरा ।
अगनि दहै अरु गरभ बसेरा ॥ १ ॥

काइआ बिगूती बहु बिधि भाती ।
को जारे को गड ले माटी ॥ २ ॥

कहु कबीर हरि चरण दिखावहु ।
पाछै ते जमु किउ न पठावहु ॥ ३ ॥

३३

आपे पावक आपे पवना ।
जारै खसमु त राखै कवना ॥
राम जपत तनु जरि की न जाइ ।
राम नाम चितु रहिआ समाइ ॥ १ ॥

का को जरै काहि होइ हानि ।
नट वट खेलै सारिगपानि ॥ २ ॥

कहु कबीर अखर दुइ भाखि ।
होइगा खसमु त लेइगा राखि ॥ ३ ॥

३४

ना मै जोग धिआन चितु लाइआ ।
बिनु बैराग न छूटसि माइआ ॥
कैसे जीवनु होइ हमारा ।
जब न होइ राम नाम अधारा ॥ १ ॥

कहु कबीर खोजउ असमान ।
राम समान न देखउ आन ॥ २ ॥

३५

जिहि सिरि रचि रचि बाधत पाग ।
सो सिरु चुंच सवारहि काग ॥
इसु तन धन को किआ गरबईआ ।
राम नामु काहे न द्रिड़ीआ ॥ १ ॥

कहत कबीर सुनहु मन मेरे ।
इहो हवाल होहिगे तेरे ॥ २ ॥

३६

सुखु मांगत दुखु आगै आवै ।
सो सुखु हमहु न मांगिआ भावै ॥
बिखिआ अजहु सुरति सुख आसा ।
कैसे होई है राजा राम निवासा ॥ १ ॥

इसु सुख ते सिव ब्रहम डराना ।
सो सुखु हमहु साचु करि जाना ॥ २ ॥

सनकादिक नारद मुनि सेखा ।
तिन भी तन महि मनु नही पेखा ॥ ३ ॥

इसु मन कउ कोई खोजहु भाई ।
तन छूटे मनु कहा समाई ॥ ४ ॥

गुर प्रसादी जैदेउ नामां ।
भगति कै प्रेमि इनही है जाना ॥ ५ ॥

इसु मन कउ नही आवन जाना ।
जिसका भरमु गइआ तिनि साचु पछाना ॥ ६ ॥

इसु मन कउ रूपु न रेखिआ काई ।
हुकमे होइआ हुकमु बूझि समाई ॥ ७ ॥

इस मंन का कोई जानै भेउ ।
इह मनि लीण भए सुखदेउ ॥ ८ ॥

जीउ एकु अरु सगल सरीरा ।
इसु मन कउ रवि रहे कबीरा ॥ ९ ॥

३७

अहिनिसि एक नाम जो जागे ।
केतक सिध भए लिव लागे ॥
साधक सिध सगल मुनि हारे ।
एक नाम कलिप तर तारे ॥ १ ॥

जो हरि हरे सु होहि न आना ।
कहि कबीर राम नाम पछाना ॥ २ ॥

३८

रे जीअ निलज लाज तुहि नाही ।
हरि तजि कत काहू के जांही ॥
जाको ठाकुरु ऊचा होई ।
सो जनु पर घर जात न सोही ॥ १ ॥

सो साहिबु रहिआ भरपूरि ।
सदा संगि नाही हरि दूरि ॥ २ ॥

कवला चरन सरन है जा के ।
कहु जन का नाही घर ता के ॥ ३ ॥

सभु कोऊ कहै जासु की बाता ।
सो संम्रथु निज पति है दाता ॥ ४ ॥

कहै कबीरु पूरन जग सोई ।
जाकै हिरदै अवरु न होई ॥ ५ ॥

३६

कउनु को पूतु पिता को का को।
कउनु मरै को देइ संतापो॥
हरि ठग जग कउ ठगउरी लाई।
हरि के बिओग कैसे जीअउ मेरी माई॥ १॥

कउन को पुरखु कउन की नारी।
इआ तत लेहु सरीर बिचारी॥ २॥

कहि कबीर ठग सिउ मनु मानिआ।
गई ठगउरी ठगु पहिचानिआ॥ ३॥

४०

अब मो कउ भए राजा राम सहाई ।
जनम मरन कटि परम गति पाई ॥
साधू संगति दीओ रलाइ ।
पंच दूत ते लीओ छडाइ ॥
अंम्रित नामु जपउ जपु रसना ।
अमोल दासु करि लीनो अपना ॥ १ ॥
सतिगुर कीनो पर उपकारु ।
काढि लीन सागर संसार ॥
चरन कमल सिउ लागी प्रीति ।
गोबिंदु बसै निता नित चीत ॥ २ ॥
माइआ तपति बुझिआ अंगिआरु ।
मनि संतोखु नामु आधारु ॥
जलि थलि पूरि रहे प्रभ सुआमी ।
जत पेखउ तत अंतरजामी ॥ ३ ॥
अपनी भगति आप ही द्रिड़ाई ।
पूरब लिखतु मिलिआ मेरे भाई ॥
जिसु क्रिपा करे तिसु पूरन साज ।
कबीर को सुआमी गरीबनिवाज ॥ ४ ॥

४१

जलि है सूतकु थल है सूतकु सूतक ओपति होई ।
जनमे सूतकु मूए फुनि सूतकु सूतक परज बिगोई ॥
कहु रे पंडीआ कउन पवीता ।
ऐसा गिआनु जपहु मेरे मीता ॥ १ ॥
नैनहु सूतकु बैनहु सूतकु सूतकु स्रवनी होई ।
ऊठत बैठत सूतकु लागै सूतकु परै रसोई ॥ २ ॥
फासन की बिधि सभु कोऊ जानै छूटन की इकु कोई ।
कहि कबीर रामु रिदै बिचारै सूतकु तिन्है न होई ॥ ३ ॥

४२

झगरा एकु निबेरहु राम ।
जउ तुम अपने जन सौ कामु ॥

इहु मनु बडा कि जा सउ मनु मनिआ ।
रामु बडा कै रामहि जानिआ ॥ १ ॥

ब्रहमा बडा कि जासु उपाइआ ।
बेदु बडा कि जहां ते आइआ ॥ २ ॥

कहि कबीर हउ भइआ उदासु ।
तीरथु बडा कि हरि का दासु ॥ ३ ॥

४३

देखौ भाई ज्ञान की आई आंधी ।
सभै उडानी भ्रम की टाटी रहै न माइआ बांधी ॥

दुचिते की दुइ थूनि गिरानी मोहु बलेंडा टूटा ।
तिसना छानि परी धर ऊपरि दुरमति भांडा फूटा ॥ १ ॥

आंधी पाछै जो जलु बरखै तिहि तेरा जनु भीनां ।
कहि कबीर मनि भइआ प्रगासा उदै भानु जब चीना ॥ २ ॥

४४

हरि जसु सुनहि न हरि गुन गावहि ।
बातन ही असमानु गिरावहि ॥

ऐसे लोगन सिउ किआ कहीऐ ।
जो प्रभ कीए भगति ते बाहज तिन ते सदा डराने रहीऐ ॥ १ ॥

आपि न देहि चुरू भरि पानी ।
तिह निंदहि जिह गंगा आनी ॥ २ ॥

बैठत उठत कुटिलता चालहि ।
आपु गए अउरन हू घालहि ॥ ३ ॥

छाडि कुचरचा आन न जानहि ।
ब्रहमा हू को कहिओ न मानहि ॥ ४ ॥

आपु गए अउरन हू खोवहि ।
आगि लगाइ मंदर मै सोवहि ॥ ५ ॥

अवरन हसत आप हहि कांने ।
तिन कउ देखि कबीर लजाने ॥ ६ ॥

४५

जीवत पितर न मानै कोऊ मूएं सराध कराही ।
पितर भी बपुरे कहु किउ पावहि कऊआ कूकर खाही ॥

मो कउ कुसलु बतावहु कोई ।
कुसल कुसलु करते जगु बिनसै कुसलु भी कैसे होई ॥ १ ॥

माटी के करि देवी देवा तिसु आगै जीउ देही ।
असे पितर तुमारे कहीअहि आपन कहिआ न लेही ॥ २ ॥

सरजीउ काटहि निरजीउ पूजहि अंतकाल कउ भारी ।
राम नाम की गति नही जानी भै डूबे संसारी ॥ ३ ॥

देवी देवा पूजहि डोलहि पारब्रहमु नही जाना ।
कहत कबीर अकुलु नही चेतिआ बिखिआ सिउ लपटाना ॥ ४ ॥

जीवत मरै मरै फुनि जीवै ऐसे सुंनि समाइआ ।
अंजन माहि निरंजनि रहीऐ बहुड़ि न भव जलि पाइआ ॥

मेरे राम ऐसा खीरु बिलोईऐ ॥
गुर मति मनूआ असथिरु राखहु इनि बिधि अंम्रितु पीओईऐ ॥ १ ॥

गुर कै बाणि बजर कल छेदी प्रगटिआ पदु परगासा ।
सकति अधेर जेवड़ी भ्रमु चूका निहचलु सिव घरि बासा ॥ २ ॥

तिनि बिनु बाणै धनखु चढाईऐ इहु जगु बेधिआ भाई ।
दह दिस बूडी पवनु झुलावै डोरि रही लिव लाई ॥ ३ ॥

उनमनि मनूआ सुंनि समाना दुबिधा दुरमति भागी ।
कहु कबीर अनभउ इकु देखिआ राम नामि लिव लागी ॥ ४ ॥

४७

उलटत पवन चक्र खटु भेदे सुरति सुंन अनरागी ।
आवै न जाइ मरै न जीवै तासु खोजु बैरागी ॥

मेरे मन मन ही उलटि समाना ।
गुर परसादि अकलि भई अवरै न तरु था बेगाना ॥ १ ॥

निवरै दूरि दूरि फुनि निवरै जिनि जैसा करि मानिआ ।
अलउती का जैसे भइआ बरेडा जिनि पीआ तिनि जानिआ ॥ २ ॥

तेरी निरगुन कथा काइ सिउ कहिऐ ऐसा कोइ बिबेकी ।
कहु कबीर जिनि दीआ पलीता तिनि तैसी झल देखी ॥ ३ ॥

तह पावस सिंधु धूप नही छहीआ तह उतपति परलउ नाही ।
जीवन मिरतु न दुखु सुखु बिआपै सुंन समाधि दोऊ तह नाही ॥
सहज की अकथ कथा है निरारी ।
तुलि नही चढै जाइ न मुकाती हलुकी लगै न भारी ॥ १ ॥

अरध उरध दोऊ तह नाही राति दिनसु तह नाही ।
जलु नही पवनु पावकु फुनि नाही सतिगुर तहा स साही ॥ २ ॥

अगम अगोचरु रहै निरंतरि गुर किरपा ते लहीऐ ।
कहु कबीर बलि जाउ गुर अपुने सत संगति मिलि रहीऐ ॥ ३ ॥

पापु पुंनु दुइ बैल बिसाहे पवनु पूजी परगासिओ ।
त्रिसना गूणि भरी घट भीतरि इन बिधि टांड बिसाहिओ ॥
ऐसा नाइकु रामु हमारा ।
सगल संसारु किओ बनजारा ॥ १ ॥

कामु क्रोधु दुइ भये जगाती मन तरंग बटवारा ।
पंच ततु मिलि दानु निबेरहि टांडा उतरिओ पारा ॥ २ ॥

कहत कबीरु सुनहु रे संतहु अब ऐसी बनि आई ।
घाटी चढत बैलु इकु थाका चलो गोनि छिटकाई ॥ ३ ॥

५०

पेवकड़ै दिन चारि है साहुरड़ै जाणा ।
अंधा लोकु न जाणई मूरखु एआणा ॥
कहु डडीआ बाधै धन खड़ी ।
पाहू घरि आए मुकलाऊ आए ॥ १ ॥
ओह जि दिसै खूहड़ी कउन लाजु वहारी ।
लाजु घड़ी सिउ तूटि पड़ी उठि चली पनिहारी ॥ २ ॥
साहिबु होइ दइआलु क्रिपा करे अपुना कारजु सवारे ।
ता सोहागणि जाणीऐ गुर सबदु बीचारे ॥ ३ ॥
किरत की बांधी सभ फिरै देखहु बीचारी ।
एस नो किआ आखीऐ किआ करै विचारी ॥ ४ ॥
भई निरासी उठि चली चित बंधि न धीरा ।
हरि की चरणी लागि रहु भजु सरणि कबीरा ॥ ५ ॥

५१

जोगी कहहि जोगु भल मीठा अवरु न दूजा भाई ।
रुंडित मुंडित एकै सबदी एइ कहहि सिधि पाई ॥
हरि बिनु भरमि भुलाने अंधा ।
जा पहि जाउ आपु छुटकावनि ते बाधे बहु फंधा ॥ १ ॥

जह ते उपजी तही समानी इहि बिधि बिसरी तब ही ।
पंडित गुणी सूर हम दाते एहि कहहि बड हम ही ॥ २ ॥

जिसहि बुझाए सोई बूझै बिनु बूझे किउ रहीऐ ।
सतिगुरु मिलै अंधेरा चूकै इन बिधि माणकु लहीऐ ॥ ३ ॥

तजि बावे दाहने बिकारा हरि पदु द्रिड़ु करि रहीऐ ।
कहु कबीर गूंगै गुड़ु खाइआ पूछे ते किआ कहीऐ ॥ ४ ॥

५२

जह कछु अहा तहा किछु नाही पंच ततु तह नाही ।
इड़ा पिंगला सुखमन बंदे ए अवगन कत जाही ॥
तागा तूटा गगनु बिनसि गइआ तेरा बोलतु कहा समाई ।
एह संसा मो कउ अनदिनु बिआपै मो कउ को न कहै समझाई ॥ १ ॥

जह बरभंडु पिंडु तह नाही रचनहारु तह नाही ।
जोड़णहारो सदा अतीता इह कहीऐ किसु माही ॥ २ ॥

जोड़ी जुड़ै न तोड़ी तूटै जब लगु होइ बिनासी ।
का को ठाकुरु का को सेवकु को काहू कै जासी ॥ ३ ॥

कहु कबीर लिव लागि रही है जहा बसे दिन राती ।
उआ का मरमु ओही परु जाने ओहु तउ सदा अबिनासी ॥ ४ ॥

५३

सुरति सिम्रिति दुइ कंनी मुंदा परमिति बाहरि खिंथा ।
सुंन गुफा महि आसणु बैसणु कलप बिबरजित पंथा ॥
मेरे राजन मै बैरागी जोगी ।
मरत न सोग बिओगी ॥ १ ॥

खंड ब्रहमंड महि सिंडी मेरा बटूआ सभु जगु भसमाधारी ।
ताड़ी लागी त्रिपलु पलटीऐ छूटै होइ पसारी ॥ २ ॥

मनु पवनु दुइ तूंबा करीहै जुग जुग सारद साजी ।
थिरु भई तंती तूटसि नाही अनहद किंगुरी बाजी ॥ ३ ॥

सुनि मन मगन भए है पूरे माइआ डोल न लागी ।
कहु कबीर ता कउ पुनरपि जनमु नही खेलि गइओ बैरागी ॥ ४ ॥

५४

गज नव गज दस गज इकीस पुरीआ एक तनाई ।
साठ सूत नव खंड बहतरि पाटु लगो अधिकाई ॥

गई बुनावन माहो ।
घर छोडिऐ जाइ जुलाहो ॥ १ ॥

गजी न मिनीऐ तोलि न तुलीऐ पाचनु सेर अढाई ।
जौ करि पाचनु बेगि न पावै झगरु करै घर हाई ॥ २ ॥

दिनकी बैठ खसम की बरकस इह बेला कत आई ।
छूटे कूंडे भीगै पूरीआ चलिओ जुलाहो रीसाई ॥ ३ ॥

छोछी नली तंतु नही निकसै न तर रही उरझाई ।
छोडि पसारु ईहा रहु बपुरी कहु कबीर समझाई ॥ ४ ॥

५५

एक जोति एका मिली किंबा होइमहोइ ।
जितु घटि नामु न ऊपजै फूटि मरै जनु सोइ ॥

सावल सुंदर रामईश्रा ।
मेरा मनु लागा तोहि ॥ १ ॥

साधु मिलै सिधि पाईश्रै कि एहु जोगु कि भोगु ।
दुहु मिलि कारजु ऊपजै राम नाम संजोगु ॥ २ ॥

लोगु जानै इहु गीतु है इहु तउ ब्रहम बीचार ।
जिउ कासी उपदेसु होइ मानस मरती बार ॥ ३ ॥

कोई गावै को सुणै हरि नामा चितु लाइ ।
कहु कबीर संसा नही श्रंति परमगति पाइ ॥ ४ ॥

५६

जेते जतन करत ते डूबे भव सागरु नही तारिओ रे ।
करम धरम करते बहु संजम अहं बुधि मनु जारिओ रे ॥
सास ग्रास को दातो ठाकुरु सो किउ मनहु बिसारिओ रे ।
हीरा लालु अमोलु जनमु है कउडी बदलै हारिओ रे ॥ १ ॥

त्रिसना त्रिखा भूख भ्रमि लागी हिरदै नाहि बीचारिओ रे ।
उनमत मान हिरिओ मन माही गुर का सबदु न धारिओ रे ॥ २ ॥

सुआद लुभत इंद्री रस प्रेरिओ मद रस लैत बिकारिओ रे ।
करम भाग संतन संगाने कासट लोह उधारिओ रे ॥ ३ ॥

धावत जोनि जनम भ्रमि थाके अब दुख करि हम हारिओ रे ।
कहि कबीर गुर मिलत महा रसु प्रेम भगति निसतारिओ रे ॥ ४ ॥

५७

कालबूत की हसतनी मन बउरा रे चलतु रचिओ जगदीस ।
काम सुआइ गज बसि परे मन बउरा रे अंकसु सहिओ सीस ॥
बिखै बाचु हरि राचु समझु मन बउरा रे ।
निरभै होइ न हरि भजे मन बउरा रे गहिओ न राम जहाजु ॥ १ ॥

मरकट मुसटी अनाज की मन बउरा रे लीनी हाथु पसारि ।
छूटन को सहसा परिआ मन बउरा रे नाचिओ घर घर बारि ॥ २ ॥

जिउ नलनी सूअटा गहिओ मन बउरा रे माया इहु बिउहारु ।
जैसा रंगु कसुंभ का मन बउरा रे तिउ पसरिओ पासारु ॥ ३ ॥

नावन कउ तीरथ घने मन बउरा रे पूजन कउ बहु देव ।
कहु कबीर छूटनु नही मन बउरा रे छूटनु हरि की सेव ॥ ४ ॥

५८

अगनि न दहै पवनु नही मगनै तसकरु नेरि न आवै ।
राम नाम धनु करि संचउनी सो धनु कतही न जावै ॥
हमरा धनु माधउ गोबिंदु धरणी धरु इहै सार धनु कहीऔ ।
जो सुखु प्रभ गोबिद की सेवा सो सुखु राजि न लहीऔ ॥ १ ॥

इसु धन कारणि सिव सनकादिक खोजत भए उदासी ।
मनि मुकुंदु जिहबा नाराइनु परै न जम की फासी ॥ २ ॥

निज धनु गिआनु भगति गुर दीनी तासु सुमति मनु लागा ।
जलत अंभ थंभि मनु धावत भरम बंधन भउ भागा ॥ ३ ॥

कहै कबीरु मदन के माते हिरदै देखु बीचारी ।
तुम घरि लाख कोटि अस्व हसती हम घरि एकु मुरारी ॥ ४ ॥

५६

जिउ कपि के कर मुसटि चनन की लुबधि न तिआगु दइओ ।
जो जो करम कीए लालच सिउ ते फिरि गरहि परिओ ॥
भगति बिनु बिरथे जनमु गइओ ।
साध संगति भगवान भजन बिनु कही न सचु रहिओ ॥ १ ॥

जिउ उदिआन कुसम परफुलित किनहि न घ्राउ लइओ ।
तैसे भ्रमत अनेक जोनि महि फिरि फिरि काल हइओ ॥ २ ॥

इआ धन जोबन अरु सुत दारा पेखन कउ जु दइओ ॥
तिन ही माहि अटकि जो उरझे इंद्री प्रेरि लइओ ॥ ३ ॥

अउध अनल तनु तिन को मंदरु चहु दिस ठाटु ठइओ ।
कहि कबीर भै सागर तरन कउ मै सतिगुर ओट लइओ ॥ ४ ॥

पानी मैला माटी गोरी ।
इस माटी की पुतरी जोरी ॥
मै नाही कछु आहि न मोरा ।
तनु धनु सभु रसु गोबिंद तोरा ॥ १ ॥

इस माटी महि पवनु समाइआ ।
झूठा परपंचु जोरि चलाइआ ॥ २ ॥

किनहू लाख पांच की जोरी ।
अंत की बार गगरीआ फोरी ॥ ३ ॥

कहि कबीर इक नीव उसारी ।
खिन महि बिनसि जाइ अहंकारी ॥ ४ ॥

राम जपउ जीअ ऐसे ऐसे ।
ध्रू प्रहिलाद जपिओ हरि जैसे ॥
दीन दइआल भरोसे तेरे ।
सभु परवारु चड़ाइआ बेड़े ॥ १ ॥

जा तिसु भावै ता हुकमु मनावै ।
इस बेड़े कउ पारि लघावै ॥ २ ॥

गुर परसादि ऐसी बुधि समानी ।
चूकि गई फिरि आवनि जानी ॥ ३ ॥

कहु कबीर भजु सारिगपानी ।
उरवारि पारि सभ एको दानी ॥ ४ ॥

६२

जोनि छाडि जउ जग महि आइओ ।
लागत पवन खसमु बिसराइओ ॥
जीअरा हरि के गुना गाउ ॥ १ ॥

गरभ जोनि महि उरध तपु करता ।
तउ जठर अगनि महि रहता ॥ २ ॥

लख चउरासीह जोनि भ्रमि आइओ ।
अब के छुटके ठउर न ठाइओ ॥ ३ ॥

कहु कबीर भजु सारिगपानी ।
आवत दीसै जात न जानी ॥ ४ ॥

६३

सुरगबासु न बाछीऐ डरीऐ न नरकि निवासु ।
होना है सो होई है मनहि न कीजै आस ॥
रमईआ गुन गाईऐ जा ते पाईऐ परम निधानु ॥ १ ॥

किआ जपु किआ तपु संजमो किआ बरतु किआ इसनानु ।
जब लगु जुगति न जानीऐ भाउ भगति भगवान ॥ २ ॥

संपै देखि न हरखीऐ बिपति देखि न रोइ ।
जिउ संपै तिउ बिपति है बिधने रचिआ सो होइ ॥ ३ ॥

कहि कबीर अब जानिआ संतन रिदै मझारि ।
सेवक सो सेवा भले जिह घट बसै मुरारि ॥ ४ ॥

६४

रे मन तेरो कोइ नही खिंचि लेइ जिनि भारु ।
बिरख बसेरो पंखि को तैसो इहु संसारु ॥
राम रसु पीआ रे जिह रस बिसरि गए रस अउर ॥ १ ॥

अउर मुए किआ रोईऐ जउ आपा थिरु न रहाइ ।
जो उपज सो बिनसि है दुखु करि रोवै बलाइ ॥ २ ॥

जह की उपजी तह रची पीवत मरदन लाग ।
कहि कबीर चिति चेतिआ राम सिमरि बैराग ॥ ३ ॥

पंथु निहारै कामनी लोचन भरी ले उसासा ।
उर न भीजै पगु ना खिसै हरि दरसन की आसा ॥
उडहु न कागा कारे ।
बेगि मिलीजै अपुने राम पिआरे ॥ १ ॥

कहि कबीर जीवन पद कारनि हरि की भगति करीजै ।
एकु आधारु नाम नाराइन रसना रामु रवीजै ॥ २ ॥

आस पास घन तुरसी का बिरवा माझ बनारसि गाऊ रे।
उआ का सरूपु देखि मोही गुआरनि मो कउ छोडि न आउ न जाहू रे ॥
तोहि चरन मनु लागो सारिंगधर सो मिलै जो बड भागो रे ॥१॥

बिंद्राबन मन हरन मनोहर क्रिसन चरावत गाऊ रे।
जा का ठाकुरु तुही सारिंगधर मोहि कबीरा नाऊ रे ॥२॥

६७

बिपल बसत्र केते है पहिरे किया बन मधे बासा ।
कहा भइया नर देवा धोखे किया जलि बोरियो गिआता ॥
जीअ रे जाहिगा मै जानां । अबिगतु समझु इआना ॥
जत जत देखउ बहुरि न पेखउ संगि माइआ लपटाना ॥ १ ॥
गिआनी धिआनी बहु उपदेसी इहु जगु सगलो धंधा ।
कहि कबीर इक राम नाम बिनु इआ जगु माइआ अंधा ॥ २ ॥
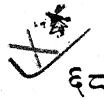
मन रे छाडहु भरमु प्रगटु होइ नाचहु इआ माइआ के डांडे ।
सूरु कि सनमुख रन ते डरपै सती कि सांचै भांडे ॥

डगमग छाडि रे मन बउरा ।
अब तउ जरे मरे सिधि पाईऐ लीनो हाथि संधउरा ॥ १ ॥

काम क्रोध माइआ के लीने इआ विधि जगतु बिगूता ।
कहि कबीर राजा राम न छोडउ सगल ऊच ते ऊचा ॥ २ ॥

फुरमानु तेरा सिरै ऊपरि फिरि न करत बीचार ।
तुही दरीआ तुही करीआ तुझै ते निसतार ॥
बंदे बंदगी इकतीआर ।
साहिबु रोसु धरउ कि पिआरु ॥ १ ॥
नामु तेरा आधारु मेरा जिउ फूलु जई है नारि ।
कहि कबीर गुलामु घर का जीआइ भावै मारि ॥ २ ॥

७०

लख चउरासीह जीअ जोनि महि भ्रमत नंदु बहु थाको रे।
भगति हेति अवतारु लीओ है भागु बडो बपुरा को रे॥
तुम जु कहत हउ नंद को नंदनु नंद सु नंदनु का को रे।
धरनि अकासु दसो दिस नाही तब इहु नंदु कहा थो रे॥ १॥

संकटि नही परै जोनि नही आवै नामु निरंजन जा को रे।
कबीर को सुआमी अैसो ठाकुरु जा कै माई न बापो रे॥ २॥

७१

निंदउ निंदउ मो कउ लोगु निंदउ ।
निंदा जन कउ खरी पिआरी ॥
निंदा बापु निंदा महतारी ॥

निंदा होइ त बैकुंठि जाईऐ ।
नामु पदारथु मनहि बसाईऐ ॥
रिदै सुध जउ निंदा होइ ।
हमरे कपरे निंदकु धोइ ॥ १ ॥

निंदा करै सु हमरा मीतु ।
निंदक माहि हमारा चीतु ॥
निंदकु सो जो निंदा होरै ।
हमरा जीवनु निंदकु लोरै ॥ २ ॥

निंदा हमरी प्रेम पिआरु ।
निंदा हमरा करै उधारु ॥
जन कबीर कउ निंदा सारु ।
निंदकु डूबा हम उतरे पारि ॥ ३ ॥

७२

राजा राम तूं ऐसा निरभउ तरन तारन राम राइआ ॥

जब हम होते तब तुम नाही अब तुम हहु हम नाही ।
अब हम तुम एक भए हहि एकै देखत मनु पतीआही ॥ १ ॥

जब बुधि होती तब बलु कैसा अब बुधि बलु न खटाई ।
कहि कबीर बुधि हर लई मेरी बुधि बदली सिधि पाई ॥ २ ॥

७३

खट नेम करि कोठड़ी बांधी बसतु अनूपु बीच पाई ।
कुंजी कुलफु प्रान करि राखे करते बार न लाई ॥
अब मन जागत रहु रे भाई ।
गाफलु होइ कै जनमु गवाइओ चोरु मुसै घरु जाई ॥ १ ॥

पंच पहरूआ दर महि रहते तिन्ह का नही पतीआरा ।
चेति सुचेत चित होइ रहु तउ लै परगासु उजारा ॥ २ ॥

नउ घर देखि जु कामनि भूली बसतु अनूप न पाई ।
कहतु कबीर नवै घर मूसे दसवैं ततु समाई ॥ ३ ॥

७४

माई मोहि अवरु न जानिओ आना नां ।
सिव सनकादि जासु गुन गावहि तासु बसहि मोरे प्राना नां ।
हिरदे प्रगासु गिआन गुर गंमित गगन मंडल महि धिआना नां ।
बिखै रोग भै बंधन भागे मन निज घरि सुख जाना ना ॥ १ ॥

एकसु मति रति जानि मानि प्रभ दूसर मनहि न आना ना ।
चंदन बासु भए मन बासन तिआगि घटिओ अभिमाना ना ॥ २ ॥

जो जन गाइ धिआइ जसु ठाकुर तासु प्रभू है थाना नां ।
तिह बडभाग बसिओ मनि जा कै करम प्रधान मथाना ना ॥ ३ ॥

काटि सकति सिव सहजु प्रगासिओ एकै एक समाना ना ।
कहि कबीर गुर भेटि महां सुख भ्रमत रहे मनु माना नां ॥ ४ ॥

(बावन अखरी)

७५

बावन अछर लोक त्रै सभु कछु इनही माहि ।
ए अखर खिरि जाहिगे ओइ अखर इन महि नाहि ॥ १ ॥

जहा बोल तह अछर आवा । जह अबोल तह मनु न रहावा ॥
बोल अबोल मधि है सोई । जस ओहु है तस लखै न कोई ॥ २ ॥

अलह लहउ तउ किआ कहउ कहउ त को उपकार ।
बटक बीज महि रवि रहिओ जा को तीनि लोक बिसथार ॥ ३ ॥

अलह लहंता भेद छै कछु कछु पाइओ भेद ।
उलटि भेद मनु बेधिओ पाइओ अभंग अछेद ॥ ४ ॥

तुरक तरीकत जानीऐ हिंदू बेद पुरान ।
मन समझावन कारने कछूअक पड़ीऐ गिआन ॥ ५ ॥

ओ अंकार आदि मै जाना । लिखि अरु मेटै ताहि न माना ॥
ओ अंकार लखै जउ कोई । सोई लखि मेटणा न होई ॥ ६ ॥
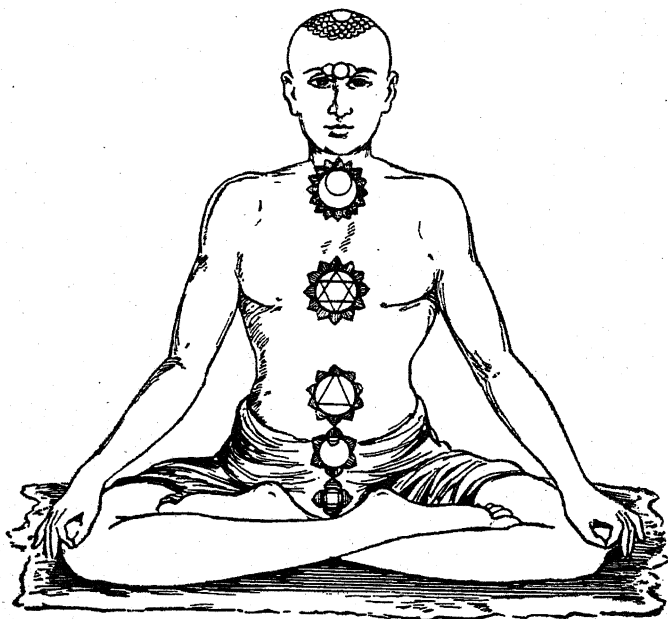
चित्र २—शरीर में षट् चक्र

कका किरणि कमल महि पावा । ससि बिगास संपट नही आवा ॥
अरु जे तहा कुसम रसु पावा । अकह कहा कहि का समझावा ॥ ७ ॥

खखा इहै खोड़ि मन आवा । खोड़े छाडि न दहदिस धावा ॥
खसमहि जाणि खिमा करि रहै । तउ होइ निखिअउ अखै पदु लहै ॥ ८ ॥

गगा गुर के बचन पछाना । दूजी बात न धरई काना ॥
रहै बिहंगम कतहि न जाई । अगह गहै गहि गगन रहाई ॥ ९ ॥

घघा घटि घटि निमसै सोई । घट फूटे घटि कबहि न होई ।
ता घट माहि घाट जउ पावा । सो घटु छाडि अवघट कत धावा ॥ १०॥

ङङा निग्रहि सनेहु करि निरवारो संदेह ।
नाही देखि न भाजीऐ परम सियानप एह ॥११॥

चचा रचित चित्र है भारी । तजि चित्रै चेतहु चितकारी ॥
चित्र बचित्र इहै अवझेरा । तजि चित्रै चितु राखि चितेरा ॥१२॥

छछा इहै छत्रपति पासा । छकि कि न रहहु छाडि कि न आसा ॥
रे मन मै तउ छिन छिन समझावा । ताहि छाडि कत आपु बधावा ॥१३॥

जजा जउ तन जीवत जरावै । जोबन जारि जुगति सो पावै ॥
अस जरि परजरि जरि जब रहै । तब जाइ जोति उजारउ लहै ॥१४॥

झझा उरझि सुरझि नही जाना । रहिओ झझकि नाही परवाना ॥
कत झखि झखि अउरन समझावा । झगरु कीए झगरउ ही पावा ॥१५॥

ञंञा निकटि जु घट रहिओ दूरि कहा तजि जाइ ।
जा कारणि जग ढूढिअउ नेरउ पाइअउ ताहि ॥१६॥

टटा विकट घाट घट माही । खोलि कपाट महलि कि न जाही ।
देखि अटल टलि कतहि न जावा । रहै लपटि घट परचउ पावा ॥१७॥

ठठा इहै दूरि ठग नीरा । नीठि नीठि मनु कीआ धीरा ॥
जिनि ठगि ठगिआ सगल जगु खावा । सो ठगु ठगिआ ठउर मनु आवा ॥१८॥

डडा डर उपजे डरु जाई । ता डर महि डरु रहिआ समाई ॥
जउ डर डरै त फिरि डरु लागै । निडरु हूआ डरु उर होइ भागै ॥१९॥

ढढा ढिग ढूढहि कत आना । ढूढत ही ढहि गए पराना ॥
चड़ि सुमेरि ढूढि जब आवा । जिह गड़ु गड़िओ सु गड़ महि पावा ॥२०॥

णाणा रणि रूतउ नर नेही करै । ना निवै ना फुनि संचरै ॥
धंनि जनमु ताही को गणै । मारै एकहि तजि जाइ घणै ॥२१॥

तता अतर तरिओ नह जाई । तन त्रिभवण महि रहिओ समाई ॥
जउ त्रिभवण मन माहि समावा । तउ ततहि तत मिलिआ सचु पावा ॥२२॥

थथा अथाह थाह नही पावा । ओहु अथाह इहु थिरु न रहावा ॥
थोड़ै थलि थानक आरंभै । बिनु ही थाभह मंदिरु थंभै ॥२३॥

ददा देखि जु बिनसन हारा । जस अदेखि तस राखि बिचारा ॥
दसवै दुआरि कुंची जब दीजै । तउ दइआल को दरसनु कीजै ॥२४॥

धधा अरधहि उरध निबेरा । अरधहि उरधह मंझि बसेरा ॥
अरधह छाडि उरध जउ आवा । तउ अरधहि उरध मिलिआ सुख पावा ॥२५॥

नंना निसि दिनु निरखत जाई । निरखत नैन रहे रत वाई ॥
निरखत निरखत जब जाइ पावा । तब ले निरखहि निरख मिलावा ॥२६॥

पपा अपर पारु नही पावा । परम जोति सिउ परचउ लावा ॥
पांचउ इंद्री निग्रह करई । पापु पुंनु दोउ निरवरई ॥२७॥

फफा बिनु फूलह फलु होई । ता फल फंक लखै जउ कोई ॥
दूणि न परई फंक बिचारै । ता फल फंक सभै तन फारै ॥२८॥

बबा बिंदहि बिंद मिलावा । बिंदहिं बिंदि न बिछुरन पावा ॥
बंदउ होइ बंदगी गहै । बंदक होइ बंद सुधि लहै ॥२९॥

भभा भेदहि भेद मिलावा । अब भउ भानि भरोसउ आवा ॥
जो बाहरि सो भीतरि जानिआ । भइआ भेदु भूपति पहिचानिआ ॥३०॥

ममा मूल गहिआ मनु मानै । मरमी होइ सु मन कउ जानै ॥
मत कोई मन मिलता बिलमावै । मगन भइआ ते सो सचु पावै ॥३१॥

ममा मन सिउ काजु है मन साधे सिधि होइ ।
मन ही मन सिउ कहै कबीरा मन सा मिलिआ न कोइ ॥३२॥

इहु मनु सकती इहु मनु सीउ । इहु मनु पंच तत को जीउ ॥
इहु मनु ले जउ उनमनि रहै । तउ तीनि लोक की बातै कहै ॥३३॥

यया जउ जानहि तउ दुरमति हनि करि बसि काइआ गाउ ।
रणि रूतउ भाजै नही सूरउ थारउ नाउ ॥३४॥

रारा रसु निरस करि जानिआ । होइ निरस सु रसु पहिचानिआ ॥
इह रस छाडे उह रसु आवा । उह रसु पीआ इह रसु नहि भावा ॥३५॥

लला ऐसे लिव मनु लावै । अनत न जाइ परम सचु पावै ॥
अरु जउ तहा प्रेम लिव लावै । तउ अलह लहै लहि चरन समावै ॥३६॥

ववा बार बार बिसन सम्हारि । बिसन संमारि न आवै हारि ॥
बलि बलि जे बिसन तना जसु गावै । विसन मिले सभ ही सचु पावै ॥३७॥

वावा वाही जानीऐ वा जानै इहु होइ ।
इहु अरु ओहु जब मिलै तब मिलत न जानै कोइ ॥३८॥

ससा सो नीका करि सोधहु । घट परचा की बात निरोधहु ॥
घट परचै जउ उपजै भाउ । पूरि रहिआ तह त्रिभवण राउ ॥३९॥
खखा खोजि परै जउ कोई । जो खोजै सो बहुरि न होई ॥
खोज बूझि जउ करै बीचारा । तउ भवजल तरत न लावै बारा ॥४०॥
ससा सो सह सेज सवारै । सोई सही संदेह निवारै ॥
अलप सुख छाडि परम सुख पावा । तब इह त्रीअ ओहु कंतु कहावा ॥४१॥
हाहा होत होइ नही जाना । जब ही होइ तबहि मनु माना ॥
है तउ सही लखै जउ कोई । तब ओही ओहु एहु न होई ॥४२॥
लिंउ लिंउ करत फिरै सभु लोगु । ता कारणि बिआपै बहु सोगु ॥
लखिमी बर सिउ जउ लिउ लावै । सोगु मिटै सभ ही सुख पावै ॥४३॥
खखा खिरत खपत गए केते । खिरत खपत अजहूं नह चेते ॥
अब जगु जानि जउ मना रहै । जह का बिछुरा तह थिरु लहै ॥४४॥
बावन अखर जोरे आनि । सकिआ न अखरु एकु पछानि ॥
सत का सबदु कबीरा कहै । पंडित होइ सु अनभै रहै ॥
पंडित लोगह कउ बिउहार । गिआनवंत कउ ततु बीचार ॥
जा कै जीअ जैसी बुधि होई । कहि कबीर जानैगा सोई ॥४५॥

थिंती

७६

सलोकु ॥ पंद्रह थिंती सात वार । कहि कबीर उरवार न पार ॥
साधिक सिध लखै जउ भेउ । आपे करता आपे देउ ॥

थिंती । अंमावस महि आस निवारउ । अंतरजामी रामु सम्हारहु ॥
जीवत पावहु मोख दुआर । अनभउ सबदु ततु निजु सार ॥
चरन कमल गोबिंद रंगु लागा ।
संत प्रसादि भए मन निरमल हरि कीरतन महि अनदिनु जागा ॥१॥

परवा प्रीतम करहु बीचार । घट महि खेलै अघट अपार ॥
काल कलपना कदे न खाइ । आदि पुरख महि रहै समाइ ॥२॥

दुतीआ दुहकरि जानै अंग । माइआ ब्रहम रमै सभ संग ॥
ना ओहु बढै न घटता जाइ । अकुल निरंजन एकै भाइ ॥३॥

त्रितीआ तीने सम करि लिआवै। आनद मूल परम पदु पावै॥
साध संगति उपजै बिस्वास। बाहरि भीतरि सदा प्रगास॥ ४॥
चउथहि चंचल मन कउ गहहु। काम क्रोध संगि कबहु न बहहु॥
जल थल माहे आपहि आप। आपै जपहु आपना जाप॥ ५॥
पांचै पंच तत बिसथार। कनिक कामिनी जुग बिउहार॥
प्रेम सुधा रसु पीवै कोइ। जरा मरण दुखु फेरि न होइ॥ ६॥
छठि खटु चक्र छहूं दिस धाइ। बिनु परचै नही थिरा रहाइ॥
दुबिधा मेटि खिमा गहि रहहु। करम धरम की सूल न सहहु॥ ७॥
सातैं सति करि बाचा जाणि। आतम रामु लेहु परवाणि॥
छूटै संसा मिटि जाहि दुख। सुंन सरोवरि पावहु सुख॥ ८॥
असटमी असट धातु की काइआ। ता महि अकुल महा निधि राइआ॥
गुर गम गिआन बतावै भेद। उलटा रहै अभंग अछेद॥ ९॥
नउमी नवै दुआर कउ साधि। बहती मनसा राखहु बांधि॥
लोभ मोह सभ बीसरि जाहु। जुगु जुगु जीवहु अमर फल खाहु॥१०॥
दसमी दह दिस होइ अनंद। छूटै भरमु मिलै गोबिंद॥
जोति सरूपी तत अनूप। अमल न मल न छाह नहीं धूप॥११॥

एकादसी एक दिस धावै। तनु जोनी संकट बहुरि न आवै॥
सीतल निरमल भइआ सरीरा। दूरि बतावत पाइआ नीरा॥१२॥
बारसि बारह उगवै सूर। अहिनिसि बाजे अनहद तूर॥
देखिआ तिहूं लोक का पीउ। अचरजु भइआ जीव ते सीउ॥१३॥
तेरसि ते रह अगम बखाणि। अरध उरध बिचि सम पहिचाणि॥
नीच ऊच नही मान अमान। बिआपिक राम सगल सामान॥१४॥
चउदसि चउदह लोक मझारि। रोम रोम महि बसहि मुरारि॥
सम संतोख का धरहु धिआन। नथनी कथीऔ ब्रहम गिआन॥१५॥
पूनिउ पूरा चंद अकास। पसरहि कला सहज परगास॥
आदि अंति मधि होइ रहिआ थीर। सुख सागर महि रमहि कबीर॥१६॥

वार

७७

बार बार हरि के गुन गावउ ।
गुर गमि भेदु सु हरि का पावउ ॥
आदित करै भगति आरंभ ।
काइआ मंदर मनसा थंभ ॥
अहिनिसि अखंड सुरही जाइ ।
तउ अनहद बेणु सहज महि बाइ ॥ १ ॥
सोमवारि ससि अंम्रितु झरै ।
चाखत बेगि सगल बिख हरै ॥
बाणी रोकिआ रहै दुआर ।
तउ मनु मतवारो पीवनहार ॥ २ ॥

मंगलवारे ले माहीति ।
पंच चोर की जाणै रीति ॥
घर छोडे बाहरि जिनि जाइ ।
ना तरु खरा रिसै है राइ ॥ ३ ॥

बुधवारि बुधि करै प्रगास ।
हिरदै कमल महि हरि का बास ॥
गुर मिलि दोऊ एक सम धरै ।
उरध पंक लै सूधा करै ॥ ४ ॥

ब्रिहसपति बिखिआ देइ बहाइ ।
तीनि देव एक संगि लाइ ॥
तीनि नदी तह त्रिकुटी माहि ।
अहिनिसि कसमल धोवहि नाहि ॥ ५ ॥

सुक्रितु सहारै सु इह ब्रति चड़ै ।
अनदिन आपि आप सिउ लड़ै ॥
सुरखी पांचउ राखै सबै ।
तउ दूजी द्रिसटि न पैसे कबै ॥ ६ ॥

थावर थिरु करि राखै सोइ ।
जोति दीवटी घट मह जोइ ॥
बाहरि भीतरि भइआ प्रगासु ।
तब हूआ सगल करम का नासु ॥ ७ ॥

जब लगु घट महि दूजी आन ।
तउ लउ महलि न लाभै जान ॥
रमत राम सिउ लागो रंगु ।
कहि कबीर तब निरमल अंग ॥ ८ ॥

रागु आसा

१

गुर चरण लागि हम बिनवता पूछत कह जीउ पाइआ ।
कवन काजि जगु उपजै बिनसै कहहु मोहि समझाइआ ॥

देव करहु दइआ मोहि मारगि लावहु जितु भै बंधन तूटै ।
जनम मरन दुख फेड़ करम सुख जीअ जनम ते छूटै ॥ १ ॥

माइआ फास बंध नही फारै अरु मन सुंनि न लूके ।
आपा पदु निरबाणु न चीन्हिआ इन बिधि अभिउ न चूके ॥ २ ॥

कही न उपजै उपजी जाणै भाव अभाव बिहूणा ।
उदे असत की मन बुधि नासी तउ सदा सहजि लिव लीणा ॥ ३ ॥

जिउ प्रतिबिंबु बिंब कउ मिली है उदक कुंभु बिगराना ।
कहु कबीर ऐसा गुण भ्रमु भागा तउ मनु सुंनि समाना ॥ ४ ॥

गज साढे तै तै धोतीआ तिहरे पाइनि तग ।
गली जिन्हा जपमालीआ लोटे हथि निबग ॥
ओइ हरि के संत न आखीअहि बानारसि के ठग ॥
ऐसे संत न मो कउ भावहि ।
डाला सिउ पेडा गटकावहि ॥ १ ॥

बासन मांजि चरावहि ऊपरि काठी धोइ जलावहि ।
बसुधा खोदि करहि दुइ चूल्हे सारे माणस खावहि ॥ २ ॥

ओइ पापी सदा फिरहि अपराधी मुखहु अपरस कहावहि ।
सदा सदा फिरहि अभिमानी सगल कुटंब डुबावहि ॥ ३ ॥
जितु को लाइआ तित ही लागा तैसे करम कमावै ।
कहु कबीर जिसु सतिगुरु भेटै पुनरपि जनमि न आवै ॥ ४ ॥

३

बापि दिलासा मेरो कीन्हा ।
सेज सुखाली, मुखि अंम्रितु दीन्हा ॥
तिसु बाप कउ किउ मनहु विसारी ।
आगै गइआ न बाजी हारी ॥
मुई मेरी माई, हउ खरा सुखाला ।
पहिरउ नही दगली लगै न पाला ॥ १ ॥

बलि तिसु बापै जिनि हउ जाइआ ।
पंचा ते मेरा संगु चुकाइआ ॥
पंच मारि पावा तलि दीने ।
हरि सिमरनि मेरा मनु तनु भीने ॥ २ ॥

पिता हमारो वड गोसाई ।
तिसु पिता पहि हउ किउकरि जाई ॥
सतिगुर मिले त मारगु दिखाइआ ।
जगत पिता मेरै मनि भाइआ ॥ ३ ॥

हउ पूतु तेरा तूं बापु मेरा ।
एकै ठाहर दुहा बसेरा ॥
कह कबीर जनि एको बूझिआ ।
गुर प्रसादि मै सभु किछु सूझिआ ॥ ४ ॥

४

इकतु पतरि भरि उरकट कुरकट इकतु पतरि भरि पानी।
आसि पासि पंच जोगीआ बैठे बीचि नकटदे रानी॥
नकटो को ठनगनु बाडा डूं। किनहि बिबेकी काटी तूं॥ १॥

सगल माहि नकटी का वासा सगल मारि अउहेरी।
सगलिआ की हउ बहिन भानजी, जिनहि बरी तिसु चेरी॥ २॥

हमरो भरता बडो बिबेकी आपे संतु कहावै।
ओहु हमारै माथै काइमु अउरु हमरै निकटि न आवै॥ ३॥

नाकहु काटी कानहु काटी काटि कूटि कै डारी।
कहु कबीर संतन की बैरनि तीनि लोक की पिआरी॥ ४॥
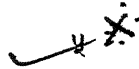
जोगी जती तपी संनिआसी बहु तीरथ भ्रमना ।
लुंजित मुंजित मोनि जटाधर अंति तऊ मरना ॥

ता ते सेवीअले रामना ।
रसना राम नाम हितु जा कै कहा करै जमना ॥ १ ॥

आगम निरगम जोतिक जानहि बहु बहु बिआकरना ।
तंत्र मंत्र सभ अउखध जानहि अंति तऊ मरना ॥ २ ॥

राज भोग अरु छत्र सिंघासन बहु सुंदरि रमना ।
पान कपूर सुबासक चंदन अंति तऊ मरना ॥ ३ ॥

बेद पुरान सिंम्रिति सभ खोजे कहू न ऊबरना ।
कहु कबीर इउ रामहि जंपउ मेटि जनम मरना ॥ ४ ॥

६

फीलु रबाबी बलदु पखावज कऊआ ताल बजावै ।
पहिरि चोलना गदहा नाचै, भैसा भगति करावै ॥
राजा राम ककरीआ बरे पकाए । किनै बूझनहारै खाए ॥ १ ॥

बैठि सिंघु घरि पान लगावै घीस गलउरे लिआवै ।
घरि घरि मुसरी मंगलु गावहि कछूआ संखु बजावै ॥ २ ॥

बंस को पूतु बीआहन चलिआ सुइने मंडप छाए ।
रूप कंनिआ सुंदरि बेधी ससै सिंघ गुन गाए ॥ ३ ॥

कहत कबीर सुनहु रे संतहु कीटी परबतु खाइआ ।
कछूआ कहै अंगार भि लोरउ लूकी सबदु सुनाइआ ॥ ४ ॥

७

बटूआ एकु बहतरि आधारी एको जिसहि दुआरा।
नवै खंड की प्रिथमी मागै सो जोगी जगि सारा॥
औसा जोगी नउ निधि पावै। तलका ब्रहमु ले गगनि चरावै॥ १॥
खिंथा गिआन धिआन करि सूई सबदु तागा मथि घालै।
पंच ततु की करि मिरगाणी गुर कै मारगि चालै॥ २॥
दइआ फाहुरी काइआ करि धूई द्रिसटि की अगनि जलावै।
तिस का भाउ लए रिद अंतरि चहु जुग ताड़ी लावै॥ ३॥
सभ जोगतण राम नामु है जिस का पिंडु पराना।
कहु कबीर जे किरपा धारै देइ सचा नीसाना॥ ४॥

८

हिंदू तुरक कहा ते आए किनि एह राह चलाई ।
दिल महि सोचि बिचार कवादे भिसत दोजक किनि पाई ॥
काजी तै कवन कतेब बखानी ।
पढ़त गुनत ऐसे सभ मारे किनहूं खबरि न जानी ॥ १ ॥
सकति सनेहु करि सुनति करीऐ मै न बदउगा भाई ।
जउ रे खुदाइ मोहि तुरकु करैगा आपन ही कटि जाई ॥ २ ॥
सुंनति कीए तुरकु जे होइगा अउरत का किआ करीऐ ।
अरध सरीरी नारि न छोडै ताते हिंदू ही रहीऐ ॥ ३ ॥
छाडि कतेब राम भजु बउरे जुलम करत है भारी ।
कबीरै पकरी टेक राम की तुरक रहे पचि हारी ॥ ४ ॥

९

जब लगु तेलु दीवे मुखि बाती तब सूझै सभु कोई ।
तेल जले बाती ठहरानी सूंना मंदरु होई ॥
रे बउरे तुहि घरी न राखै कोई । तूं राम नामु जपु सोई ॥ १ ॥

का की मात पिता कहु का को कवन पुरख की जोई ।
घट फूटे कोऊ बात न पूछै काढहु काढहु होई ॥ २ ॥

देहुरी बैठी माता रोवै खटीआ ले गए भाई ।
लट छिटकाए तिरीआ रोवै हंसु इकेला जाई ॥ ३ ॥

कहत कबीर सुनहु रे संतहु भै सागर कै ताई ।
इसु बंदे सिरि जुलमु होत है जमु नही हटै गुसाई ॥ ४ ॥

सनक सनंद अंतु नही पाइआ ।
बेद पड़े पड़ि ब्रहमे जनमु गवाइआ ॥
हरि का बिलोवना बिलोवहु मेरे भाई ।
सहजि बिलोवहु जैसे ततु न जाई ॥ १ ॥

तनु करि मटुकी मन माहि बिलोई ।
इसु मटुकी महि सबदु संजोई ॥ २ ॥

हरि का बिलोवना मन का बीचारा ।
गुर प्रसादि पावै अंम्रित धारा ॥ ३ ॥

कहु कबीर नदरि करे जे मीरा ।
राम नाम लगि उतरे तीरा ॥ ४ ॥

११०

बाती सूकी तेलु निखूटा ।
मंदलु न बाजै नटु पै सूता ॥
बुझि गई अगनि न निकसिउ धूंआ ।
रवि रहिआ एकु अवरु नही दूआ ॥ १ ॥

टूटी तंतु न बजै रबाबु ।
भूलि बिगारिओ अपना काजु ॥ २ ॥

कथनी बदनी कहनु कहावनु ।
समझि परी तउ बिसरिओ गावनु ॥ ३ ॥

कहत कबीर पंच जो चूरे ।
तिन्ह ते नाहि परम पदु दूरे ॥ ४ ॥

१२

सुतु अपराध करत है जेते ।
जननी चीति न राखसि तेते ॥
रामईआ हउ बारिकु तेरा ।
काहे न खंडसि अवगनु मेरा ॥ १ ॥

जे अति क्रोप करे करि धाइआ ।
ता भी चीति न राखसि माइआ ॥ २ ॥

चिंत भवनि मनु परिओ हमारा ।
नाम बिना कैसे उतरसि पारा ॥ ३ ॥

देहि बिमल मति सदा सरीरा ।
सहजि सहजि गुन रवै कबीरा ॥ ४ ॥

१३.

हज हमारी गोमती तीर ।
जहा बसहि पीतंबर पीर ॥
वाहु वाहु किआ खूबु गावता है ।
हरि का नामु मेरै मनि भावता है ॥ १ ॥

नारद सारद करहि खवासी ।
पासि बैठी बीबी कवलादासी ॥ २ ॥

कंठे माला जिहवा रामु ।
सहंस नामु लै लै करउ सलामु ॥ ३ ॥

कहत कबीर राम गुन गावउ ।
हिंदू तुरक दोऊ समझावउ ॥ ४ ॥

१४

पाती तोरै मालिनी पाती पाती जीउ ।
जिसु पाहन कउ पाती तोरै सो पाहन निरजीउ ॥
भूली मालनी है एउ । सतिगुरु जागता है देउ ॥ १ ॥

ब्रहमु पाती बिसनु डारी फूल संकर देउ ।
तीनि देव प्रतखि तोरहि करहि किस की सेउ ॥ २ ॥

पाखान गढि कै मूरति कीन्ही दे कै छाती पाउ ।
जे एह मूरति साची है तउ गड़णहारे खाउ ॥ ३ ॥

भातु पहिति अरु लापसी करकरा कासारु ।
भोगनहारे भोगिआ इसु मूरति के मुख छारु ॥ ४ ॥

मालिनि भूली जगु भुलाना हम भुलाने नाहि ।
कहु कबीर हम राम राखे क्रिपा करि हरि राइ ॥ ५ ॥

१५

बारह बरस बालपन बीते बीस बरस कछु तपु न कीओ ।
तीस बरस कछु देव न पूजा फिरि पछुताना बिरधि भइओ ॥
मेरी मेरी करते जनमु गइओ ।
साइर सोखि भुजं बलइओ ॥ १ ॥

सूके सरवरि पालि बंधावै लूणै खेति हथ वारि करै ।
आइओ चोरु तुरंतह ले गइओ मेरी राखत मुगधु फिरै ॥ २ ॥

चरन सीसु कर कंपन लागे नैनी नीरु असार बहै ।
जिहवा बचनु सुधु नही निकसै तब रे धरम की आस करै ॥ ३ ॥

हरि जीउ क्रिपा करै लिव लावै लाहा हरि हरि नामु लीओ ।
गुर परसादी हरि धनु पाइओ अंते चल दिआ नालि चलिओ ॥ ४ ॥

कहत कबीर सुनहु रे संतहु अनु धनु कछूऐ लै न गइओ ।
आई तलब गोपालराइ की माइआ मंदर छोडि चलिओ ॥ ५ ॥

१६

काहू दीन्हे पाट पटंबर काहू पलघ निवारा ।
काहू गरी गोदरी नाही काहू खान परारा ॥
अहिरख वादु न कीजै रे मन ।
सुक्रितु करि करि लीजै रे मन ॥ १ ॥

कुम्हारै एक जु माटी गूंधी बहु बिधि बानी लाई ।
काहू महि मोती मुकताहल काहू बिआधि लगाई ॥ २ ॥

सूमहि धनु राखन कउ दीआ मुगधु कहै धनु मेरा ।
जम का डंडु मूंड महि लागै खिन महि करै निबेरा ॥ ३ ॥

हरि जनु ऊतमु भगतु सदावै आगिआ मनि सुखु पाई ।
जो तिसु भावै सति करि मानै भाणा मंनि वसाई ॥ ४ ॥

कहै कबीरु सुनहु रे संतहु मेरी मेरी झूठी ।
चिरगट फारि चटारा लै गइओ तरी तागरी छूटी ॥ ५ ॥

१७

हम मसकीन खुदाई बंदे तुम राजसु मनि भावै ।
अलह अवलि दीन को साहिबु जोरु नही फुरमावै ॥
काजी बोलिआ बनि नही आवै ॥१॥

रोजा धरै निवाज़ गुजारै कलमा भिसति न होई ।
सतरि काबा घट ही भीतरि जे करि जानै कोई ॥ २ ॥

निवाज सोई जो निआउ बिचारै कलमा अकलहि जानै ।
पाचहु मुसि मुसला बिछावै तब तउ दीनु पछानै ॥ ३ ॥

खसमु पछानि तरस करि जीअ महि मारि मणी करि फीकी ।
आपु जनाइ अवर कउ जानै तब होइ भिसत सरीकी ॥ ४ ॥

माटी एक भेख धरि नाना ता महि ब्रहमु पछाना ॥
कहै कबीरा भिसति छोडि करि दोजक सिउ मनु माना ॥ ५ ॥

१८

गगन नगरि इक बूंद न बरखै नादु कहा जु समाना।
पारब्रहम परमेसुर माधो परम हंसु ले सिधाना॥
बाबा बोलते ते कहा गए। देही के संगि रहते।
सुरति माहि जो निरते करते कथा बारता कहते॥ १॥

बजावन हारो कहा गइओ जिनि इहु मंदरु कीना।
साखी सबदु सुरति नही उपजै खिंचि तेजु सभु लीना॥ २॥

स्रवनन विकल भए संग तेरे इंद्री का बलु थाका।
चरन रहे कर ढरकि परे है मुखहु न निकसै बाता॥ ३॥

थाके पंच दूत सभ तसकर आप आपणै भ्रमते।
थाका मनु कुंचर उरु थाका तेजु सूतु धरि रमते॥ ४॥

मिरतक भए दसै बंद छूटै मित्र भाई सभ छोरे।
कहत कबीरा जो हरि धिआवै जीवत बंधन तोरे॥ ५॥

१६

सरपनी ते ऊपरि नही बलीआ ।
जिनि ब्रहमा बिसनु महादेउ छलीआ ॥
मारु मारु स्रपनी निरमल जलि पैठी ।
जिनि त्रिभवणु डसीअले गुर प्रसादि डीठी ॥ १ ॥

स्रपनी स्रपनी किआ कहउ भाई ।
जिनि साचु पछानिआ तिनि स्रपनी खाई ॥ २ ॥

स्रपनी ते आन छूछ नही अवरा ।
स्रपनी जीती कहा करै जमरा ॥ ३ ॥

इह स्रपनी ता की कीती होई ।
बलु अबलु किआ इस ते होई ॥ ४ ॥

इह बसती ता बसत सरीरा ।
गुर प्रसादि सहजि तरे कबीरा ॥ ५ ॥

२०

कहा सुआन कउ सिंम्रिति सुनाए ।
कहा साकत पहि हरि गुन गाए ॥
राम राम राम रमे रमि रहीऐ ।
साकत सिउ भूलि नही कहीऐ ॥ १ ॥

कऊआ कहा कपूर चराए ।
कह बिसीअर कउ दूधु पीआए ॥ २ ॥

सति संगति मिलि बिबेक बुधि होई ।
पारसु परसि लोहा कंचनु सोई ॥ ३ ॥

साकतु सुआनु सभु करे कहाइआ ।
जो धुरि लिखिआ सो करम कमाइआ ॥ ४ ॥

अंम्रितु लै लै नीमु सिंचाई ।
कहत कबीर उआ को सहजु न जाई ॥ ५ ॥

२१

लंका सा कोटु समुंद सी खाई ।
तिह रावन घर खबरि न पाई ॥
किआ मागउ किछु थिरु न रहाई ।
देखत नैन चलिओ जगु जाई ॥ १ ॥

इकु लखु पूत सवा लखु नाती ।
तिह रावन घर दीआ न बाती ॥ २ ॥

चंदु सूरजु जा के तपत रसोई ।
बैसंतरु जा के कपरे धोई ॥ ३ ॥

गुरमति रामै नामि बसाई ।
असथिरु रहै न कतहूं जाई ॥ ४ ॥

कहत कबीर सुनहु रे लोई ।
राम नाम बिनु मुकति न होई ॥ ५ ॥

२२

पहिला पूतु पिछै री माई ।
गुरु लागो चेले की पाई ॥
एकु अचंभउ सुनहु तुम भाई ।
देखत सिंघु चरावत गाई ॥ १ ॥

जल की मछुली तरवरि बिआई ।
देखत कुतरा लै गई बिलाई ॥ २ ॥

तलै रे बैसा ऊपरि सूला ।
तिस कै पेडि लगे फल फूला ॥ ३ ॥

घोरै चरि भैस चरावन जाई ।
बाहरि बैलु गोनि घरि आई ॥ ४ ॥

कहत कबीर जु इस पद बूझै ।
राम रमत तिसु सभु किछु सूझै ॥ ५ ॥

२३

बिंदु ते जिनि पिंडु कीआ अगनि कुंड रहाइआ ।
दस मास माता उदरि राखिआ बहुरि लागी माइआ ॥
प्रानी काहे कउ लोभि लागे रतन जनमु खोइआ ।
पूरब जनमि करम भूमि बीजु नाही बोइआ ॥ १ ॥

बारिक ते बिरधि भइआ होना सो होइआ ।
जा जमु आइ झोट पकरै तबहि काहे रोइआ ॥ २ ॥

जीवनै की आस करहि जमु निहारै सासा ।
बाजीगरी संसारु कबीरा चेति ढालि पासा ॥ ३ ॥

२४

तनु रैनी मनु पुनरपि करिहउ पाचउ तत बराती ।
राम राइ सिउ भावरि लैहउ आतम तिह रंग राती ॥
गाउ गाउ री दुलहनी मंगल चारा ।
मेरे ग्रिह आए राजा राम भतारा ॥ १ ॥

नाभि कमल महि बेदी रचिले ब्रहम गिआन उचारा ।
राम राइ सो दूलहु पाइओ अस बड भाग हमारा ॥ २ ॥

सुरि नर मुनि जन कउतक आए कोटि तेतीसउ जानां ।
कहि कबीर मोहि बिआहि चले है पुरख एक भगवाना ॥ ३ ॥

२५

सासु की दुखी ससुर की पिआरी जेठ के नामि डरउ रे ।
सखी सहेली ननद गहेली देवर कै बिरहि जरउ रे ॥
मेरी मति बउरी मै रामु बिसारिओ ।
किन बिधि रहनि रहउ रे ॥
सेजै रमतु नैन नही पेखउ इहु दुखु कासउ कहउ रे ॥ १ ॥

बापु सावका करै लराई माइआ सद मतवारी ।
बडे भाई कै जब संगि होती तब हउ नाह पिआरी ॥ २ ॥

कहत कबीर पंच को झगरा झगरत जनमु गवाइआ ।
झूठी माइआ सभु जगु बाधिआ मै राम रमत सुखु पाइआ ॥ ३ ॥

२६

हम घरि सूतु तनहि नित ताना कंठि जनेऊ तुमारे ।
तुम्ह तउ बेद पड़हु गाइत्री गोबिंदु रिदै हमारे ॥
मेरी जिहबा बिसनु नैन नाराइन हिरदै बसहि गोबिंदा ।
जम दुआर जब पूछसि बवरे तब किआ कहसि मुकंदा ॥ १ ॥

हम गोरू तुम गुआर गुसाई जनम जनम रखवारे ।
कबहूं न पार उतारि चराइहु कैसे खसम हमारे ॥ २ ॥

तूं ब्राम्हनु मै कासी क जुलहा बूझहु मोर गिआना ।
तुम्ह तउ जाचे भूपति राजे हरि सउ मोर धिआना ॥ ३ ॥

२७

जगि जीवनु अैसा सुपने जैसा जीवनु सुपन समानं ।
साचु करि हम गाठि दीन्ही छोडि परम निधानं ॥
बाबा माइआ मोह हितु कीन्ह ।
जिनि गिआनु रतनु हिरि लीन्ह ॥ १ ॥

नैनि देखि पतंगु उरझै पसुन देखै आगि ।
काल फास न मुगधु चेतै कनिक कामिनि लागि ॥ २ ॥

करि बिचारु बिकार परहरि तरन तारन सोइ ।
कहि कबीर जगु जीवनु अैसा दुतीअ नाही कोइ ॥ ३ ॥

२८

जउ मै रूप कीए बहुतेरे अब फुनि रूपु न होई ।
तागा तंतु साजु सभु थाका राम नाम बसि होई ॥
अब मोहि नाचनो न आवै ।
मेरा मनु मंदरीआ न बजावै ॥ १ ॥

कामु क्रोधु माइआ लै जारी त्रिसना गागरि फूटी ।
काम चोलना भइआ है पुराना गइआ भरमु सभु छूटी ॥ २ ॥

सरब भूत एकै करि जानिआ चूके बाद बिबादा ।
कहि कबीर मै पूरा पाइआ भए राम परसादा ॥ ३ ॥

२६

रोजा धरै मनावै अलहु सुआदति जीअ संघारै।
आपा देखि अवर नही देखै काहे कउ झख मारै॥
काजी साहिबु एकु तोही महि तेरा सोचि बिचारि न देखै।
खबरि न करहि दीन के बउरे ताते जनमु अलेखै॥ १॥

साचु कतेब बखानै अलहु नारि पुरखु नही कोई।
पढे गुने नाई कछु बउरे जउ दिल महि खबरि न होई॥ २॥

अलहु गैबु सगल घट भीतरि हिरदै लेहु बिचारी।
हिंदू तुरक दुहूं महि एकै कहै कबीर पुकारी॥ ३॥

३०

कीउ सिंगारु मिलन के ताई ।
हरि न मिले जग जीवन गुसाई ॥
हरि मेरो पिरु हउ हरि की बहुरीआ ।
राम बडे मै तनक लहुरीआ ॥ १ ॥

धन पिर एकै संगि बसेरा ।
सेज एक पै मिलनु दुहेरा ॥ २ ॥

धंनि सुहागनि जो पीअ भावै ।
कहि कबीर फिरि जनमि न आवै ॥ ३ ॥

३१

हीरै हीरा बेधि पवन मनु सहजे रहिआ समाई ।
सगल जोति इनि हीरै बेधी सतिगुर बचनी मै पाई ॥

हरि की कथा अनाहद बानी ।
हंसु हुइ हीरा लेइ पछानी ॥ १ ॥

कहि कबीर हीरा अस देखिओ जग मह रहा समाई ।
गुपता हीरा प्रगट भइओ जब गुर गम दीआ दिखाई ॥ २ ॥

३२

पहिली करूपि कुजाति कुलखनी साहुरै पेईऐ बुरी ।
अब की सरूपि सुजानि सुलखनी सहजे उदरि धरी ॥

भली सरी मुई मेरी पहिली बरी ।
जुगु जुगु जीवउ मेरी अब की धरी ॥ १ ॥

कहु कबीर जब लहुरी आई, बडी का सुहाग टरिओ ।
लहुरी संगि भई अब मेरै जेठी अउरु धरिओ ॥ २ ॥

३३

मेरी बहुरीआ को धनीआ नाउ ।
ले राखिओ राम जनीआ नाउ ॥
इन्ह मुंडीअन मेरा घरु धुंधरावा ।
बिटवहि राम रमऊआ लावा ॥ १ ॥

कहतु कबीर सुनहु मेरी माई ।
इन मुंडीअन मेरी जाति गवाई ॥ २ ॥

३४

रहु रहु री बहुरीआ घूंघटु जिनि काढै ।
अंत की बार लहैगी न आढै ॥
घूंघटु काढि गई तेरी आगै ।
उनकी गैलि तोहि जिनि लागै ॥ १ ॥

घूंघट काढे की इहै बडाई ।
दिन दस पांच बहू भले आई ॥ २ ॥

घूंघटु तेरो तउ परि साचै ।
हरि गुन गाइ कूदहि अरु नाचै ॥ ३ ॥

कहत कबीर बहू तब जीतै ।
हरि गुन गावत जनमु बितीतै ॥ ४ ॥

३५

करवतु भला न करवट तेरी ।
लागु गले सुनु बिनती मेरी ॥
हउ वारी मुखु फेरि पिआरे ।
करवटु दे मोकउ काहे कउ मारे ॥ १ ॥

जउ तनु चीरहि अंगि न मोरउ ।
पिंडु परै तउ प्रीति न तोरउ ॥ २ ॥

हम तुम बीचु भइओ नही कोई ।
तुमहि सुकंत नारि हम सोई ॥ ३ ॥

कहतु कबीरु सुनहु रे लोई ।
अब तुमरी परतीति न होई ॥ ४ ॥

३६

कोरी को काहू मरमु न जानां ।
सभु जगु आनि तनाइओ तानां ॥
जब तुम सुनि ले बेद पुरानां ।
तब हम इतन कु पसरिओ तानां ॥ १ ॥

धरनि अकास की करगह बनाई ।
चंदु सूरजु दुइ साथ चलाई ॥ २ ॥

पाई जोरि बात इक कीनी तह तांती मनु मानां ।
जोलाहे घरु अपना चीन्हा घट ही रामु पछानां ॥ ३ ॥

कहतु कबीरु कारगह तोरी ।
सूतै सूत मिलाए कोरी ॥ ४ ॥

३७

अंतरि मैलु जे तीरथ नावै तिसु बैकुंठ न जानां ।
लोक पतीणे कछू न होवै नाही रामु अयाना ॥
पूजहु रामु एकु ही देवा ।
साचा नावणु गुर की सेवा ॥ १ ॥

जल कै मजनि जे गति होवै नित नित मेंडुक नावहि ।
जैसे मेंडुक तैसे ओइ नर फिरि फिरि जोनी आवहि ॥ २ ॥

मनहु कठोरु मरै बानारसि नरकु न बांचिआ जाई ।
हरि का संतु मरै हाड़ंबै त सगली सैन तराई ॥ ३ ॥

दिनसु न रैनि बेदु नही सासत्र तहा बसै निरंकारा ।
कहि कबीर नर तिसहि धिआवहु बावरिआ संसारा ॥ ४ ॥

रागु गूजरी

१

चारि पाव दुइ सिंग गुंग मुख तब कैसे गुन गई है ।
ऊठत बैठत ठेगा परि है तब कत मूड लुकई है ॥
हरि बिनु बैल बिराने हुई है ।
फाटे नाकन टूटे काधन कोदउ को भुसु खई है ॥ १ ॥

सारो दिनु डोलत बन महीआ अजहु न पेट अघई है ।
जन भगतन को कहो न मानो कीओ अपनो पई है ॥ २ ॥

दुख सुख करत महा भ्रमि बूडो अनिक जोनि भरमई है ।
रतन जनमु खोइओ प्रभु बिसरिओ इहु अउसरु कत पई है ॥ ३ ॥

भ्रमत फिरत तेलक के कपि जिउ गति बिनु रैन बिहई है ।
कहत कबीर राम नाम बिनु मूंड धुने पछुतई है ॥ ४ ॥

२

मुसि मुसि रोवै कबीर की माई ।
ए बारिक कैसे जीवहि रघुराई ॥
तनना बुनना सभु तजिओ है कबीर ।
हरि का नामु लिखि लीओ सरीर ॥ १ ॥

जब लगु तागा बाहउ बेही ।
तब लगु बिसरै रामु सनेही ॥ २ ॥

ओछी मति मेरी जाति जुलाहा ।
हरि का नामु लहिओ मै लाहा ॥ ३ ॥

कहत कबीर सुनहु मेरी माई ।
हमरा इनका दाता एकु रघुराई ॥ ४ ॥

रागु सोरठि

१

बुत पूजि पूजि हिंदू मूए तुरक मूए सिरु नाई ।
ओइ ले जारे ओइ ले गाडे तेरी गति दूहू न पाई ॥
मन रे संसारु अंध गहेरा ।
चहु दिस पसरिओ है जम जेवरा ॥ १ ॥

कबित पड़े पड़ि कबिता मूए कपड़ केदारै जाई ।
जटा धारि धारि जोगी मूए तेरी गति इनहि न पाई ॥ २ ॥

दरबु संचि संचि राजे मूए गडि ले कंचन भारी ।
बेद पड़े पड़ि पंडित मूए रूप देखि देखि नारी ॥ ३ ॥

राम नाम बिनु सभै बिगूते देखहु निरखि सरीरा ।
हरि के नाम बिनु किनि गति पाई कहि उपदेसु कबीरा ॥ ४ ॥

२

जब जरीऐ तब होइ भसम तनु रहै किरम दल खाई ।
काची गागरि नीरु परतु है इआ तन की इहै बडाई ॥
काहे भईआ फिरतौ फूलिआ फूलिआ ।
जब दस मास उरध मुख रहता सो दिनु कैसे भूलिआ ॥ १ ॥

जिउ मधु माखी तिउ सठोरि रसु जोरि जोरि धनु कीआ ।
मरती बार लेहु लेहु करीऐ भूतु रहन किउ दीआ ॥ २ ॥

देहुरी लउ बरी नारि संग भई आगै सजन सुहेला ।
मरघट लउ सभु लोगु कुटंबु भइओ आगै हंसु अकेला ॥ ३ ॥

कहतु कबीर सुनहु रे प्रानी परे काल ग्रस कूआ ।
झूठी माइआ आपु बंधाइआ जिउ नलनी भ्रमि सूआ ॥ ४ ॥

३

बेद पुरान सभै मत सुनि कै करी करम की आसा ।
काल ग्रसत सभ लोग सिआने उठि पंडत पै चले निरासा ॥
मन रे सरिओ न एकै काजा ।
भजिओ न रघुपति राजा ॥ १ ॥

बनखंड जाइ जोगु तपु कीनो कंद मूलु चुनि खाइआ ।
नादी बेदी सबदी मोनी जम के पटै लिखाइआ ॥ २ ॥

भगति नारदी रिदै न आई काछि कूछि तनु दीना ।
राग रागनी डिंभ होइ बैठा उनि हरि पहि किआ लीना ॥ ३ ॥

परिओ कालु सभै जग ऊपर माहि लिखे भ्रम गिआनी ।
कहु कबीर जन भए खालसे प्रेम भगति जिह जानी ॥ ४ ॥

४

दुइ दुइ लोचन पेखा ।
हउ हरि बिनु अउरु न देखा ॥
नैन रहे रंगु लाई ।
अब बेगल कहनु न जाई ॥
हमरा भरमु गइआ भउ भागा ।
जब राम नाम चितु लागा ॥ १ ॥

बाजीगर डंक बजाई ।
सभ खलक तमासे आई ॥
बाजीगर स्वांगु सकेला ।
अपने रंग रवै अकेला ॥ २ ॥

कथनी कहि भरमु न जाई ।
सभ कथि कथि रही लुकाई ॥
जाकउ गुरमुखि आपि बुझाई ।
ताके हिरदै रहिआ समाई ॥ ३ ॥

गुर किंचत किरपा कीनी ।
सभु तनु मनु देह हरि लीनी ॥
कहि कबीर रंगि राता ।
मिलिओ जगजीवन दाता ॥ ४ ॥

५

जाके निगम दूध के ठाटा ।
समुंदु बिलोवन कउ माटा ॥
ताकी होहु बिलोवन हारी ।
किउ मेटैगो छाछि तुहारी ॥
चेरी तू रामु न करसि भतारा ।
जगजीवन प्रान अधारा ॥ १ ॥

तेरे गलहि तउकु पग बेरी ।
तू घर घर रमईऐ फेरी ॥
तू अजहु न चेतसि चेरी ।
तू जमि बपुरी है हेरी ॥ २ ॥

प्रभ करन करावन हारी ।
किआ चेरी हाथ बिचारी ॥
सोई सोई जागी ।
जितु लाई तितु लागी ॥ ३ ॥

चेरी तै सुमति कहां ते पाई ।
जाते भ्रम की लीक मिटाई ॥
सु रसु कबीरै जानिआ ।
मेरो गुर प्रसादि मनु मानिआ ॥ ४ ॥

६

जिह बाझु न जीआ जाई । जउ मिलत घाल अघाई ॥
सद जीवनु भलो कहांही । मूए बिनु जीवनु नाही ॥
अब किआ कथीऐ गिआनु बीचारा ।
निज निरखत गत बिउहारा ॥ १ ॥

घसि कुंकम चंदनु गारिआ ।
बिनु नैनहु जगतु निहारिआ ॥
पूति पिता इकु जाइआ ।
बिनु ठाहर नगरु बसाइआ ॥ २ ॥

जाचक जन दाता पाइआ ।
सो दीआ न जाई खाइआ ॥
छोडिआ जाइ न मूका ।
अउरन पहि जाना चूका ॥ ३ ॥

जो जीवन मरना जानै ।
से पंच सैल सुख मानै ॥
कबीरै सो धनु पाइआ ।
हरि भेटत आपु मिटाइआ ॥ ४ ॥

७

किआ पड़ीऐ किआ गुनीऐ ।
किआ बेद पुराना सुनीऐ ॥
पड़े सुने किआ होई ।
जउ सहज न मिलिओ सोई ॥
हरि का नामु न जपसि गवारा ।
किआ सोचहि बारंबारा ॥ १ ॥

अंधिआरे दीपकु चहीऐ ।
इक बसतु अगोचर लहीऐ ॥
बसतु अगोचर पाई ।
घटि दीपकु रहिआ समाई ॥ २ ॥

कहि कबीर अब जानिआ ।
जब जानिआ तउ मनु मानिआ ॥
मन माने लोगु न पतीजै ।
न पतीजै तउ किआ कीजै ॥ ३ ॥

८

हृदै कपटु मुख गिआनी ।
झूठे कहा बिलोवसि पानी ॥
कांइआ मांजसि कउन गुनां ।
जउ घट भीतरि है मलनां ॥ १ ॥

लउकी अठसठि तीरथ न्हाई ।
कउरापनु तऊ न जाई ॥ २ ॥

कहि कबीर बीचारी ।
भव सागरु तारि मुरारी ॥ ३ ॥

६

बहु परपंच करि परधनु लिआवै ।
सुत दारा पहि आनि लुटावै ॥
मन मेरे भूले कपटु न कीजै ।
अंति निबेरा तेरे जीअ पहि लीजै ॥ १ ॥

छिनु छिनु तनु छीजै जरा जनावै ।
तब तेरी ओक कोई पानीओ न पावै ॥ २ ॥

कहतु कबीरु कोई नही तेरा ।
हिरदै रामु की न जपहि सवेरा ॥ ३ ॥

१०

संतहु मन पवनै सुखु बनिआ।
किछु जोगु परापति गनिआ॥

गुरि दिखलाई मोरी।
जितु मिरग पड़त है चोरी॥
मूंदि लीए दरवाजे।
बाजीअले अनहद बाजे॥ १॥

कुंभ कमलु जलि भरिआ।
जलु मेटिआ ऊभा करिआ॥
कहु कबीर जन जानिआ।
जउ जानिआ तउ मनु मानिआ॥ २॥

११

भूखे भगति न कीजै । यह माला अपनी लीजै ॥
हउ मांगउ संतन रेना । मै नाही किसी का देना ॥ १ ॥

माधो कैसी बनै तुम संगे ।
आपि न देहु त लेवउ मंगे ॥
दुइ सेर मांगउ चूना ।
पाउ घीउ संगि लूना ॥
अध सेरु मांगउ दाले ।
मोकउ दोनउ वखत जिवाले ॥ २ ॥

खाट मांगउ चउपाई ।
सिरहाना अवर तुलाई ॥
ऊपर कउ मागउ खीधा ।
तेरी भगति करै जनु बीधा ॥ ३ ॥

मै नाही कीता लबो ।
इकु नाउ तेरा मै फबो ॥
कहि कबीर मनु मानिआ ।
मनु मानिआ तउ हरि जानिआ ॥ ४ ॥

रागु धनासरी

१

सनक सनंद महेस समानां ।
सेख नागि तेरो मरमु न जानां ॥
संत संगति रामु रिदै बसाई ॥ १ ॥

हनूमान सरि गरुड़ समानां ।
सुरपति नरपति नही गुन जानां ॥ २ ॥

चारि बेद अरु सिंम्रिति पुरानां ।
कमलापति कवला नही जानां ॥ ३ ॥

कहि कबीर सो भरमै नाही ।
पग लगि राम रहै सरनांही ॥ ४ ॥

२

दिन ते पहर पहर ते घरीआं आव घटै तनु छीजै ।
कालु अहेरी फिरै बधिक जिउ कहहु कवन बिधि कीजै ॥
सो दिनु आवन लागा ।
मात पिता भाई सुत बनिता कहहु कोऊ है काका ॥ १ ॥

जब लगु जोति काइआ महि बरतै आपा पसू न बूझै ।
लालच करै जीवन पद कारन लोचन कछू न सूझै ॥ २ ॥

कहत कबीर सुनहु रे प्रानी छोडहु मन के भरमा ।
केवल नामु जपहु रे प्रानी परहु एक की सरनां ॥ ३ ॥

३

जो जनु भाउ भगति कछु जानै ताकउ अचरजु काहो ।
जिउ जलु जल महि पैसि न निकसै तिउ ढुरि मिलिओ जुलाहो ॥
हरि के लोगा मै तउ मति का भोरा ।
जउ तनु कासी तजहि कबीरा रमईऐ कहा निहोरा ॥ १ ॥

कहत कबीर सुनहु रे लोई भरमि न भूलहु कोई ।
किआ कासी किआ ऊखरु मगहरु रामु रिदै जउ होई ॥ २ ॥

४

इंद्र लोक सिव लोकहि जैबो ।
ओछे तप करि बाहुरि ऐबो ॥
किआ मांगउ किछु थिरु नाही ।
राम नाम रखु मन माही ॥ १ ॥

सोभा राज बिभै वडिआई ।
अंति न काहू संग सहाई ॥ २ ॥

पुत्र कलत्र लछमी माइआ ।
इन ते कहु कवनै सुखु पाइआ ॥ ३ ॥

कहत कबीर अवर नही कामा ।
हमरै मन धन राम को नामा ॥ ४ ॥

५

राम सिमरि राम सिमरि राम सिमरि भाई।
राम नाम सिमरन बिनु बूडते अधिकाई॥
बनिता सुत देह ग्रेह संपति सुखदाई।
इन्ह मै कछु नाहि तेरो काल अवध आई॥ १॥

अजामल गज गनिका पतित करम कीने।
तेऊ उतरि पारि परे राम नाम लीने॥ २॥

सूकर कूकर जोनि भ्रमे तऊ लाज न आई।
राम नाम छाडि अंम्रित काहे बिखु खाई॥ ३॥

तजि भरम करम विधि निखेध राम नामु लेही।
गुर प्रसादि जन कबीर रामु करि सनेही॥ ४॥

रागु तिलंग

१

बेद कतेब इफतरा भाई दिल का फिकरु न जाइ।
टुकु दमु करारी जउ करहु हाजिर हजूर खुदाइ॥
बंदे खोजु दिल हर रोज, ना फिरु परेसानी माहि।
इह जु दुनीआ सिहरु मेला दसतगीरी नाहि॥ १॥

दरोगु पड़ि पड़ि खुसी होइ बेखबर बादु बकाहि।
हकु सचु खालकु खलक मिआने, सिआम मूरति नाहि॥ २॥

असमान म्यिाने लहंग दरीआ गुसल करदन बूद।
करि फकरु दाइम लाइ, चसमे जहा तहा मउजूद॥ ३॥

अलाह पाकं पाक है सक करउ जे दूसर होइ।
कबीर करमु करीम का, उहु करै जानै सोइ॥ ४॥

रागु सूही

१

अवतरि आइ कहा तुम कीना ।
राम को नामु न कबहू लीना ॥
राम न जपहु कवन मति लागे ।
मरि जइबे कउ किआ करहु अभागे ॥ १ ॥

दुख सुख करि कै कुटंबु जीवाइआ ।
मरती बार इकसर दुखु पाइआ ॥ २ ॥

कंठ गहन तब करन पुकारा ।
कहि कबीर आगे ते न संम्हारा ॥ ३ ॥

२

थरहर कंपै बाला जीउ ।
ना जानउ किआ करसी पीउ ॥
रैनि गई मत दिनु भी जाइ ।
भवर गए बग बैठे आइ ॥ १ ॥

काचै करवै रहै न पानी ।
हंसु चलिआ काइआ कुमलानी ॥ २ ॥

कुआर कंनिआ जैसे करत सीगारा ।
किउ रलीआ मानै बाझु भतारा ॥ ३ ॥

काग उडावत भुजा पिरानी ।
कहि कबीर इह कथा सिरानी ॥ ४ ॥

३

अमलु सिरानो लेखा देना ।
आए कठिन दूत जम लेना ॥
किआ तै खटिआ, कहा गवाइआ ।
चलहु सिताब दीबानि बुलाइआ ॥
चलु दरहालु दीवानि बुलाइआ ।
हरि फुरमानु दरगह का आइआ ॥ १ ॥

करउ अरदासि, गाव किछु बाकी ।
लेउ निबेरि आजु की राती ॥
किछु भी खरच तुम्हारा सारउ ।
सुबह निवाज सराइ गुजारहु ॥ २ ॥

साध संगि जाकउ, हरि रंगु लागा ।
धनु धनु सो जनु पुरखु सभागा ॥
ईत ऊत जन सदा सुहेले ।
जनमु पदारथु जीति अमोले ॥ ३ ॥

जागतु सोइआ जनमु गवाइआ ।
मालु धनु जोरिआ भइआ पराइआ ॥
कहु कबीर तेई नर भूले ।
खसमु बिसारि माटी संगि रूले ॥ ४ ॥

४

थाके नैन स्रवन सुनि थाके थाकी सुंदरि काइआ ।
जरा हाक दी सभ मति थाकी एक न थाकसि माइआ ॥
बावरे तै गिआन बीचारु न पाइआ ।
बिरथा जनमु गवाइआ ॥ १ ॥

तब लगु प्रानी तिसै सरेवहु जब लगु घट महि सासा ।
ले घटु जाइ, त भाउ न जासी, हरि के चरन निवासा ॥ २ ॥

जिस कउ सबदु बसावै, अंतरि चूकै तिसहि पिआसा ।
हुकमै बूझै चउपड़ि खेलै मनु जिणि ढाले पासा ॥ ३ ॥

जो जन जानि भजहि अबिगत कउ तिन का कछू न नासा ।
कहु कबीर ते जन कबहु न हारहि ढालि जु जानहि पासा ॥ ४ ॥

५

एकु कोटु पंच सिकदारा पंचे मागहि हाला ।
जिमी नाही मै किसी की बोई ऐसा देनु दुखाला ॥
हरि के लोगा मो कउ नीति डसै पटवारी ।
ऊपरि भुजा करि मै गुर पहि पुकारिआ तिनि हउ लीआ उबारी ॥१॥

नउ डाडी दस मुंसफ धावहि रईअति बसन न देही ।
डोरी पूरी मापहि नाही बहु बिसटाला लेही ॥ २ ॥

बहतरि घरि इकु पुरखु समाइआ उनि दीआ नामु लिखाई ।
धरमराइ का दफतरु सोधिआ बाकी रिजम न काई ॥ ३ ॥

संता कउ मति कोई निंदहु संत रामु है एको ।
कहु कबीर मै सो गुरु पाइआ जा का नाउ बिबेको ॥ ४ ॥

रागु बिलावलु

१

ऐसो इहु संसारु पेखना रहनु न कोऊ पई है रे ।
सूधे सूधे रेगि चलहु तुम नतर कुधका दिवई है रे ॥
बारे बूढे तरुने भईआ सभहू जमु लै जई है रे ।
मानसु बपुरा मूसा कीनो मीचु बिलईआ खई है रे ॥ १ ॥

धनवंता अरु निरधन मनई ता की कछू न कानी रे ।
राजा परजा सम करि मारै ऐसो कालु बडानी रे ॥ २ ॥

हरि के सेवक जो हरि भाए तिन्ह की कथा निरारी रे ।
आवहि न जाहि न कबहू मरते पारब्रहम संगारी रे ॥ ३ ॥

पुत्र कलत्र लछिमी माइआ इहै तजहु जीअ जानो रे ।
कहत कबीर सुनहु रे संतहु मिलि है सारगिपानी रे ॥ ४ ॥

२

बिदिआ न परउ बादु नही जानउ ।
हरि गुन कथत सुनत बउरानो ॥
मेरे बाबा मै बउरा सभ खलक सैआनी मै बउरा ।
मै बिगरिओ बिगरै मति अउरा ॥ १ ॥
आपि न बउरा राम कीओ बउरा ।
सतिगुरु जारि गइओ भ्रमु मोरा ॥ २ ॥
मै बिगरे अपनी मति खोई ।
मेरे भरमि भूलउ मति कोई ॥ ३ ॥
सो बउरा जो आपु न पछान्है ।
आपु पछानै त एकै जानै ॥ ४ ॥
अबहि न माता सु कबहु न माता ।
कहि कबीर रामै रंगि राता ॥ ५ ॥

३

ग्रिहु तजि बनखंड जाईऐ चुनि खाईऐ कंदा ।
अजहु बिकार न छोडई पापी मनु मंदा ॥
किउ छूटउ कैसे तरउ भव जल निधि भारी ।
राखु राखु मेरे बीठुला जनु सरनि तुम्हारी ॥ १ ॥
बिखै बिखै की बासना तजीअ नह जाई ।
अनिक जतन करि राखीऐ फिरि फिरि लपटाई ॥ २ ॥
जरा जीवन जोबनु गइआ किछु कीआ न नीका ।
इहु जीअरा निरमोलको कउडी लगि मीका ॥ ३ ॥
कहु कबीर मेरे माधवा तू सरब बिआपी ।
तुम समसरि नाही दइआलु मोहि समसरि पापी ॥ ४ ॥

४

नित उठि कोरी गागरि आनै लीपत जीउ गइओ ।
ताना बाना कछू न सूझै हरि हरि रसि लपटिओ ॥
हमारे कुल कउने रामु कहिओ ।
जब की माला लई निपूते तब ते सुखु न भइओ ॥ १ ॥

सुनहु जिठानी सुनहु दिरानी अचरजु एकु भइओ ।
सात सूत इनि मुडींए खोए इह मुडीआ किउ न मुइओ ॥ २ ॥

सरब सुखा का एकु हरि सुआमी सो गुरि नामु दइओ ।
संत प्रहलाद की पैज जिनि राखी हरनाखसु नख बिदरिओ ॥ ३ ॥

घर के देव पितर की छोडी गुर को सबदु लइओ ।
कहत कबीर सगल पाप खंडनु संतह लै उधरिओ ॥ ४ ॥

५

कोऊ हरि समानि नही राजा ।
ए भूपति सभ दिवस चारि के झूठे करत दिवाजा ॥
तेरो जनु होइ सोइ कत डोलै तीनि भवन पर छाजा ।
हाथु पसारि सकै को जन कउ बोलि सकै न अंदाजा ॥ १ ॥

चेति अचेत मूड़ मन मेरे बाजे अनहद बाजा ।
कहि कबीर संसा भ्रमु चूको ध्रू प्रहिलाद निवाजा ॥ २॥

६

राखि लेहु हम ते बिगरी ।
सीलु धरमु जपु भगति न कीनी हउ अभिमान टेढ पगरी ॥

अमर जानि संची इह काइआ इह मिथिआ काची गगरी ।
जिनहि निवाजि साजि हम कीए तिसहि बिसारि अवर लगरी ॥ १ ॥

संधिक ओहि साध नही कहीअउ सरनि परे तुमरी पगरी ।
कहि कबीर इह बिनती सुनीअहु मत घालहु जम की खबरी ॥ २ ॥

७

दरमादे ठाढे दरबारि ।
तुझ बिनु सुरति करै को मेरी दरसनु दीजै खोल्हि किवार ॥

तुम धन धनी उदार तिआगी स्रवनन सुनीअतु सुजसु तुम्हार ।
मागउ काहि रंक सभ देखउ तुमही ते मेरो निसतारु ॥ १ ॥

जैदेउ नामा बिप सुदामा तिन कउ क्रिपा भई है अपार ।
कहि कबीर तुम संम्रथ दाते चारि पदारथ देत न बार ॥ २ ॥

८

डंडा मुंद्रा खिंथा आधारी ।
भ्रम कै भाइ भवै भेखधारी ॥

आसनु पवनु दूरि करि बवरे ।
छोडि कपटु नित हरि भजु बवरे ॥ १ ॥

जिह तू जाचहि सो त्रिभवन भोगी ।
कहि कबीर केसौ जगि जोगी ॥ २ ॥

९

इनि माइआ जगदीस गुसाई तुमरे चरन बिसारे ।
किंचत प्रीत न उपजै जन कउ जन कहा करहि बेचारे ॥
ध्रिगु तनु ध्रिगु धनु ध्रिगु इह माइआ ध्रिगु ध्रिगु मति बुधि फंनी ।
इस माइआ कउ द्रिड़ु करि राखहु बांधे आप बचंनी ॥ १ ॥

किआ खेती किआ लेवा देई परपंच झूठु गुमाना ।
कहि कबीर ते अंति बिगूते आइआ कालु निदाना ॥ २ ॥

१०

सरीर सरोवर भीतरे आछै कमल अनूप ।
परम जोति पुरखोतमो जा कै रेख न रूप ॥
रे मन हरि भजु भ्रमु तजहु जगजीवन राम ॥ १ ॥

आवत कछू न दीसई नह दीसै जात ।
जह उपजै बिनसै तही जैसे पुरिवन पात ॥ २ ॥

मिथिआ करि माइआ तजी सुख सहज बीचारि ।
कहि कबीर सेवा करहु मन मंझि मुरारि ॥ ३ ॥

११

जनम मरन का भ्रमु गइआ गोबिद लिव लागी ।
जीवत सुंनि समानिआ गुर साखी जागी ॥
कासी ते धुनि ऊपजै धुनि कासी जाई ।
कासी फूटी पंडिता धुनि कहां समाई ॥ १ ॥

त्रिकुटी संधि मै पेखिआ घटहू घट जागी ।
ऐसी बुधि समाचरी घट माहि तिआगी ॥ २ ॥

आप आप ते जानिआ तेज तेजु समाना ।
कहु कबीर अब जानिआ गोबिद मनु माना ॥ ३ ॥

१२

चरन कमल जा कै रिदै बसहि सो जनु किउ डोलै देव ।
मानौ सभ सुख नउनिधि ता कै सहजि सहजि जसु बोलै देव ॥
तब इह मति जउ सभ महि पेखै कुटिल गांठि जब खोलै देव ।
बारंबार माइआ ते अटकै लै नरजा मनु तोलै देव ॥ १ ॥
जह उह जाइ तही सुखु पावै माइआ तासु न झोलै देव ।
कहि कबीर मेरा मनु मानिआ राम प्रीति की ओलै देव ॥ २ ॥

रागु गौंड

१

संतु मिलै किछु सुनीऐ कहीऐ ।
मिलै असंतु मसटि करि रहीऐ ॥
बाबा बोलना किआ कहीऐ ।
जैसे राम नाम रवि रहीऐ ॥ १ ॥

संतन सिउ बोले उपकारी ।
मूरख सिउ बोले झख मारी ॥ २ ॥

बोलत बोलत बढहि बिकारा ।
बिनु बोले किआ करहि बीचारा ॥ ३ ॥

कहु कबीर छूछा घटु बोलै ।
भरिआ होइ सु कबहु न डोलै ॥ ४ ॥

२

नरू मरै नरु कामि न आवै ।
पसू मरै दस काज सवारै ।।
अपने करम की गति मै किआ जानउ ।
मै किआ जानउ बाबा रे ।। १ ।।

हाड जले जैसे लकरी का तूला ।
केस जले जैसे घास का पूला ।। २ ।।

कहु कबीर तब ही नरु जागै ।
जम का डंडु मूंड महि लागै ।। ३ ।।

३

आकासि गगनु पातालि गगनु है चहु दिसि गगनु रहाइले ।
आनद मूलु सदा पुरखोतमु घटु बिनसै गगनु न जाइले ॥
मोहि बैरागु भइओ ।
इहु जीउ आइ कहा गइओ ॥ १ ॥
पंच ततु मिलि काइआ कीनी ततु कहा ते कीनु रे ।
करम बध तुम जीउ कहत हौ करमहि किनि जीउ दीनु रे ॥ २ ॥
हरि महि तनु है तन महि हरि है सरब निरंतरि सोइ रे ।
कहि कबीर राम नामु न छोडउ सहजे होइ सु होइ रे ॥ ३ ॥

४

भुजा बांधि भिला करि डारिओ ।
हसती क्रोपि मूंड महि मारिओ ॥
हसति भागि कै चीसा मारै ।
इआ मूरति कै हउ बलिहारै ॥
आहि मेरे ठाकुर तुमरा जोरु ।
काजी बकिबो हसती तोरु ॥ १ ॥
रे महावत तुझु डारउ काटि ।
इसहि तुरावहु घालहु साटि ॥
हसति न तोरै धरै धिआनु ।
वाकै रिदै बसै भगवानु ॥ २ ॥
किआ अपराधु संत है कीन्हा ।
बांधि पोटि कुंचर कउ दीना ॥
कुंचरु पोट लै लै नमसकारै ।
बूझी नही काजी अंधिआरै ॥ ३ ॥
तीनि बार पतीआ भरि लीना ।
मन कठोरु अजहू न पतीना ॥
कहि कबीर हमरा गोबिंदु ।
चउथे पद महि जन की जिंदु ॥ ४ ॥

५

ना इहु मानसु ना इहु देउ ।
ना इहु जती कहावै सेउ ॥
ना इहु जोगी ना अवधूता ।
ना इसु माइ न काहू पूता ॥
इआ मंदर महि कौन बसाई ।
ता का अंतु न कोऊ पाई ॥ १ ॥

ना इहु गिरही ना ओदासी ।
ना इहु राज न भीख मंगासी ॥
ना इसु पिंडु न रकतू राती ।
ना इहु ब्रहमनु ना इहु खाती ॥ २ ॥

ना इहु तपा कहावै सेखु ।
ना इहु जीवै न मरता देखु ॥
इसु मरते कउ जे कोऊ रोवै ।
जो रोवै सोई पति खोवै ॥ ३ ॥

गुर प्रसादि मै डगरो पाइआ ।
जीवन मरनु दोऊ मिटवाइआ ॥
कहु कबीर इहु राम की अंसु ।
जस कागद पर मिटै न मंसु ॥ ४ ॥

६

तूटे तागे निखुटी पानि।
दुआर ऊपरि झिलकावहि कान ॥
कूच बिचारे फूए फाल।
इआ मुंडीआ सिर चढिबो काल ॥
इहु मुंडीआ सगलो द्रबु खोई।
आवत जात नाक सर होई ॥ १ ॥

तुरी नारि की छोडी बाता।
राम नाम वा का मनु राता ॥
लरकी लरिकन खैबो नाहि।
मुंडीआ अनदिनु धापे जाहि ॥ २ ॥

इक दुइ मंदरि इक दुइ बाट।
हम कउ साथरु उन्ह कउ खाट ॥
मूंड पलोसि कमर बधि पोथी।
हम कउ चाबनु उन कउ रोटी ॥ ३ ॥

मुंडीआ मुंडीआ हूए एक।
इह मुंडीआ बूडत की टेक ॥
सुनि अंधली लोई बे पीर।
इन्हि मुंडीअन भजि सरनि कबीर ॥ ४ ॥

७

खसमु मरै तउ नारि न रोवै ।
उसु रखवारा अउरो होवै ॥
रखवारे का होइ बिनास ।
आगै नरकु ईहा भोग बिलास ॥
एक सुहागनि जगत पिआरी ।
सगले जीअ जंत की नारी ॥ १ ॥

सुहागनि गलि सोहै हारु ।
संत कउ बिखु बिगसै संसारु ॥
करि सीगारु बहै पखिआरी ।
संत की ठिठकी फिरै बिचारी ॥ २ ॥

संत भागि ओह पाछै परै ।
गुर परसादी मारहु डरै ॥
साकत की ओह पिंड पराइणि ।
हम कउ द्रिसटि परै त्रिखि डाइणि ॥ ३ ॥

हम तिस का बहु जानिआ भेउ ।
जब हूए क्रिपाल मिले गुरदेउ ॥
कहु कबीर अब बाहरि परी ।
संसारै कै अंचलि लरी ॥ ४ ॥

८

ग्रिहि सोभा जाकै रे नाहि ।
आवत पहीआ खुधे जाहि ॥
वाकै अंतरि नही संतोखु ।
बिनु सोहागनि लागै दोखु ॥
धनु सोहागनि महा पवीत ।
तपे तपीसर डोलै चीत ॥ १ ॥
सोहागनि किरपन की पूती ।
सेवक तजि जगत सिउ सूती ॥
साधू कै ठाढी दरबारि ।
सरनि तेरी मोकउ निसतारि ॥ २ ॥
सोहागनि है अति सुंदरी ।
पग नेवर छनक छनहरी ॥

जउ लगु प्रान तऊ लगु संगे ।
नाहि त चली बेगि उठि नंगे ॥ ३ ॥

सोहागनि भवन त्रै लीआ ।
दसअठ पुराण तीरथ रस कीआ ॥
ब्रहमा बिसनु महेसर बेधे ।
बडे भूपति राजे है छेधे ॥ ४ ॥

सोहागनि उरवारि न पारि ।
पांच नारद कै संगि बिधवारि ॥
पांच नारद के मिटवे फूटे ।
कहु कबीर गुर किरपा छूटे ॥ ५ ॥

६

जैसे मंदर महि बलहर ना ठाहरै ।
नाम बिना कैसे पारि उतरै ॥
कुंभ बिना जलु ना टीकावै ।
साधू बिनु ऐसे अबगतु जावै ॥
जारउ तिसै जु रामु न चेतै ।
तन मन रमत रहै महि खेतै ॥ १ ॥

जैसे हलहर बिना जिमी नही बोईऐ ।
सूत बिना कैसे मणी परोईऐ ॥
घुंडी बिनु किआ गंठि चढ़ाईऐ ।
साधू बिनु तैसे अबगतु जाईऐ ॥ २ ॥

जैसे मात पिता बिनु बालु न होई ।
बिंब बिना कैसे कपरे धोई ॥
घोर बिना कैसे असवार ।
साधू बिनु नाही दरवार ॥ ३ ॥

जैसे बाजे बिनु नही लीजै फेरी ।
खसमि दुहागनि तजि अउहेरी ॥
कहै कबीर एकै करि करना ।
गुरमुखि होइ बहुरि नही मरना ॥ ४ ॥

१०

कूटन सोइ जु मन कउ कूटै ।
मन कूटै तउ जम ते छूटै ॥
कुटि कुटि मनु कसवटी लावै ।
सो कूटनु मुकति बहु पावै ॥
कूटनु किसै कहहु संसार ।
सगल बोलन के माहि बीचार ॥ १ ॥

नाचनु सोइ जु मन सिउ नाचै ।
झूठि न पतीऐ परचै साचै ॥
इसु मन आगे पूरै ताल ।
इसु नाचन के मन रखवाल ॥ २ ॥

बजारी सो जु बजारहि सोधै ।
पांच पलीतह कउ परबोधै ॥
नउ नाइक की भगति पछानै ।
सो बाजारी हम गुर माने ॥ ३ ॥

तसकरु सोइ जि ताति न करै ।
इंद्री कै जतनि नामु उचरै ॥
कहु कबीर हम ऐसे लखन ।
धंनु गुरदेव अति रूप बिचखन ॥ ४ ॥

११

धंनु गुपाल धंनु गुरदेव ।
धंनु अनादि भूखे कवलु टहकेव ॥
धनु ओइ संत जिन ऐसी जानी ।
तिन कउ मिलिबो सारिंगपानी ॥
आदि पुरख ते होइ अनादि ।
जपीऐ नामु अंन कै सादि ॥ १ ॥
जपीऐ नामु जपीऐ अंनु ।
अंभै कै संगि नीका वंनु ॥
अंनै बाहरि जो नर होवहि ।
तीनि भवन महि अपनी खोवहि ॥ २ ॥
छोडहि अंनु करहि पाखंड ।
ना सोहागनि ना ओहि रंड ॥
जग महि बकते दूधाधारी ।
गुपती खावहि वटि कासारी ॥ ३ ॥
अंनै बिना न होइ सुकालु ।
तजिऐ अंनि न मिलै गुपालु ॥
कहु कबीर हम ऐसे जानिआ ।
धंनु अनादि ठाकुर मनु मानिआ ॥ ४ ॥

रागु रामकली

१

काइआ कलालनि लाहनि मेलउ गुर का सबदु गुड़ु कीनु रे ।
त्रिसना कामु क्रोधु मद मतसर काटि काटि कसु दीनु रे ॥
कोई है रे संतु सहज सुख अंतरि जाकउ जपु तपु देउ दलाली रे ।
एक बूंद भरि तनु मनु देवउ जो मदु देइ कलाली रे ॥ १ ॥
भवन चतुरदस भाठी कीन्ही ब्रहम अगनि तनि जारी रे ।
मुद्रा मदक सहज धुनि लागी सुखमन पोचनहारी रे ॥ २ ॥
तीरथ बरत नेम सुचि संजम रवि ससि गहनै देउ रे ।
सुरति पिआल सुधा रसु अंम्रितु एहु महा रसु पेउ रे ॥ ३ ॥
निझर धार चुऐ अति निरमल इह रस मनूआ रातो रे ।
कहि कबीर सगले मद छूछे इहै महा रसु साचो रे ॥ ४ ॥

२

गुड़ु करि गिआनु धिआनु करि महूआ
भउ भाठी मन धारा ।
सुखमन नारी सहज समानी पीवै पीवनहारा ॥
अउधू मेरा मनु मतवारा ।
उनमद चढा मदन रसु चाखिआ त्रिभवन भइआ उजिआरा ॥ १ ॥

दुइ पुर जोरि रसाई भाठी पीउ महा रसु भारी ।
कामु क्रोधु दुइ कीए जलेता छूटि गई संसारी ॥ २ ॥

प्रगट प्रगास गिआन गुर गंमित सतिगुर ते सुधि पाई ।
दासु कबीरु तासु मद माता उचकि न कबहू जाई ॥ ३ ॥

३

तूं मेरो मेरु परबतु सुआमी ओट गही मै तेरी ।
ना तुम डोलहु ना हम गिरते रखि लीनी हरि मेरी ॥
अब तब जब कब तुही तुही ।
हम तुअ परसाद सुखी सदही ॥ १ ॥

तोरे भरोसे मगहर बसिओ मेरे तन की तपति बुझाई ।
पहिले दरसनु मगहर पाइओ फुनि कासी बसे आई ॥ २ ॥

जैसा मगहरु तैसी कासी हम एकै करि जानी ।
हम निरधन जिउ इहु धनु पाइआ मरते फूटि गुमानी ॥ ३ ॥

करै गुमानु चुभहि तिसु सूला को काढन कउ नाही ।
अजै सु चोभ कउ बिलल बिलाते नरके घोर पचाही ॥ ४ ॥

कवनु नरकु किआ सुरगु बिचारा संतन दोऊ रादे ।
हम काहू की काणि न कढते अपने गुर परसादे ॥ ५ ॥

अब तउ जाइ चढे सिंघासनि मिले है सारिंगपानी ।
राम कबीरा एक भए है कोइ न सकै पछानी ॥ ६ ॥

४

संता मानउ दूता डानउ इहु कुटवारी मेरी ।
दिवस रैनि तेरे पाउ पलोसउ केस चवर करि फेरी ॥
हम कूकर तेरे दरबारि ।
भउकहि आगै बदनु पसारि ॥ १ ॥

पूरब जनम हम तुम्हरे सेवक अब तउ मिटिआ न जाई ।
तेरे दुआरै धुनि सहज की माथै मेरे दगाई ॥ २ ॥

दागे होहि सु रन महि जूझहि बिनु दागे भगि जाई ।
साधू होइ सु भगति पछानै हरि लए खजानै पाई ॥ ३ ॥

कोठरे महि कोठरी परम कोठी बीचारि ।
गुर दीनी बसतु कबीर कउ लेवउ बसतु समारि ॥ ४ ॥

कबीर दीई संसार कउ लीनी जिसु मसतकि भागु ।
अंम्रित रसु जिनि पाइआ थिरु ता का सोहागु ॥ ५ ॥

५

जिह मुख बेदु गाइत्री निकसै सो किउ ब्रहमनु बिसरु करै ।
जा कै पाइ जगतु सभु लागै सो किउ पंडितु हरि न कहै ॥
काहे मेरे बाम्हन हरि न कहहि ।
रामु न बोलहि पाडे दोजकु भरहि ॥ १ ॥

आपन ऊच नीच घरि भोजनु हठे करम करि उदरु भरहि ।
चउदस अमावस रचि रचि मांगहि कर दीपकु लै कूप परहि ॥ २ ॥
तूं ब्रहमनु मै कासीक जुलहा मुहि तोहि बराबरी कैसे कै बनहि।
हमरे राम नाम कहि उबरे बेदु भरोसे पांडे डूबि मरहि ॥ ३ ॥

६

तरवरु एकु अनंत डार साखा पुहप पत्र रस भरीआ ।
इह अंम्रित की बाड़ी है रे तिनि हरि पूरै करीआ ॥
जानी जानी रे राजा राम की कहानी ।
अंतरि जोति राम परगासा गुरमुखि बिरलै जानी ॥ १ ॥

भवरु एकु पुहप रस बीधा बारह ले उरधरिआ ।
सोरह मधे पवनु झकोरिआ आकासे फरु फरिआ ॥ २ ॥

सहज सुंनि इकु बिरवा उपजिआ धरती जलहरु सोखिआ ।
कहि कबीर हउ ता का सेवकु जिनि इहु बिरवा देखिआ ॥ ३ ॥

७

मुंद्रा मोनि दइआ करि झोली पत्र का करहु बीचारु रे ।
खिंथा इहु तनु सीअउ अपना नामु करउ आधारु रे ॥
ऐसा जोगु कमावहु जोगी ।
जप जप संजमु गुरमुखि भोगी ॥ १ ॥

बुधि बिभूति चढावउ अपुनी सिंगी सुरति मिलाई ।
करि बैरागु फिरउ तनि नगरी मन की किंगुरी बजाई ॥ २ ॥

पंच ततु लै हिरदै राखहु रहै निरालम ताड़ी ।
कहतु कबीरु सुनहु रे संतहु धरमु दइआ करि बाड़ी ॥ ३ ॥

८

कवन काज सिरजे जग भीतरि जनमि कवन फलु पाइआ ।
भव निधि तरन तारन चिंतामनि इक निमख न इहु मनु लाइआ ॥
गोबिंद हम असे अपराधी ।
जिनि प्रभि जीउ पिंडु था दीआ तिस की भाउ भगति नही साधी ॥ १ ॥

परधन परतन परती निंदा पर अपबादु न छूटै ।
आवा गवनु होत है फुनि फुनि इहु परसंगु न तूटै ॥ २ ॥

जिह घर कथा होत हरि संतन इक निमख न कीनो मै फेरा ।
लंपट चोर दूत मतवारे तिन संगि सदा बसेरा ॥ ३ ॥

काम क्रोध माइआ मद मतसर ए संपै मो माही ।
दइआ धरमु अरु गुर की सेवा ए सुपनंतरि नाही ॥ ४ ॥

दीन दइआल क्रिपाल दमोदर भगति बछल भै हारी ।
कहत कबीर भीर जन राखहु हरि सेवा करउ तुम्हारी ॥ ५ ॥

६

जिह सिमरनि होइ मुकति दुआरु ।
जाहि बैकुंठि नही संसारि ॥
निरभउ कै घरि बजावहि तूर ।
अनहद बजहि सदा भरपूर ॥
ऐसा सिमरनु करि मन माहि ।
बिनु सिमरन मुकति कत नाहि ॥ १ ॥

जिह सिमरन नाही ननकारु ।
मुकति करै उतरै बहु भारु ॥
नमसकारु करि हिरदै माहि ।
फिरि फिरि तेरा आवनु नाहि ॥ २ ॥

जिह सिमरनि करहि तू केल ।
दीपकु बांधि धरिओ बिनु तेल ॥
सो दीपकु अमरकु संसारि ।
काम क्रोध बिखु काढीले मारि ॥ ३ ॥

जिह सिमरनि तेरी गति होइ ।
सो सिमरनु रखु कंठि परोइ ॥
सो सिमरनु करि नही राखु उतारि ।
गुर परसादी उतरहि पारि ॥ ४ ॥

जिह सिमरनि नाही तुहि कानि ।
मंदरि सोवहि पटंबर तानि ॥
सेज सुखाली बिगसै जीउ ।
सो सिमरनु तू अनदिनु पीउ ॥ ५ ॥

जिह सिमरन तेरी जाइ बलाइ ।
जिह सिमरन तुझु पोहै न माइ ॥
सिमरि सिमरि हरि हरि मनि गाईऐ ।
इहु सिमरनु सतिगुर ते पाईऐ ॥ ६ ॥

सदा सदा सिमरि दिनु राति ।
ऊठत बैठत सासि गिरासि ॥
जागु सोइ सिमरन रस भोग ।
हरि सिमरनु पाईऐ संजोग ॥ ७ ॥

जिह सिमरन नाही तुझु भार ।
सो सिमरनु राम नाम अधारु ॥
कहि कबीर जाका नही अंतु ।
तिस के आगे तंतु न मंतु ॥ ८ ॥

१०

बंधचि बंधनु पाइआ। मुकतै गुरि अनलु बुझाइआ॥
जब नख सिख इहु मन चीन्हा। तब अंतरि मजनु कीन्हा॥
पवन पति उनमनि रहनु खरा। नही मिरतु न जनमु जरा॥ १॥

उलटीले सकति सहारं। पैसीले गगन मझारं॥
बेधीअले चक्र भुअंगा। भेटीअले राइ निसंगा॥ २॥

चूकीअले मोह मइआसा। ससि कीनो सूर गिरासा॥
जब कुंभकु भरिपुरि लीणा। तह बाजे अनहद बीणा॥ ३॥

बकतै बकि सबदु सुनाइआ। सुनतै सुनि मंनि बसाइआ॥
करि करता उतरसि पारं। कहै कबीरा सारं॥ ४॥

११

चंदु सूरज दुइ जोति सरूपु ।
जोती अंतरि ब्रहमु अनूपु ॥
करु रे गिआनी ब्रहम बीचारु ।
जोती अंतरि धरिआ पसारु ॥ १ ॥

हीरा देखि हीरे करउ आदेसु ।
कहै कबीर निरंजन अलेखु ॥ २ ॥

१२

दुनीआ हुसीआर बेदार जागत मुसीअत हउ रे भाई ।
निगम हुसीआर पहरूआ देखत जमु ले जाई ॥
नींबु भइओ आंबु आंबु भइओ नींबा केला पाका झारि ।
नालीएर फलु सेबरि पाका मूरख मुगध गवार ॥ १ ॥

हरि भइओ खांडु रेतु महि बिखरिओ हसतीं चुनिओ न जाई ।
कहि कमीर कुल जाति पांति तजि चीटी होइ चुनि खाई ॥ २ ॥

रागु मारू

१

पडीश्रा कवन कुमति तुम लागे ।
बूडहुगे परवार सकल सिउ राम न जपहु अभागे ॥
बेद पुरान पड़े का किश्रा गुनु खर चंदन जस मारा ।
राम नाम की गति नही जानी कैसे उतरसि पारा ॥ १ ॥

जीश्र बधहु सु धरमु करि थापहु अधरमु कहहु कत भाई ।
श्रापस कउ मुनिवर करि थापहु का कउ कहहु कसाई ॥ २ ॥

मन के अंधे श्रापि न बूझहु काहि बुझावहु भाई ।
माइश्रा कारन बिदिश्रा बेचहु जनमु अबिरथा जाई ॥ ३ ॥

नारद बचन बिश्रासु कहत है सुक कउ पूछहु जाई ।
कहि कबीर रामै रमि छूटहु नाहि त बूड़े भाई ॥ ४ ॥

२

बनहि बसे किउ पाईऐ जउ लउ मनहु न तजहि बिकार।
जिह घरु बनु समसरि कीआ ते पूरे संसार॥
सार सुखु पाईऐ रामा।
रंगि रवहु आतमै राम॥ १॥

जटा भसम लेपन कीआ कहा गुफा महि बासु।
मनु जीते जगु जीतिआ जाते बिखिआ ते होइ उदासु॥ २॥

अंजनु देइ सभै कोई टुकु चाहन माहि बिडानु।
गिआन अंजनु जिह पाइआ ते लोइन परवानु॥ ३॥

कहि कबीर अब जानिआ गुरि गिआनु दीआ समझाइ।
अंतरगति हरि भेटिआ अब मेरा मनु कतहू न जाइ॥ ४॥

३

रिधि सिधि जा कउ फुरी तब काहू सिउ किआ काजि ।
तेरे कहने की गति किआ कहउ मै बोलत ही बड लाज ॥
रामु जिह पाइआ राम ।
ते भवहि न बारै बार ॥ १ ॥

झूठा जगु डहकै घना दिन दुइ बरतन की आस ।
राम उदकु जिह जन पीआ तिहि बहुरि न भई पिआस ॥ २ ॥

गुर प्रसादि जिह बूझिआ आसा ते भइआ निरासु ।
सभु सचु नदरी आइआ जउ आतम भइआ उदासु ॥ ३ ॥

राम नाम रसु चाखिआ हरि नामा हर तारि ।
कहु कबीर कंचनु भइआ भ्रमु गइआ समुद्रै पारि ॥ ४ ॥

४

उदक समुंद सलल की साखिआ नदी तरंग समावहिगे ।
सुंनहि सुंनु मिलिआ समदरसी पवन रूप होइ जावहिगे ॥
बहुरि हम काहे आवहिगे ।
आवन जाना हुकमु तिसै का हुकमै बूझि समावहिगे ॥ १ ॥

जब चूकै पंच धातु की रचना ऐसे भरमु चुकावहिगे ।
दरसनु छोडि भए समदरसी एको नामु धिआवहिगे ॥ २ ॥

जित हम लाए तित ही लागे तैसे करम कमावहिगे ।
हरि जी क्रिपा करे जउ अपनी तौ गुर के सबदि समावहिगे ॥ ३ ॥

जीवत मरहु मरहु फुनि जीवहु पुनरपि जनमु न होई ।
कहु कबीर जो नामि समाने सुंन रहिआ लिव सोई ॥ ४ ॥

५

जउ तुम्ह मोकउ दूरि करत हउ तउ तुम मुकति बतावहु ।
एक अनेक होइ रहिओ सगल महि अब कैसे भरमावहु ॥
राम मोकउ तारि कहां लै जई है ।
सोधउ मुकति कहा देउ कैसी करि प्रसादु मोहि पाई है ॥ १ ॥

तारन तरनु तबै लगु कहीऐ जब लगु ततु न जानिआ ।
अब तउ बिमल भए घट ही मह कहि कबीर मनु मानिआ ॥ २ ॥

६

जिनि गड़ कोट कीए कंचन के छोडि गइआ सो रावनु ।
काहे कीजतु है मनि भावनु ।
जब जमु आइ केस ते पकरै तह हरि को नामु छडावन ॥ १ ॥

कालु अकालु खसम का कीन्हा इहु परपंचु बधावनु ।
कहि कबीर ते अंते मुकते जिन्ह हिरदै राम रसाइनु ॥ २ ॥

७

देही गावा जीउ धर महतउ बसहि पंच किरसाना ।
नैनू नकटू स्रवनू रसपति इंद्री कहिआ न माना ॥
बाबा अब न बसउ इह गाउ ।
घरी घरी का लेखा मागै काइथु चेतू नाउ ॥ १ ॥

धरमराइ जब लेखा मागै बाकी निकसी भारी ।
पंच क्रिसानवा भागि गए लै बाधिओ जीउ दरबारी ॥ २ ॥

कहै कबीर सुनहु रे संतहु खेत ही करहु निबेरा ।
अब की बार बखसि बंदे कउ बहुरि न भउजलि फेरा ॥ ३ ॥

८

अनभउ किनै न देखिआ बैरागीअड़े बिनु भै अनभउ होइ वणा हंबै ॥ १ ॥
सहु हदूरि देखै ता भउ पवै बैरागीअड़े, हुकमै बूझै त
निरभउ होइ वणा हंबै ॥ २ ॥

हरि पाखंडु न कीजई बैरागीअड़े।
पाखंडि रता समु लोकु वणा हंबै ॥ ३ ॥

त्रिसना पासु न छोडई बैरागीअड़े।
ममता जालिआ पिंडु वणा हंबै ॥ ४ ॥

चिंता जालि तनु जालिआ बैरागीअड़े।
जे मनु मिरतकु होइ वणा हंबै ॥ ५ ॥

सतिगुर बिनु बैरागु न होवई बैरागीअड़े।
जे लोचै सभु कोइ वणा हंबै ॥ ६ ॥

करमु होवै सतिगुरु मिलै बैरागीअड़े।
सहजे पावै सोइ वणा हंबै ॥ ७ ॥

कहु कबीर इक बेनती बैरागीअड़े।
मो कउ भउजलु पारि उतारि वणा हंबै ॥ ८ ॥

९

राजन कउनु तुमारै आवै ।
ऐसो भाउ बिदर को देखिओ ओहु गरीबु मोहि भावै ॥
हसती देखि भरम ते भूला स्री भगवानु न जानिआ ।
तुमरो दूधु बिदर को पान्हो अंम्रितु करि मै मानिआ ॥ १ ॥
खीर समानि सागु मै पाइआ गुन गावत रैनि बिहानी ।
कबीर को ठाकुरु अनद बिनोदी जाति न काहू की मानी ॥ २ ॥

सलोक कबीर ।

गगन दमामा बाजिओ परिओ नीसानै घाउ ।
खेतु जु माडिओ सूरमा अब जूझन को दाउ ॥ १ ॥

सूरा सो पहिचानीऐ जु लरै दीन के हेत ।
पुरजा पुरजा कटि मरै कबहू न छाडै खेतु ॥ २ ॥

१०

दीनु बिसारिओ रे दिवाने दीनु बिसारिओ रे ।
पेटु भरिओ पसूआ जिउ सोइओ मनुखु जनमु है हारिओ ॥
साध संगति कबहू नही कीनी रचिओ धंधै झुठ ।
सुआन सूकर बाइस जिवै भटकतु चालिओ ऊठि ॥ १ ॥

आपस कौ दीरघ करि जानै अउरन कउ लग मात ।
मनसा बाचा करमना मै देखे दोजक जात ॥ २ ॥

कामी क्रोधी चातुरी बाजीगर बेकाम ।
निंदा करते जनमु सिरानो कबहू न सिमरिओ रामु ॥ ३ ॥

कहि कबीर चेतै नही मूरखु मुगधु गवारु ।
रामु नामु जानिओ नही कैसे उतरसि पारि ॥ ४ ॥

११

रामु सिमरु पछुताहिगा मन ।
पापी जीअरा लोभु करतु है आजु कालि उठि जाहिगा ॥
लालच लागे जनमु गवाइआ माइआ भरम भुलाहिगा ।
धन जोबन का गरबु न कीजै कागद जिउ गलि जाहिगा ॥ १ ॥
जउ जमु आइ केस गहि पटकै ता दिन किछु न बसाहिगा ।
सिमरनु भजनु दइआ नही कीनी तउ मुखि चोटा खाहिगा ॥ २ ॥
धरमराइ जब लेखा मागै किआ मुखु लै कै जाहिगा ।
कहतु कबीरु सुनहु रे संतहु साध संगति तरि जाहिगा ॥ ३ ॥

रागु केदारा

१

उसतति निंदा दोऊ बिबरजित तजहु मानु अभिमाना ।
लोहा कंचनु सम करि जानहि ते मूरति भगवाना ॥
तेरा जनु एकु आधु कोई ।
कामु कोधु लोभु मोहु बिबरजित हरि पदु चीन्है सोई ॥ १ ॥

रज गुण तम गुण सत गुण कहीऐ एह तेरी सभ माइआ ।
चउथे पद कउ जो नरु चीन्है तिन ही परम पदु पाइआ ॥ २ ॥

तीरथ बरत नेम सुचि संजम सदा रहै निहकामा ।
त्रिसना अरु माइआ भ्रमु चूका चितवत आतम रामा ॥ ३ ॥

जिह मंदरि दीपकु परगासिआ अंधकारु तह नासा ।
निरभउ पूरि रहे भ्रमु भागा कहि कबीर जन दासा ॥ ४ ॥

२

किनही बनजिआ कांसी तांबा किन ही लउग सुपारी ।
संतहु बनजिआ नामु गोबिद का ऐसी खेप हमारी ॥
हरि के नाम के बिआपारी ।
हीरा हाथि चड़िआ निरमोलकु छूटि गई संसारी ॥ १ ॥

साचे लाए तउ सच लागे साचे के बिउहारी ।
साची बसतु के भार चलाए पहुचे जाइ भंडारी ॥ २ ॥

आपहि रतन जवाहर मानिक आपै है पासारी ।
आपै दहदिस आप चलावै निहचलु है बिआपारी ॥ ३ ॥

मनु करि बैलु सुरति करि पैडा गिआन गोनि भरि डारी ।
कहतु कबीरु सुनहु रे संतहु निबही खेप हमारी ॥ ४ ॥

री कलवारि गवारि मूढ मति उलटो पवनु फिरावउ ।
मनु मतवार मेर सर भाठी अंम्रित धार चुआवउ ॥

बोलहु भईआ राम की दुहाई ।
पीवहु संत सदा मति दुरलभ सहजे पिआस बुझाई ॥ १ ॥
भै बिचि भाउ भाइ कोऊ बूझहि हरि रसु पावै भाई ।
जेते घट अंम्रितु सभ ही महि भावै तिसहि पीआई ॥ २ ॥

नगरी एकै नउ दरवाजे धावतु बरजि रहाई ।
त्रिकुटी छूटै दसवा दरु खूल्है ता मनु खीवा भाई ॥ ३ ॥

अभै पद पूरि ताप तिह नासे कहि कबीर बीचारी ।
उबट चलंते इहु मदु पाइआ जैसे खोंद खुमारी ॥ ४ ॥

४

काम क्रोध त्रिसना के लीने गति नही एकै जानी ।
फूटी आखै कछू न सूझै बूडि मूए बिनु पानी ॥
चलत कत टेढे टेढे टेढे ।
असति चरम बिसटा के मूंदे दुरगंध ही के बेढे ॥ १ ॥

राम न जपहु कवन भ्रम भूले तुम ते कालु न दूरे ।
अनिक जतन करि इह तनु राखहु रहै अवसथा पूरे ॥ २ ॥

आपन कीआ कछू न होवै किआ को करै परानी ।
जा तिसु भावै सतिगुरु भेटै एको नामु बखानी ॥ ३ ॥

बलूआ के घरूआ महि बसते फुलवत देह अइआने ।
कहु कबीर जिह रामु न चेतिओ बूडे बहुतु सिआने ॥ ४ ॥

५

टेढी पाग टेढे चले लागे बीरे खान ।
भाउ भगति सिउ काजु न कछूऐ मेरो कामु दीवान ॥
रामु बिसारिओ है अभिमानि ।
कनिक कामनी महा सुंदरी पेखि पेखि सचु मानि ॥ १ ॥

लालच झूठ बिकार महामद इह बिधि अउध बिहानि ।
कहि कबीर अंत की बेर आइ लागो कालु निदानि ॥ २ ॥

चारि दिन अपनी नउबति चले बजाइ ।
इतनकु खटीआ गठीआ मटीआ संगि न कछु लै जाइ ॥
देहरी बैठी मिहरी रोवै दुआरै लउ संग माइ ।
मरहट लगि सभु लोगु कुटंबु मिलि हंसु इकेला जाइ ॥ १ ॥

वै सुत वै बित वै पुर पाटन बहुरि न देखै आइ ।
कहतु कबीरु राम को न सिमरहु जनमु अकारथ जाइ ॥ २ ॥

रागु भैरउ

१

इहु धनु मेरे हरि के नाउ।
गांठि न बाधउ बेचि न खाउ ॥
नाउ मेरे खेती नाउ मेरे बारी।
भगति करउ जनु सरनि तुम्हारी ॥ १ ॥

नाउ मेरे माइआ नाउ मेरे पूंजी ।
तुमहि छोडि जानउ नही दूजी ॥ २ ॥

नाउ मेरे बंधिप नाउ मेरे भाई ।
नाउ मेरे संगि अंति होइ सखाई ॥ ३ ॥

माइआ महि जिसु रखै उदासु ।
कहि कबीर हउ ता को दासु ॥ ४ ॥

२

नांगे आवनु नांगे जाना ।
कोइ न रहि है राजा राना ॥
रामु राजा नउ निधि मेरै ।
संपै हेतु कलतु धनु तेरै ॥ १ ॥

आवत संग न जात संगाती ।
कहा भइओ दरि बांधे हाथी ॥ २ ॥

लंका गढु सोने का भइआ ।
मूरखु रावनु किआ ले गइआ ॥ ३ ॥

कहि कबीर किछु गुनु बीचारि ।
चलै जुआरी दुइ हथ झारि ॥ ४ ॥

३

मैला ब्रहमा मैला इंदु ।
रवि मैला मैला है चंदु ॥
मैला मलता इहु संसारु ।
इकु हरि निरमलु जा का अंतु न पारु ॥ १ ॥

मैले ब्रहमंडाइ कै ईस ।
मैले निसिबासुर दिन तीस ॥ २ ॥

मैला मोती मैला हीरु ।
मैला पवनु पावकु अरु नीरु ॥ ३ ॥

मैले सिव संकरा महेस ।
मैले सिध साधिक अरु भेख ॥ ४ ॥

मैले जोगी जंगम जटा सहेति ।
मैली काइआ हंस समेति ॥ ५ ॥

कहि कबीर ते जन परवान ।
निरमल ते जो रामहि जान ॥ ६ ॥

४.

मनु करि मका किबला करि देही ।
बोलनहारु परम गुरु एही ॥
कहु रे मुलां बांग निवाज ।
एक मसीति दसै दरवाज ॥ १ ॥

मिसिमिलि तामसु भरमु कदूरी ।
भाखि ले पंचै होइ सबूरी ॥ २ ॥

हिंदू तुरक का साहिबु एक ।
कह करै मुलां कह करै सेख ॥ ३ ॥

कहि कबीर हउ भइआ दिवाना ।
मुसि मुसि मनूआ सहजि समाना ॥ ४ ॥

५

गंगा के संग सलिता बिगरी ।
सो सलिता गंगा होइ निबरी ॥
बिगरिओ कबीरा राम दुहाई ।
साचु भइओ अन कतहि न जाई ॥ १ ॥

चंदन कै संगि तरवरु बिगरिओ ।
सो तरवरु चंदनु होइ निबरिओ ॥ २ ॥

पारस के संग तांबा बिगरिओ ।
सो तांबा कंचनु होइ निबरिओ ॥ ३ ॥

संतन संगि कबीरा बिगरिओ ।
सो कबीरु रामै होइ निबरिओ ॥ ४ ॥

६

माथे तिलकु हथि माला बाना ।
लोगन रामु खिलउना जानां ॥
जउ हउ बउरा तउ राम तोरा ।
लोगु मरमु कह जानै मोरा ॥ १ ॥

तोरउ न पाती पूजउ न देवा ।
राम भगति बिनु निहफल सेवा ॥ २ ॥

सतिगुरु पूजउ सदा सदा मनावउ ।
ऐसी सेव दरगह सुखु पावउ ॥ ३ ॥

लोगु कहै कबीरु बउराना ।
कबीर का मरमु राम पहिचानां ॥ ४ ॥

७

उलटि जाति कुल दोऊ बिसारी।
सुंन सहज महि बुनत हमारी॥
हमरा झगरा रहा न कोऊ।
पंडित मुलां छाडे दोऊ॥ १॥

बुनि बुनि आप आपु पहिरावउ।
जह नही आपु तहा होइ गावउ॥ २॥

पंडित मुलां जो लिखि दीआ।
छाडि चले हम कछू न लीआ॥ ३॥

रिदै इखलासु निरख ले मीरा।
आपु खोजि खोजि मिले कबीरा॥ ४॥

८

निरधन आदरु कोई न देइ ।
लाख जतन करै ओहु चिति न धरेइ ॥
जउ निरधनु सरधन कै जाइ ।
आगे बैठा पीठि फिराइ ॥ १ ॥

जउ सरधनु निरधन कै जाइ ।
दीआ आदरु लीआ बुलाइ ॥ २ ॥

निरधन सरधनु दोनउ भाई ।
प्रभ की कला न मेटी जाई ॥ ३ ॥

कहि कबीर निरधन है सोई ।
जा के हिरदै नामु न होई ॥ ४ ॥

गुर सेवा ते भगति कमाई ।
तब इह मानस देही पाई ॥
इस देही कउ सिमरहि देव ।
सो देही भजु हरि की सेव ॥
भजहु गोबिंद भूलि मत जाहु ।
मानस जनम का एही लाहु ॥ १ ॥

जब लगु जरा रोगु नही आइआ ।
जब लगु कालि ग्रसी नही काइआ ॥
जब लगु बिकल भई नही बानी ।
भजि लेहि रे मन सारिगपानी ॥ २ ॥

अब न भजसि भजसि कब भाई ।
आवै अंतु न भजिआ जाई ॥
जो किछु करहि सोई अब सारु ।
फिरि पछुताहु न पावहु पारु ॥ ३ ॥

सो सेवकु जो लाइआ सेव ।
तिन ही पाए निरंजन देव ॥
गुर मिलि ताके खुल्हे कपाट ।
बहुरि न आवै जोनी बाट ॥ ४ ॥

इही तेरा अउसरु इह तेरी बार ।
घट भीतरि तू देखु बिचारि ॥
कहत कबीरु जीति कै हारि ।
बहु बिधि कहिओ पुकारि पुकारि ॥ ५ ॥

सिव की पुरी बसै बुधि सारु ।
तह तुम्ह मिलि कै करहु बिचारु ॥
ईत ऊत की सोझी परै ।
कउन करम मेरा करि करि मरै ॥
निजपद ऊपरि लागो धिआनु ।
राजा राम नामु मोरा ब्रहम गिआनु ॥ १ ॥

मूल दुआरै बंधिआ बंधु ।
रवि ऊपर गहि राखिआ चंदु ॥
पछम दुआरै सूरजु तपै ।
मेर डंड सिर ऊपरि बसै ॥ २ ॥

पसचम दुआरे की सिल ओड़ ।
तिह सिल ऊपरि खिड़की अउर ॥
खिड़की ऊपरि दसवा दुआरु ।
कहि कबीर ता का अंतु न पारु ॥ ३ ॥

११

सो मुलां जो मन सिउ लरै ।
गुर उपदेसि काल सिउ जुरै ॥
काल पुरख का मरदै मानु ।
तिसु मुला कउ सदा सलामु ॥
है हजूरि कत दूरि बतावहु ।
दुंदर बाधहु सुंदर पावहु ॥ १ ॥

काजी सो जु काइआ बीचारै ।
काइआ की अगनि ब्रहमु परजारै ॥
सुपनै बिंदु न देई झरना ।
तिसु काजी कउ जरा न मरना ॥ २ ॥

सो सुरतानु जु दुइ सर तानै ।
बाहरि जाता भीतरि आनै ॥
गगन मंडल महि लसकरु करै ।
सो सुरतानु छत्रु सिरि धरै ॥ ३ ॥

जोगी गोरखु गोरखु करै ।
हिंदू राम नाम उचरै ॥
मुसलमान का एकु खुदाइ ।
कबीर का सुआमी रहिआ समाइ ॥ ४ ॥

२१७

संत कबीर

जो पाथर कउ कहते देव ।
ता की बिरथा होवै सेव ॥
जो पाथर की पांई पाइ ।
तिस की घाल अजांई जाइ ॥
ठाकुरु हमरा सद बोलंता ।
सरब जीआ कउ प्रभु दानु देता ॥ १ ॥

अंतरि देउ न जानै अंधु ।
भ्रम का मोहिआ पावै फंधु ॥
न पाथरु बोलै ना किछु देइ ।
फोकट करम निहफल है सेव ॥ २ ॥

जे मिरतक कउ चंदनु चड़ावै ।
उसते कहहु कवन फल पावै ॥
जे मिरतक कउ बिसटा माहि रुलाई ।
तां मिरतक का किआ घटि जाई ॥ ३ ॥

कहत कबीर हउ कहउ पुकारि ।
समझि देखु साकत गावार ॥
दूजै भाइ बहुतु घर घाले ।
राम भगत है सदा सुखाले ॥ ४ ॥

१३

जल महि मीन माइआ के बेधे ।
दीपक पतंग माइआ के छेदे ॥
काम माइआ कुंचर कउ बिआपै ।
भुइअंगम भ्रिंग माइआ महि खापे ॥
माइआ अैसी मोहनी भाई ।
जेते जीअ तेते डहकाई ॥ १ ॥

पंखी म्रिग माइआ महि राते ।
साकर माखी अधिक संतापे ॥
तुरे उसट माइआ महि भेला ।
सिध चउरासीह माइआ महि खेला ॥ २ ॥

छिअ जती माइआ के बंदा ।
नवै नाथ सूरज अरु चंदा ॥
तपे रखीसर माइआ महि सूता ।
माइआ महि कालु अरु पंच दूता ॥ ३ ॥

सुआन सिआल माइआ महि राता ।
बंतर चीते अरु सिंघाता ॥
माजार गाडर अरु लूबरा ।
बिरख मूल माइआ महि परा ॥ ४ ॥

माइआ अंतरि भीने देव ।
सागर इंद्रा अरु धरतेव ॥
कहि कबीर जिसु उदरु तिसु माइआ ।
तब छूटे जब साधू पाइआ ॥ ५ ॥

१४

जब लगु मेरी मेरी करै ।
तब लगु काजु एकु नही सरै ॥
जब मेरी मेरी मिटि जाइ ।
तब प्रभ काजु सवारहि आइ ॥
ऐसा गिआनु बिचारु मना ।
हरि की न सिमरहु दुख भंजना ॥ १ ॥

जब लग सिंघु रहै बन माहि ।
तब लगु बनु फूलै ही नाहि ॥
जब ही सिआरु सिंघ कउ खाइ ।
फूलि रही सगली बनराइ ॥ २ ॥

जीतो बूडै हारो तिरै ।
गुर परसादी पारि उतरै ॥
दासु कबीरु कहै समझाइ ।
केवल राम रहहु लिव लाइ ॥ ३ ॥

१५

सतरि सैइ सलार है जा के ।
सवा लाखु पैकाबर ता के ॥
सेख जु कहीअहि कोटि अठासी ।
छपन कोटि जा के खेल खासी ॥
मो गरीब की को गुजरावै ।
मजलसि दूरि महलु को पावै ॥ १ ॥
तेतीस करोड़ी है खेलखाना ।
चउरासी लख फिरै दिवानां ॥
बाबा आदम कउ किछु नदरि दिखाई ।
उन भी भिसति घनेरी पाई ॥ २ ॥
दिल खलहलु जा कै जरदरू बानी ।
छोडि कतेब करै सैतानी ॥
दुनीआ दोसु रोसु है लोई ।
अपना कीआ पावै सोई ॥ ३ ॥
तुम दाते हम सदा भिखारी ।
देउ जबाबु होइ बजगारी ॥
दासु कबीरु तेरी पनह समानां ।
भिसतु नजीकि राखु रहमाना ॥ ४ ॥

१६

सभु कोई चलन कहत है ऊहां ।
ना जानउ बैकुंठु है कहां ॥
आप आप का मरमु न जानां ।
बातन ही बैकुंठु बखानां ॥ १ ॥

जब लगु मन बैकुंठ की आस ।
तब लगु नाही चरन निवास ॥ २ ॥

खाई कोटु न परलपगारा ।
ना जानउ बैकुंठ दुआरा ॥ ३ ॥

कहि कमीर अब कहीऐ काहि ।
साध संगति बैकुंठै आहि ॥ ४ ॥

१७

किउ लीजै गढु बंका भाई ।
दोवर कोट अरु तेवर खाई ।।

पांच पचीस मोह मद मतसर आडी परबल माइआ ।
जन गरीब को जोरु न पहुचै कहां करउ रघुराइआ ॥ १ ॥

कामु किवारी दुखु सुखु दरवानी पापु पुंनु दरवाजा ।
क्रोधु प्रधानु महा बड दुंदर तह मनु मावासी राजा ॥ २ ॥

स्वाद सनाह टोपु ममता को कुबुधि कमान चढाई ।
तिसना तीर रहे घट भीतरि इउ गढु लीओ न जाई ॥ ३ ॥

प्रेम पलीता सुरति हवाई गोला गिआनु चलाइआ ।
ब्रहमि अगनि सहजे परजाली एकहि चोट सिझाइआ ॥ ४ ॥

सतु संतोखु लै लरने लागा तोरे दुइ दरवाजा ।
साध संगति अरु गुर की क्रिपा ते पकरिओ गढ को राजा ॥ ५ ॥

भगवत भीरि सकति सिमरन की कटी काल भै फासी ।
दासु कमीरु चढ़िओ गढ़ ऊपरि राजु लीओ अबनासी ॥ ६ ॥

१८

गंग गुसाइनि गहिर गंभीर ।
जंजीर बांधि करि खरे कबीर ॥
मनु न डिगै तनु काहे कउ डराइ ।
चरन कमल चितु रहिओ समाइ ॥ १ ॥
गंगा की लहरि मेरी टुटी जंजीर ।
म्रिगछाला पर बैठे कबीर ॥ २ ॥
कहि कबीर कोऊ संग न साथ ।
जल थल राखन है रघुनाथ ॥ ३ ॥

१६

अगम द्रुगम गड़ि रचिओ बास ।
जा महि जोति करे परगास ॥
बिजुली चमकै होइ अनंदु ।
जिह पउढ़े प्रभ बाल गोबिंद ॥
इहु जीउ राम नाम लिव लागै ।
जरा मरनु छूटै भ्रमु भागै ॥ १ ॥

अबरन बरन सिउ मन ही प्रीति ।
हउमै गावनि गावहि गीत ॥
अनहद सबद होत झुनकार ।
जिह पउढ़े प्रभ स्री गोपाल ॥ २ ॥

खंडल मंडल मंडल मंडा ।
त्रिअ असथान तीनि तिअ खंडा ॥
अगम अगोचरु रहिआ अभ अंत ।
पारु न पावै को धरनीधर मंत ॥ ३ ॥

कदली पुहप धूप परगास ।
रज पंकज महि लीओ निवास ॥
दुआदस दल अभ अंतरि मंत ।
जह पउड़े स्री कमलाकंत ॥ ४ ॥

अरध उरध मुखि लागो कासु ।
सुंन मंडल महि करि परगासु ॥
ऊहां सूरज नाही चंद ।
आदि निरंजनु करै अनंद ॥ ५ ॥

सो ब्रहमंडि पिंडि सो जानु ।
मानसरोवरि करि इसनानु ॥
सोहंसो जा कउ है जाप ।
जा कउ लिपत न होइ पुंन अरु पाप ॥ ६ ॥

अबरन बरन घाम नही छाम ।
अवर न पाईऐ गुर की साम ॥
टारी न टरै आवै न जाइ ।
सुंन सहज महि रहिओ समाइ ॥ ७ ॥

मन मधे जानै जे कोइ ।
जो बोलै सो आपै होइ ॥
जोति मंत्रि मनि असथिरु करै ।
कहि कबीर सो प्रानी तरै ॥ ८ ॥

२०

कोटि सूर जा कै परगास ।
कोटि महादेव अरु कबिलास ॥
दुरगा कोटि जाकै मरदनु करै ।
ब्रहमा कोटि बेद उचरै ॥
जउ जाचउ तउ केवल राम ।
आन देव सिउ नाही काम ॥ १ ॥

कोटि चंद्रमे करहि चराक ।
सुर तेतीसउ जेवहि पाक ॥
नव ग्रह कोटि ठाढे दरबार ।
धरम कोटि जाकै प्रतिहार ॥ २ ॥

पवन कोटि चउबारे फिरहि ।
बासक कोटि सेज बिसथरहि ॥
समुंद कोटि जा के पानीहार ।
रोमावलि कोटि अठारह भार ॥ ३ ॥

कोटि कमेर भरहि भंडार ।
कोटिक लखमी करै सीगार ॥
कोटिक पाप पुंन बहु हिरइ ।
इंद्र कोटि जा के सेवा करहि ॥ ४ ॥

छपन कोटि जा कै प्रतिहार ।
नगरी नगरी खिअत अपार ॥
लटछूटी वरतै बिकराल ।
कोटि कला खेलै गोपाल ॥ ५ ॥

कोटि जग जाकै दरबार ।
गंध्रब कोटि करहि जैकार ॥
बिदिआ कोटि सभै गुन कहै ।
तऊ पारब्रहम का अंतु न लहै ॥ ६ ॥

बावन कोटि जाकै रोमावली ।
रावन सैना जह ते छली ॥
सहस कोटि बहु कहत पुरान ।
दुरजोधन का मथिआ मानु ॥ ७ ॥

कंद्रप कोटि जाकै लवै न धरहि ।
अंतर अंतरि मनसा हरहि ॥
कहि कबीर सुनि सारिगपान ।
देहि अभै पदु मांगउ दान ॥ ८ ॥

रागु बसंतु

१

मउली धरती मउलिआ अकासु ।
घटि घटि मउलिआ आतम प्रगासु ॥
राजा रामु मउलिआ अनत भाइ ।
जह देखउ तह रहिआ समाइ ॥ १ ॥

दुतीआ मउले चारि बेद ।
सिम्रिति मउली सिउ कतेब ॥ २ ॥

संकरु मउलिओ जोग धिआन ।
कबीर को सुआमी सभ समान ॥ ३ ॥

२

पंडित जन माते पढ़ि पुरान ।
जोगी माते जोग धिआन ॥
संनिआसी माते अहंमेव ।
तपसी माते तप कै भेव ॥
सभ मदमाते कोऊ न जाग ।
संग ही चोर घरु मुसन लाग ॥ १ ॥

जागै सुकदेउ अरु अकूरु ।
हणवंतु जागै धरि लंकूरु ॥
संकरु जागै चरन सेव ।
कलि जागे नामा जैदेव ॥ २ ॥

जागत सोवत बहु प्रकार ।
गुरमुखि जागै सोई सारु ॥
इसु देही के अधिक काम ।
कहि कबीर भजि राम नाम ॥ ३ ॥

३

जोइ खसमु है जाइआ ।
पूति बापु खेलाइआ ॥
बिनु स्रवणा खीरु पिलाइआ ॥
देखहु लोगा कलि को भाउ ।
सुति मुकलाई अपनी माउ ॥ १ ॥

पगा बिनु हुरीआ मारता ।
बदनै बिनु खिर खिर हासता ॥
निद्रा बिनु नरु पै सोवै ।
बिनु बासन खीरु बिलोवै ॥ २ ॥

बिनु असथन गऊ लवेरी ।
पैडे बिनु बाट घनेरी ॥
बिनु सतिगुर बाट न पाई ।
कहु कबीर समझाई ॥ ३ ॥

४

प्रहलाद पठाए पड़नसाल ।
संगि सखा बहु लीए बाल ॥
मोकउ कहा पढ़ावसि आल जाल ।
मेरी पटीआ लिखि देहु स्रीगोपाल ॥

नही छोडउ रे बाबा राम नाम ।
मेरो अउर पढ़न सिउ नही कामु ॥ १ ॥

संडै मरकै कहिओ जाइ ।
प्रहलाद बुलाए बेगि धाइ ॥
तू राम कहन की छोडु बानि ।
तुझु तुरतु छडाऊ मेरो कहिओ मानि ॥ २ ॥

मोकउ कहा सतावहु बार बार ।
प्रभि जल थल गिरि कीए पहार ॥
इकु रामु न छोडउ गुरहि गारि ।
मोकउ घालि जारि भावै मारि डारि ॥ ३ ॥

काढि खड़गु कोपिओ रिसाइ ।
तुम राखनहारो मोहि बताइ ॥
प्रभ थंभ ते निकसे कै बिसथार ।
हरनाखसु छेदिओ नख बिदार ॥ ४ ॥

ओइ परम पुरख देवाधिदेव ।
भगति हेत नरसिंघ भेव ॥
कहि कबीर को लखै न पार ।
प्रहलाद उधारै अनिक बार ॥ ५ ॥

५

इसु तन मन मधे मदन चोर ।
जिनि गिआन रतनु हिरि लीन मोर ॥
मै अनाथु प्रभ कहउ काहि ।
को को न बिगूतो मै को आहि ॥

माधउ दारुन दुखु सहिओ न जाइ ।
मेरो चपल बुधि सिउ कहा बसाइ ॥ १ ॥

सनक सनंदन सिव सुकादि ।
नाभि कमल जाने ब्रमादि ॥
कबि जन जोगी जटाधारि ।
सभ आपन अउसर चले सारि ॥ २ ॥

तू अथाहु मोहि थाह नाहि ।
प्रभ दीनानाथ दुखु कहउ काहि ॥
मोरो जनम मरन दुखु आथि धीर ।
सुखसागर गुन रउ कबीर ॥ ३ ॥

६

नाइकु एकु बनजारे पाच ।
बरध पचीसक संगु काच ॥
नउ बहीआं दस गोनि आहि ।
कसन बहतरि लागी ताहि ॥
मोहि ऐसे बनज सिउ नही न काजु ।
जिह घटै मूलु नित बढै बिआजु ॥ १ ॥

सात सूत मिलि बनजु कीन ।
करम भावनी संग लीन ॥
तीनि जगाती करत रारि ।
चलो बनजारा हाथ झारि ॥ २ ॥

पूंजी हिरानी बनजु टूट ।
दहदिस टांडो गइओ फूटि ॥
कहि कबीर मन सरसी काज ।
सहज समानो त भरम भाज ॥ ३ ॥

बसंतु (हिंडोलु)

७

माता जूठी पिता भी जूठा जूठे ही फल लागे ।
आवहि जूठे जाहि भी जूठे जूठे मरहि अभागे ॥
कहु पंडित सूचा कवनु ठाउ ।
जहा बैसि हउ भोजनु खाउ ॥ १ ॥

जिहबा जूठी बोलत जूठा करन नेत्र सभ जूठे ।
इंद्री की जूठि उतरसि नाही ब्रहम अगनि के लूठे ॥ २ ॥

अगनि भी जूठी पानी जूठा जूठी बैसि पकाइआ ।
जूठी करछी परोसन लागा जूठे ही बैठि खाइआ ॥ ३ ॥

गोबरु जूठा चउका जूठा जूठी दीनी कारा ।
कहि कबीर तेई नर सूचे साची परी बिचारा ॥ ४ ॥

८

सुरह की जैसी तेरी चाल।
तेरी पूंछट ऊपर झमक बाल॥
इस घर मह है सु तू ढूंढि खाहि।
अउर किसही के तू मति ही जाहि॥ १॥

चाकी चाटहि चूनु खाहि।
चाकी का चीथरा कहां लै जाहि॥ २॥

छीके पर तेरी बहुतु डीठि।
मतु लकरी सोटा तेरी परै पीठि॥ ३॥

कहि कबीर भोग भले कीन।
मति कोऊ मारै ईंट ढेम॥ ४॥

रागु सारंग

१

कहा नर गरबसि थोरी बात ।
मन दस नाजु टका चारि गांठी ऐंडौ टेढौ जातु ॥
बहुतु प्रतापु गांउ सउ पाए दुइ लख टका बरात ।
दिवस चारि की करहु साहिबी जैसे बनहर पात ॥ १ ॥

ना कोऊ लै आइओ इहु धनु ना कोऊ लै जातु ।
रावन हूं ते अधिक छत्रपति खिन महि गए बिलात ॥ २ ॥

हरि के संत सदा थिरु जहुजो हरि हरि नामु जपात ।
जिन कउ क्रिपा करत है गोबिंदु ते सतसंगि मिलात ॥ ३ ॥

मात पिता बनिता सुत संपति अंति न चलत संगात ।
कहत कबीर राम भजु बउरे जनमु अकारथ जात ॥ ४ ॥

२

राजास्रम मिति नही जानी तेरी ।
तेरे संतन की हउ चेरी ॥
हसतो जाइ सु रोवतु आवै रोवतु जाइ सु हसै ।
बसतो होइ होइ सो ऊजरु ऊजरु होइ सु बसै ॥ १ ॥

जल ते थल करि थल ते कूआ कूप ते मेरु करावै ।
धरती ते आकास चढावै चढे अकास गिरावै ॥ २ ॥

भेखारी ते राजु करावै राजा ते भेखारी ।
खल मूरख ते पंडितु करिबो पंडित ते मुगधारी ॥ ३ ॥

नारी ते जो पुरखु करावै पुरखन ते जो नारी ।
कहु कबीर साधू को प्रीतमु तिसु मूरति बलिहारी ॥ ४ ॥

३

हरि बिनु कउनु सहाई मन का ।
मात पिता भाई सुत बनिता हितु लागो सभ फन का ॥
आगे कउ किछु तुलहा बांधहु किआ भरवासा धन का ।
कहा बिसासा इस भांडे का इतनकु लागै ठनका ॥ १ ॥
सगल धरम पुंन फल पावहु धूरि बांछहु सभ जन का ।
कहै कबीरु सुनहु रे संतहु इहु मनु उडन पंखेरू बन का ॥ २ ॥

रागु बिभास प्रभाती

१

मरन जीवन की संका नासी ।
आपन रंगि सहज परगासी ॥
प्रगटी जोति मिटिआ अंधिआरा ।
राम रतनु पाइआ करत बीचारा ॥ १ ॥

जह अनंदु दुखु दूरि पइआना ।
मनु मानकु लिव ततु लुकाना ॥ २ ॥

जो किछु होआ सु तेरा भाणा ।
जो इव बूझै सु सहजि समाणा ॥ ३ ॥

कहतु कबीरु किलबिख गए खीणा ।
मनु भइआ जगजीवन लीणा ॥ ४ ॥

रागु बिभास प्रभाती

१

मरन जीवन की संका नासी ।
आपन रंगि सहज परगासी ॥
प्रगटी जोति मिटिआ अंधिआरा ।
राम रतनु पाइआ करत बीचारा ॥ १ ॥

जह अनंदु दुखु दूरि पइआना ।
मनु मानकु लिव ततु लुकाना ॥ २ ॥

जो किछु होआ सु तेरा भाणा ।
जो इव बूझै सु सहजि समाणा ॥ ३ ॥

कहतु कबीरु किलबिख गए खीणा ।
मनु भइआ जगजीवन लीणा ॥ ४ ॥

२

अलहु एकु मसीति बसतु है अवरु मुलखु किसु केरा ।
हिंदू मूरति नाम निवासी दुह महि ततु न हेरा ॥
अलह राम जीवउ तेरे नाई ।
तू करि मिहरामति साई ॥ १ ॥

दखन देस हरी का बासा पछिमि अलह मुकामा ।
दिल महि खोजि दिलै दिलि खोजहु एही ठउर मुकामा ॥ २ ॥

ब्रहमन गिआस करहि चउबीसा काजी मह रमजाना ।
गिआरह मास पास कै राखे एकै माहि निधाना ॥ ३ ॥

कहा उडीसे मजनु कीआ किआ मसीति सिरु नांएं ।
दिल महि कपटु निवाज गुजारै किआ हज काबै जांएं ॥ ४ ॥

एते आउरत मरदा साजे ए सभ रूप तुमारे ।
कबीरु पूंगरा राम अलह का सभ गुरु पीर हमारे ॥ ५ ॥

कहतु कबीरु सुनहु नर नरवै परहु एक की सरना ।
केवल नामु जपहु रे प्रानी तब ही निहचै तरना ॥ ६ ॥

३

अवलि अलह नूरु उपाइआ कुदरति के सभ बंदे ।
एक नूर ते सभु जगु उपजिआ कउन भले को मंदे ॥
लोगा भरमि न भूलहु भाई ।
खालिकु खलक खलक महि खालकु पूरि रहिओ स्रब ठांई ॥ १ ॥

माटी एक अनेक भांति करि साजी साजनहारै ।
ना कछु पोच माटी के भांडे ना कछु पोच कुंभारै ॥ २ ॥

सभ महि सचा एको सोई तिस का कीआ सभु कछु होई ।
हुकमु पछानै सु एको जानै बंदा कहीऐ सोई ॥ ३ ॥

अलहु अलखु न जाई लखिआ गुरि गुड़ु दीना मीठा ।
कहि कबीर मेरी संका नासी सरब निरंजनु डीठा ॥ ४ ॥

४

बेद कतेब कहहु मत झूठे झूठा जो न बिचारै ।
जउ सभ महि एकु खुदाइ कहत हउ तउ किउ मुरगी मारै ॥
मुलां कहहु निआउ खुदाई ।
तेरे मन का भरमु न जाई ॥ १ ॥

पकरि जीउ आनिआ देह बिनासी माटी कउ बिसमिल कीआ ।
जोति सरूप अनाहत लागी कहु हलालु किउ कीआ ॥ २ ॥

किआ उजू पाकु कीआ मुहु धोइआ किआ मसीति सिरु लाइआ ।
जउ दिल महि कपटु निवाज गुजारहु किआ हज काबै जाइआ ॥ ३ ॥

तूं नापाकु पाकु नही सूझिआ तिसका मरमु न जानिआ ।
कहि कबीर भिसति ते चूका दोजक सिउ मनु मानिआ ॥ ४ ॥

५

सुंन संधिआ तेरी देव-देवा कर अधपति, आदि समाई ।
सिध समाधि अंतु नही पाइआ लागि रहे सरनाई ॥
लेहु आरती हो पुरख निरंजन सतिगुर पूजहु भाई ।
ठाढा ब्रहमा निगम बीचारै अलखु न लखिआ जाई ॥ १ ॥

ततु तेलु नामु कीआ बाती दीपकु देह उज्यारा ।
जोति लाइ जगदीस जगाइआ बूझै बूझनहारा ॥ २ ॥

पंचे सबद अनाहद बाजे संगे सारिंगपानी ।
कबीर दास तेरी आरती कीनी निरंकार निरबानी ॥ ३ ॥

सलोक

१

कबीर मेरी सिमरनी रसना ऊपरि रामु।
आदि जुगादी सकल भगत ताको सुखु बिस्रामु॥

२

कबीर मेरी जाति कउ सभु को हसनेहारु।
बलिहारी इस जाति कउ जिह जपिओ सिरजनहारु॥

३

कबीर डगमग किआ करहि कहा डुलावहि जीउ।
सरब सूख को नाइको राम नाम रसु पीउ॥

४

कबीर कंचन के कुंडल बने ऊपरि लाल जड़ाउ।
दीसहि दाधे कान जिउ जिन मनि नाही नाउ॥

५

कबीर ऐसा एकु आधु जो जीवत म्रितकु होइ।
निरभै होइ कै गुन रवै जत पेखउ तत सोइ॥

६

कबीर जा दिन हउ मूआ पाछै भइआ अनंदु।
मोहि मिलिओ प्रभु आपना संगी भजहि गोबिंदु॥

७

कबीर सभ ते हम बुरे हम तजि भलो सभु कोइ।
जिनि ऐसा करि बूझिआ मीतु हमारा सोइ॥

८

कबीर आई मुझहि पहि अनिक करे करि भेस ।
हम राखे गुर आपने उनि कीनो आदेसु ॥

९

कबीर सोई मारीऐ जिह मूऐ सुखु होइ ।
भलो भलो सभु को कहै बुरो न मानै कोइ ॥

१०

कबीर राती होवहि कारीआ कारे ऊभे जंत ।
लै फाहे उठि धावते सि जानि मारे भगवंत ॥

११

कबीर चंदन का बिरवा भला बेढ़िओ ढाक पलास ।
ओइ भी चंदनु होइ रहे बसे जु चंदन पासि ॥

१२

कबीर बांसु बडाई बूडिआ इउ मत डूबहु कोइ ।
चंदन कै निकटे बसै बांसु सुगंधु न होइ ॥

१३

कबीर दीनु गवाइआ दुनी सिउ दुनी न चाली साथि ।
पाइ कुहाड़ा मारिआ गाफलि अपुनै हाथ ॥

१४

कबीर हज जह हउ फिरिओ कउतक ठाओ ठाइ ।
इक राम सनेही बाहरा, ऊजरु मेरै भांइ ॥

८

कबीर आई मुझहि पहि अनिक करे करि भेस ।
हम राखे गुर आपने उनि कीनो आदेसु ॥

९

कबीर सोई मारीऐ जिह मूऐ सुखु होइ ।
भलो भलो सभु को कहै बुरो न मानै कोइ ॥

१०

कबीर राती होवहि कारीआ कारे ऊभे जंत ।
लै फाहे उठि धावते सि जानि मारे भगवंत ॥

११

कबीर चंदन का बिरवा भला बेढ़िओ ढाक पलास ।
ओइ भी चंदनु होइ रहे बसे जु चंदन पासि ॥

१२

कबीर बांसु बडाई बूडिआ इउ मत डूबहु कोइ ।
चंदन कै निकटे बसै बांसु सुगंधु न होइ ॥

१३

कबीर दीनु गवाइआ दुनी सिउ दुनी न चाली साथि ।
पाइ कुहाड़ा मारिआ गाफलि अपुनै हाथ ॥

१४

कबीर हज जह हउ फिरिओ कउतक ठाओ ठाइ ।
इक राम सनेही बाहरा, ऊजरु मेरै भांइ ॥

१५

कबीर संतन की झुंगीआ भली भठि कुसती गाउ ।
आगि लगउ तिह धउलहर जिह नाही हरि को नाउ ॥

१६

कबीर संत मूए किआ रोईऐ जो अपुने ग्रिहि जाइ ।
रोवहु साकत बापुरे जु हाटै हाट बिकाइ ॥

१७

कबीर साकतु ऐसा है जैसी लसन की खानि ।
कोने बैठे खाईऐ परगट होइ निदान ॥

१८

कबीर माइआ डोलनी पवनु झकोलनहारु ।
संतहु माखनु खाइआ छाछि पीऐ संसारु ॥

१९

कबीर माइआ डोलनी पवनु वहै हिवधार ।
जिनि बिलोइआ तिनि खाइआ अवर बिलोवनहार ॥

२०

कबीर माइआ चोरटी मुसि मुसि लावै हाटि ।
एकु कबीरा ना मुसै जिनि कीनी बारह बाट ॥

२१

कबीर सुखु न एंह जुग करहि जु बहुतै मीत ।
जो चितु राखहि एक सिउ ते सुखु पावहि नीत ॥

२२

कबीर जिसु मरनै ते जगु डरै मेरे मन आनंदु।
मरने ही ते पाईऔ पूरनु परमानंदु॥

२३

राम पदारथु पाइकै कबीरा गांठि न खोल्ह।
नही पटणु नही पारखू नही गाहकु नही मोलु॥

२४

कबीर तासिउ प्रीति करि जाको ठाकुरु रामु।
पंडित राजे भूपती आवहि कउने काम॥

२५

कबीर प्रीति इक सिउ कीए आन दुबिधा जाइ।
भावै लांबे केस करु भावै घररि मुडाइ॥

२६

कबीर जगु काजल की कोठरी अंध परे तिस माहि।
हउ बलिहारी तिन्ह कउ पैसि जु नीकसि जाहि॥

२७

कबीर इहु तनु जाइगा सकहु ते लेहु बहोरि।
नांगे पावहु ते गए जिन्ह के लाख करोरि॥

२८

कबीर इहु तनु जाइगा कवनै मारगि लाइ।
कै संगति करि साध की कै हरि के गुन गाइ॥

२६

कबीर मरता मरता जगु मूआ मरि भी न जानिआ कोइ।
अैसे मरने जो मरै बहुरि न मरना होइ॥

३०

कबीर मानस जनमु दुलंभु है होइ न बारैबार।
जिउ बन फल पाके भुइ गिरहि बहुरि न लागहि डार॥

३१

कबीरा तुही कबीर तू तोरो नाउ कबीरु।
राम रतनु तब पाइअै जउ पहिले तजहि सरीरु॥

३२

कबीर झंखु न झंखीअै तुमरो कहिओ न होइ।
करम करीम जु करि रहे मेटि न साकै कोइ॥

३३

कबीर कसउटी राम की झूठा टिकै न कोइ।
राम कसउटी सो सहै जो मरि जीवा होइ॥

३४

कबीर ऊजल पहिरहि कापरे पान सुपारी खाहि।
एक स हरि के नाम बिनु बाधे जमपुर जांहि॥

३५

कबीर बेड़ा जरजरा फूटे छेंक हजार।
हरूए हरूए तिरि गए डूबे जिन सिर भार॥

३६

कबीर हाड जरे जिउ लाकरी केस जरे जिउ घासु ।
इहु जग जरता देखि कै भइओ कबीरु उदासु ॥

३७

कबीर गरबु न कीजीऐ चाम लपेटे हाड ।
हैवर ऊपर छत्र तर ते फुनि धरनी गाड ॥

३८

कबीर गरबु न कीजीऐ ऊचा देखि अवासु ।
आजु कालि भुइ लेटणा ऊपरि जामै घासु ॥

३९

कबीर गरबु न कीजीऐ रंकु न हसीऐ कोइ ।
अजहु सु नाउ समुंद्र महि किआ जानउ किआ होइ ॥

४०

कबीर गरबु न कीजीऐ देही देखि सुरंग ।
आजु कालि तजि जाहुगे जिउ कांचुरी भुयंग ॥

४१

कबीर लूटना है त लूटि लै राम नाम है लूटि ।
फिरि पाछै पछुताहुगे प्रान जाहिगे छूटि ॥

४२

कबीर ऐसा कोई न जनमिओ अपने घर लावै आगि ।
पांचउ लरिका जारि कै रहै राम लिव लागि ॥

३६

कबीर हाड जरे जिउ लाकरी केस जरे जिउ घासु ।
इहु जग जरता देखि कै भइओ कबीरु उदासु ॥

३७

कबीर गरबु न कीजीऐ चाम लपेटे हाड ।
हैवर ऊपर छत्र तर ते फुनि धरनी गाड ॥

३८

कबीर गरबु न कीजीऐ ऊचा देखि अवासु ।
आजु कालि भुइ लेटणा ऊपरि जामै घासु ॥

३९

कबीर गरबु न कीजीऐ रंकु न हसीऐ कोइ ।
अजहु सु नाउ समुंद्र महि किआ जानउ किआ होइ ॥

४०

कबीर गरबु न कीजीऐ देही देखि सुरंग ।
आजु कालि तजि जाहुगे जिउ कांचुरी भुयंग ॥

४१

कबीर लूटना है त लूटि लै राम नाम है लूटि ।
फिरि पाछै पछुताहुगे प्रान जाहिगे छूटि ॥

४२

कबीर ऐसा कोई न जनमिओ अपने घर लावै आगि ।
पांचउ लरिका जारि कै रहै राम लिव लागि ॥

४३

को है लरिका बेचई लरिकी बेचै कोइ ।
सांझा करै कबीर सिउ हरि संगि बनजु करेइ ॥

४४

कबीर इह चेतावनी मत सहसा रहि जाइ ।
पाछै भोग जु भोगवै तिन कउ गुडु लै खाइ ॥

४५

कबीर मै जानिश्रो पड़िबो भलो पड़िबे सिउ भल जोगु ।
भगति न छाडउ राम की भावै निंदउ लोगु ॥

४६

कबीर लोगु कि निंदै बपुड़ा जिह मनि नाही गिश्रानु ।
राम कबीरा रवि रहे श्रवर तजे सभ काम ॥

४७

कबीर परदेसी कै घाघरै चहुदिसि लागी श्रागि ।
खिंथा जलि कुइला भई तागे श्रांच न लाग ॥

४८

कबीर खिंथा जलि कोइला भई खापरु फूटम फूट ।
जोगी बपुड़ा खेलिश्रो श्रासनि रही बिभूति ॥

४९

कबीर थोरै जलि माछुली झीवर मेलिश्रो जालु ।
इह टोघनै न छूटसहि फिरि करि समुंदु सम्हालि ॥

५०

कबीर समुंदु न छोडीऐ जउ अति खारो होइ ।
पोखरि पोखरि ढूढते भलो न कहिहै कोइ ॥

५१

कबीर निगुसाएं बहि गए थांघी नाही कोइ ।
दीन गरीबी आपुनी करते होइ सु होइ ॥

५२

कबीर बैसनउ की कूकरि भली साकत की बुरी माइ ।
ओह नि सुनै हरि नाम जसु उह पाप बिसाहन जाइ ॥

५३

कबीर हरना दूबला इहु हरीआरा तालु ।
लाख अहेरी एकु जीउ केता बंचउ कालु ॥

५४

कबीर गंगा तीर जु घरु करहि पीवहि निरमल नीरु ।
बिनु हरि भगति न मुकति होइ इउ कहि रमे कबीर ॥

५५

कबीर मनु निरमलु भइआ जैसा गंगा नीरु ।
पाछै लागो हरि फिरै कहत कबीर कबीर ॥

५६

कबीर हरदी पीअरी चूंनां ऊजल भाइ ।
राम सनेही तउ मिलै दोनउ बरन गवाइ ॥

५७

कबीर हरदी पीरतनु हरै चून चिहनु न रहाइ ।
बलिहारी इह प्रीत कउ जिह जाति बरनु कुलु जाइ ॥

५८

कबीर मुकति दुआरा संकुरा राई दसएं भाइ ।
मनु तउ मैगलु होइ रहिओ निकसो किउ कै जाइ ॥

५९

कबीर ऐसा सतिगुरु जे मिलै तुठा करे पसाउ ।
मुकति दुआरा मोकला सहजे आवउ जाउ ॥

६०

कबीर ना मुोहि छानि न छापरी ना मुोहि घरु नही गाउ ।
मत हरि पूछै कउनु है मेरे जाति न नाउ ॥

६१

कबीर मुहि मरने का चाउ है मरउ त हरि कै दुआर ।
मत हरि पूछै कउनु है परा हमारै बार ॥

६२

कबीर ना हम कीआ न करहिगे ना करि सकै सरीरु ।
किआ जानउ किछु हरि कीआ भइओ कबीरु कबीरु ॥

६३

कबीर सुपनै हू बरड़ाइ कै जिह मुख निकसै रामु ।
ताके पग की पानही मेरे तन को चामु ॥

६४

कबीर माटी के हम पूतरे मानसु राखिउ नाउ ।
चारि दिवस के पाहुने बड बड रूंधहि ठाउ ॥

६५

कबीर महिदी करि घालिआ आपु पीसाइ पीसाइ ।
तै सह बात न पूछीऐ कबहु न लाई पाइ ॥

६६

कबीर जिह दर आवत जातिअहु हटकै नाही कोइ ।
सो दरु कैसे छोडीऐ जो दरु ऐसा होइ ॥

६७

कबीर डूबा था पै उबरिओ गुन की लहरि झबकि ।
जब देखिओ बेड़ा जरजरा तब उतरि परिओ हउ फरकि ॥

६८

कबीर पापी भगति न भावई हरि पूजा न सुहाइ ।
माखी चंदनु परहरै जह बिगंध तह जाइ ॥

६९

कबीर बैदु मूआ रोगी मूआ मूआ सभु संसारु ।
एकु कबीरा ना मूआ जिह नाही रोवनहारु ॥

७०

कबीर नामु न धिआइओ मोटी लागी खोरि ।
काइआ हांडी काठ की ना ओहु चर्है बहोरि ॥

७१

कबीर ऐसी होइ परी मन को भावतु कीनु।
मरने ते किआ डरपना जब हाथि सिधउरा लीन ॥

७२

कबीर रस को गांडो चूसीऐ गुन कउ मरीऐ रोइ।
अवगुनीआरे मानसै भलो न कहिहै कोइ ॥

७३

कबीर गागरि जल भरी आजु कालि जैहै फूटि।
गुरु जु न चेतहि आपनो अध माझ लीजहिगे लूटि ॥

७४

कबीर कूकरु राम को मुतीआ मेरो नाउ।
गले हमारे जेवरी जह खिंचै तह जाउ ॥

७५

कबीर जपनी काठ की किआ दिखलावहि लोइ।
हिरदै रामु न चेतहो इह जपनी किआ होइ ॥

७६

कबीर बिरहु भुयंगमु मन बसै मंतु न मानै कोइ।
नाम बिओगी ना जीऐ जीऐ त बउरा होइ ॥

७७

कबीर पारस चंदनै तिन है एक सुगंध।
तिह मिलि तेऊ ऊतम भए लोह काठ निरगंध ॥

७८

कबीर जम का ठेंगा बुरा है ओहु नही सहिआ जाइ ।
एकु जु साधू मोहि मिलिओ तिन्हि लीआ अंचलि लाइ ॥

७९

कबीर बैदु कहै हउ ही भला दारू मेरै वसि ।
इह तउ बसतु गुपाल की जब भावै लेइ खसि ॥

८०

कबीर नउबति आपनी दिन दस लेहु बजाइ ।
नदी नाव संजोग जिउ बहुरि न मिलिहै आइ ॥

८१

कबीर सात समुंदहि मसु करउ कलम करउ बनराइ ।
बसुधा कागदु जउ करउ हरिजसु लिखनु न जाइ ॥

८२

कबीर जाति जुलाहा किआ करै हिरदै बसे गुपाल ।
कबीर रमईआ कंठ मिलु चूकहि सरब जंजाल ॥

८३

कबीर ऐसा को नही मंदरु देइ जराइ ।
पांचउ लरिके मारि कै रहै राम लिउ लाइ ॥

८४

कबीर ऐसा को नही इहु तन देवै फूकि ।
अंधा लोगु न जानई रहिओ कबीरा कूकि ॥

८५

कबीर सती पुकारै चिह चड़ी सुनुहो बीर मसान ।
लोगु सबाइआ चलि गइओ हम तुम कामु निदान ॥

८६

कबीर मनु पंखी भइओ उडि उडि दहदिस जाइ ।
जो जैसी संगति मिलै सो तैसो फलु खाइ ॥

८७

कबीर जाकउ खोजते पाइओ सोई ठउरु ।
सोई फिरि कै तू भइआ जाकउ कहता अउरु ॥

८८

कबीर मारी मरउ कुसंग की केले निकटि जु बेरि ।
उह झूलै उह चीरीऐ साकत संगु न हेरि ॥

८९

कबीर भार पराई सिर चरै चलिओ चाहै बाट ।
अपने भारहि ना डरै आगै अउघट घाट ॥

९०

कबीर बन की दाधी लाकरी ठाढी करै पुकार ।
मति बसि परउ लुहार के जारै दूजी बार ॥

९१

कबीर एक मरंते दुइ मूए दोइ मरंतह चारि ।
चारि मरंतह छह मूए चारि पुरख दुइ नारि ॥

९२

कबीर देखि देखि जगु ढूंढिआ कहूं न पाइआ ठौरु ।
जिनि हरि का नामु न चेतिओ कहा भुलाने अउर ॥

९३

कबीर संगति करीऐ साध की अंति करै निरबाहु ।
साकत संगु न कीजीऐ जा ते होइ बिनाहु ॥

९४

कबीर जग महि चेतिओ जानि कै जग महि रहिओ समाइ ।
जिन हरि का नामु न चेतिओ बादहि जनमें आइ ॥

९५

कबीर आसा करीऐ राम की अवरै आस निरास ।
नरकि परहि ते मानई जो हरि नाम उदास ॥

९६

कबीर सिख साखा बहुते कीए केसो कीओ न मीतु ।
चाले थे हरि मिलन कउ बीचै अटकिओ चीतु ॥

९७

कबीर कारनु बपुरा किआ करै जउ रामु न करै सहाइ ।
जिह जिह डाली पगु धरउ सोई मुरि मुरि जाइ ॥

९८

कबीर अवरह कउ उपदेसते मुख मै परिहै रेतु ।
रासि बिरानी राखते खाया घर का खेतु ॥

९९

कबीर साधू की संगति रहउ जउ की भूसी खाउ ।
होनहारु सो होइहै साकत संगि न जाउ ॥

१००

कबीर संगति साध की दिन दिन दूना हेतु ।
साकत कारी कांबरो धोए होइ न सेतु ॥

१०१

कबीर मनु मूंडिआ नही केस मुंडाए कांइ ।
जो किछु कीआ सु मन कीआ मूंडा मूंडु अजांइ ॥

१०२

कबीर रामु न छोडीऐ तनु धनु जाइ त जाउ ।
चरन कमल चितु बेधिआ रामहि नामि समाउ ॥

१०३

कबीर जो हम जंतु बजावते टूटि गईं सभ तार ।
जंतु विचारा किआ करै चले बजावन हार ॥

१०४

कबीर माइ मूंडउ तिह गुरू की जा ते भरमु न जाइ ।
आप डुबे चहु बेद महि चेले दीए बहाइ ॥

१०५

कबीर जेते पाप कीए राखे तलै दुराइ ।
परगट भए निदान सभ जब पूछे धरमराइ ॥

१०६

कबीर हरि का सिमरनु छाडि कै पालिओ बहुतु कुटंबु ।
धंधा करता रहि गइआ भाई रहिआ न बंधु ॥

१०७

कबीर हरि का सिमरनु छाडि कै राति जगावन जाइ ।
सरपनि होइ कै अउतरै जाए अपुने खाइ ॥

१०८

कबीर हरि का सिमरनु छाडि कै अहोई राखै नारि ।
गदही होइ कै अउतरै भारु सहै मन चारि ॥

१०९

कबीर चतुराई अति घनी हरि जपि हिरदै माहि ।
सूरी ऊपरि खेलना गिरै त ठाहर नाहि ॥

११०

कबीर सोई मुखु धंनि है जा मुख कहीऐ रामु ।
देही किस की बापुरी पवित्रु होइगो ग्रामु ॥

१११

कबीर सोई कुल भली जा कुल हरि को दासु ।
जिह कुल दासु न ऊपजै सो कुल ढाक पलासु ॥

११२

कबीर है गइ बाहन सघन घन लाख धजा फहराइ ।
इआ सुख ते भिख्या भली जउ हरि सिमरत दिन जाइ ॥

११३

कबीर सभु जगु हउ फिरिओ मांदलु कंध चढाइ ।
कोई काहू को नही सभ देखी ठोकि बजाइ ॥

११४

मारगि मोती बीथरे अंधा निकसिओ आइ ।
जोति बिना गजदीसकी जगतु उलंघे जाइ ॥

११५

बूडा बंसु कबीर का उपजिओ पूतु कमालु ।
हरि का सिमरनु छाडि कै घरि लै आया मालु ॥

११६

कबीर साधू कउ मिलने जाईऐ साथि न लीजै कोइ ।
पाछै पाउ न दीजीऐ आगै होइ सु होइ ॥

११७

कबीर जगु बाधिओ जिह जेवरी तिह मति बंधहु कबीर ।
जैहहि आटा लोन जिउ सोनि समानि सरीरु ॥

११८

कबीर हंसु उडिओ तनु गाडिओ सोझाही सैनाह ।
अजहू जीउ न छोडई रंकाई नैनाह ॥

११९

कबीर नैन निहारउ तुझ कउ स्रवन सुनउ तुअ नाउ ।
बैण उचरउ तुअ नाम जो चरन कमल रिद ठाउ ॥

१२०

कबीर सुरग नरक ते मै रहिओ सतिगुर के परसादि ।
चरन कमल की मउज महि रहउ अंति अरु आदि ॥

१२१

कबीर चरन कमल की मउज को कहि कैसे उनमान ।
कहिबे कउ सोभा नही देखा ही परवानु ॥

१२२

कबीर देखि कै किह कहउ कहे न को पतीआइ ।
हरि जैसा तैसा उही रहउ हरखि गुन गाइ ॥

१२३

कबीर चुगै चितारै भी चुगै चुगि चुगि चितारे ।
जैसे बचरहि कूंज मन माइआ ममता रे ॥

१२४

कबीर अंबर घनहरु छाइआ बरखि भरे सरताल ।
चात्रिक जिउ तरसत रहै तिन को कउनु हवालु ॥

१२५

कबीर चकई जउ निसि बीछुरै आइ मिलै परभाति ।
जो नर बिछुरे राम सिउ ना दिन मिले न राति ॥

१२६

कबीर रैनाइर बिछोरिआ रहु रे संख मझूरि ।
देवल देवल धाहड़ी देसहि उगवत सूर ॥

१२७

कबीर सूता किआ करहि जागु रोइ भै दुख।
जा का बासा गोर महि सो किउ सोवै सुख॥

१२८

कबीर सूता किआ करहि उठि कि न जपहि मुरारि।
इक दिन सोवनु होइ गो लांबे गोड पसारि॥

१२९

कबीर सूता किआ करहि बैठा रहु अरु जागु।
जाके संग ते बीछुरा ताही के संग लागु॥

१३०

कबीर संत की गैल न छोडीऐ मारगि लागा जाउ।
पेखत ही पुंनीत होइ भेटत जपीऐ नाउ॥

१३१

कबीर साकत संगु न कीजीऐ दूरहि जाईऐ भागि।
बासनु कारो परसीऐ तउ कछु लागै दागु॥

१३२

कबीर रामु न चेतिओ जरा पहूंचिओ आइ।
लागी मंदिर दुआर ते अब किआ काढिआ जाइ॥

१३३

कबीर कारनु सो भइओ जो कीनो करतार।
तिस बिनु दूसर को नही एकै सिरजनहारु॥

१३४

कबीर फल लागे फलनि पाकन लागे आंब ।
जाइ पहूचहि खसम कउ जउ बीचि न खाही कांब ॥

१३५

कबीर ठाकुरु पूजहि मोलि ले मन हठ तीरथ जाहि ।
देखा देखी स्वांगु धरि भूले भटका खाहि ॥

१३६

कबीर पाहन परमेसुरु कीआ पूजै सभु संसार ।
इस भरवासे जो रहे बूडे काली धार ॥

१३७

कबीर कागद की ओबरी मसु के करम कपाट ।
पाहन बोरी पिरथमी पंडित पाड़ी बाट ॥

१३८

कबीर कालि करंता अबहि करु अब करंता सु इताल ।
पाछै कछू न होइगा जउ सिर पर आवै कालु ॥

१३९

कबीर ऐसा जंतु इकु देखिआ जैसी धोई लाख ।
दीसै चंचलु बहु गुना मतिहीना नापाक ॥

१४०

कबीर मेरी बुधि कउ जमु न करै तिसकार ।
जिनि इहु जमूआ सिरजिआ सु जपिआ परविदगार ॥

१४१

कबीरु कसतूरी भइआ भवर भए सभ दास ।
जिउ जिउ भगति कबीर की तिउ तिउ राम निवास ॥

१४२

कबीर गहगचि परिओ कुटंब कै कांठै रहि गइओ राम ।
आइ परे धरमराइ के बीचहि धूमा धाम ॥

१४३

कबीर साकत ते सूकर भला राखै आछा गाउ ।
उहु साकतु बपुरा मरि गइआ कोइ न लैहै नाउ ॥

१४४

कबीर कउडी कउडी जोरि कै जोरे लाख करोरि ।
चलती बार न कछु मिलिओ लई लंगोटी तोरि ॥

१४५

कबीर बैसनो हूआ त किआ भइआ माला मेलीं चारि ।
बाहरि कंचनु बारहा भीतरि भरी भंगार ॥

१४६

कबीर रोड़ा होइ रहु बाट का तजि मन का अभिमानु ।
असा कोई दासु होइ ताहि मिलै भगवानु ॥

१४७

कबीर रोड़ा हूआ त किआ भइआ पंथी कउ दुखु देइ ।
असा तेरा दासु है जिउ धरनी महि खेह ॥

१४८

कबीर खेह हूई तउ किआ भइआ जौ उडि लागै अंग ।
हरिजनु ऐसा चाहीऐ जिउ पानी सरबंग ॥

१४६

कबीर पानी हूआ त किआ भइआ सीरा ताता होइ ।
हरिजनु ऐसा चाहीऐ जैसा हरि ही होइ ॥

१५०

ऊच भवन कनकामनी सिखरि धजा फहराइ ।
ता ते भली मधूकरी संत संग गुन गाइ ॥

१५१

कबीर पाटन ते ऊजरु भला राम भगति जिह ठाइ ।
राम सनेही बाहरा जम पुरु मेरे भांइ ॥

१५२

कबीर गंग जमुन के अंतरे सहज सुंन के घाट ।
तहा कबीरै मटु कीआ खोजत मुनि जन बाट ॥

१५३

कबीर जैसी उपजी पेड ते जउ तैसी निबहै ओड़ि ।
हीरा किस का बापुरा पुजहि न रतन करोड़ि ॥

१५४

कबीरा एकु अचंभउ देखिओ हीरा हाट बिकाइ ।
बनजनहारे बाहरा कउडी बदलै जाइ ॥

१५५

कबीरा जहा गिआनु तह धरमु है जहा झूठु तह पापु ।
जहा लोभु तह कालु है जहा खिमा तह आपि ॥

१५६

कबीर माइआ तजी त किआ भइआ जउ मानु तजिआ नही जाइ ।
मान मुनी मुनिवर गले मानु सभै कउ खाइ ॥

१५७

कबीर साचा सतिगुरु मै मिलिआ सबदु जु बाहिआ एकु ।
लागत ही भुइ मिलि गइआ परिआ कलेजे छेकु ॥

१५८

कबीर साचा सतिगुरु किआ करै जउ सिखा महि चूक ।
अंधे एक न लागई जिउ बांसु बजाईऐ फूक ॥

१५९

कबीर है गै बाहन सघन घन छत्रपती की नारि ।
तासु पटंतर ना पुजै हरिजन की पनिहारि ॥

१६०

कबीर त्रिप नारी किउ निंदीऐ किउ हरि चेरी कौ मानु ।
ओहु मांग सवारै बिखै कउ ओहु सिमरै हरि नामु ॥

१६१

कबीर थूनी पाई थिति भई सतिगुर बंधी धीर ।
कबीर हीरा बनजिआ मान सरोवर तीर ॥

१६२

कबीर हरि हीरा जन जउहरी ले कै मांडै हाट ।
जबही पाईअहि पारखू तब हीरन की साट ॥

१६३

कबीर काम परे हरि सिमरीऐ ऐसा सिमरहु नित ।
अमरापुर बासा करहु हरि गइआ बहोरै बित ॥

१६४

कबीर सेवा कउ दुइ भले एकु संतु इकु रामु ।
रामु जु दाता मुकति को संतु जपावै नामु ॥

१६५

कबीर जिह मारगि पंडित गए पाछै परी बहीर ।
इक अवघट घाटी राम की तिह चड़ि रहिओ कबीर ॥

१६६

कबीर दुनीआ के दोखे मूआ चालत कुल की कानि ।
तब कुलु किस का लाजसी जब ले धरहि मसानि ॥

१६७

कबीर डूबहिगो रे बापुरे बहु लोगन की कानि ।
पारोसी के जो हूआ तू अपने भी जानु ॥

१६८

कबीर भली मधूकरी नाना बिधि को नाजु ।
दावा काहू को नही बडा देसु बड राजु ॥

२२५

कबीर राम रतनु मुखु कोथरी पारख आगै खोलि ।
कोई आइ मिलैगो गाहकी लेगो महगे मोलि ॥

२२६

कबीर राम नामु जानिओ नही पालिओ कटकु कुटंबु ।
धँधे ही महि मरि गइओ बाहरि भई न बंब ॥

२२७

कबीर आखी केरे माटुके पलु पलु गई बिहाइ ।
मनु जंजालु न छोडई जम दीआ दमामां आइ ॥

२२८

कबीर तरवर रूपी रामु है फल रूपी बैरागु ।
छाइआ रूपी साधु है जिनि तजिआ बादु बिबादु ॥

२२९

कबीर ऐसा बीजु बोइ बारह मास फलंत ।
सीतल छाइआ गहिर फल पंखी केल करंत ॥

२३०

कबीर दाता तरवरु दइआ फलु उपकारी जीवंत ।
पंखी चले दिसावरी बिरखा सुफल फलंत ॥

२३१

कबीर साधू संगु परापाती लिखिआ होइ लिलाट ।
मुकति पदारथु पाईऐ ठाक न अवघट घाट ॥

२३२

कबीर एक घड़ी आधी घरी आधी हूं ते आध।
भगतन सेती गोसटे जो कीने सो लाभ॥

२३३

कबीर भांग माछुली सुरापानि जो जो प्रानी खांहि।
तीरथ बरत नेम कीए ते सभै रसातल जांहि॥

२३४

नीचे लोइन करि रहउ ले साजन घट माहि।
सभ रस खेलउ पीअ सउ किसी लखावउ नाहि॥

२३५

आठ जाम चउसठि घरी तुअ निरखत रहै जीउ।
नीचे लोइन किउ करउ सभ घट देखउ पीउ॥

२३६

सुनु सखी पीअ महि जीउ बसै जीअ महि बसै कि पीउ।
जीउ पीउ बूझहु नही घट महि जीउ कि पीउ॥

२३७

कबीर बामनु गुरू है जगत का भगतन का गुरु नाहि।
अरझि उरझि कै पचि मूआ चारउ बेदहु माहि॥

२३८

हरि है खांडु रेतु महि बिखरी हाथी चुनी न जाइ।
कहि कबीर गुरि भली बुझाई, कीटी होइ कै खाइ॥

२३९

कबीर जउ तुहि साध पिरंम की सीसु काटि करि गोइ ।
खेलत खेलत हाल करि जो किछु होइ त होइ ॥

२४०

कबीर जउ तुहि साध पिरंम की पाके सेती खेलु ।
काची सरसउ पेलि कै ना खलि भई न तेलु ॥

२४१

ढूंढत डोलहि अंध गति अरु चीन्हत नाही संत ।
कहि नामा किउ पाईऐ बिनु भगतहु भगवंतु ॥

२४२

हरि सो हीरा छाडि कै करहि आन की आस ।
ते नर दोजक जाहिगे सति भाखै रविदास ॥

२४३

कबीर जउ ग्रिहु करहि त धरमु करु नाहि त करु बैरागु ।
बैरागी बंधनु करै ता को बडो अभागु ॥

परिशिष्ट (क)

पदों के अर्थ

सिरी रागु

१

एक पुत्र होने पर ही घर में मंगल गीत गाए जाते हैं। माता समझती है कि पुत्र बड़ा हो रहा है किंतु इतना नहीं जानती कि दिन दिन उसकी आयु घटती जाती है। उसे 'मेरा'-'मेरा' करते और अधिक दुलार करते हुए देखकर यमराज हँसता है। इसी भाँति संसार पर तेरा भ्रम हो गया है। तुझे सत्य का बोध कैसे हो जब तू माया से मोहित हो रहा है? कबीर कहता है कि तू विषय-रस छोड़ दे—(नहीं तो) इसकी संगति में तेरा मरण निश्चय है। ऐ प्राणी, तू अनंत जीवन ईश्वर का जाप कर और इसी वाणी से तू भव-सागर के पार जा। जो भाव उसे (ईश्वर को) अच्छा लगता है उस भाव से ही उसकी परिसेवना उचित है। किंतु बीच ही में तू भ्रम में भूल जाता है। जब तेरे हृदय में नैसर्गिक चेतनता (सहज) उत्पन्न होगी तभी तेरे हृदय में ज्ञान जागृत होगा और गुरु की कृपा से अपने आप से तेरी लौ लगेगी—इस प्रकार की संगति से तेरा मरण नहीं होगा और तू विश्वात्मा के आदेश को पहिचान कर उससे मिल सकेगा।

२

हे पंडित, एक आश्चर्य सुन। अब कुछ भी कहने को शेष नहीं है। जिसने सुर, नर और गंधर्व समूहों को मोहित कर लिया है और तीनों लोकों को एक श्रृंखला से बाँध दिया है उस विश्व-स्वामी राम (ररंकार) के अनाहत की यंत्रिका बज रही है जिसकी दृष्टिमात्र से आत्मा उस नाद में लीन हो जाती है। यह आकाश ही एक भट्टी है जो शब्द की सिंगी और चुंगी से जागृत की जाती है। यह पृथ्वी ही एक स्वर्ण कलश है। उसमें (ब्रह्मानंद रस की) एक निर्मल धारा चू रही है जो शनैः शनैः रस में रस की मात्रा बढ़ाती जाती है। (इस रस के पान करने के लिए) एक अनुपम बात यह है कि पवन ही इस रस के लिए प्याले के रूप में सुसज्जित किया गया है। (मैं तुमसे यह पूछता हूँ कि) तीनों लोकों में इस रस का पीने वाला एक योगिराज कौन है? कबीर कहता है कि पुरुषोत्तम का ज्ञान इस प्रकार प्रकट हुआ है और कबीर उसी रंग में रंजित हो गया है। समस्त संसार तो भ्रम में भूला हुआ है। केवल मेरा मन इस राम रूपी रसायन* में मतवाला हो गया है।

रागु गउड़ी

१

अब राम रूपी जल ने मुझ जलते हुए को पा लिया है और उस जल ने मेरे जलते हुए शरीर को बुझा दिया है। (तुम) अपने मन को मारने के लिए वन जाते

*वह औषधि जिसके खाने से मनुष्य वृद्ध या बीमार नहीं होता।

हो किंतु उस जल के बिना भगवान की प्राप्ति नहीं हो सकती। जिस अग्नि से सुर नर जल चुके हैं—(उस अग्नि से) राम रूपी जल ने भक्तों को जलने से बचा लिया। इस भव-सागर में एक सुख-सागर भी है और पान करने से उसका जल कभी कम नहीं होता। कबीर कहता है कि तू सारंगपाणी (विश्वात्मा) का भजन कर क्योंकि राम रूपी जल से ही तेरी तृष्णा (प्यास) बुझ सकी है।

२

हे माधव, तेरे आनंद रूपी जल को पीते पीते आज तक मेरी प्यास नहीं बुझी। (क्योंकि) इस जल में (वासना की) आग अधिकाधिक उठी हुई है। (यहाँ बड़वाग्नि से तात्पर्य है।) तू यदि सागर है तो मैं मछली हूँ यद्यपि मैं जल में रहते हुए भी जल से रहित हूँ। तू पिंजड़ा है तो मैं तेरा शुक हूँ। (इस पिंजड़े में रहते हुए) यम रूपी बिलाव मेरा क्या कर सकता है? तू वृक्ष है, मैं पक्षी हूँ। किंतु फिर भी मैं मंदभाग्य हूँ कि तेरा दर्शन मुझे नहीं मिला। तू सतगुरु है, मैं तेरा नित्य शिष्य हूँ। कबीर कहता है कि कम से कम अंत समय में तो तू मुझ से मिल जा।

३

जब हमने एक (ईश्वर) को एक ही समझ कर जाना है (अर्थात् बहुत से देवी देवताओं की पूजा नहीं की) तब लोगों को क्यों दुःख होता है? हमने मर्यादा-हीन होकर अपनी लज्जा खो दी। (अतः) हमारी खोज में किसी को नहीं पड़ना चाहिए। हम नीच हैं और मन से भी हम निकृष्ट हैं। हमारा किसी से भी कुछ लेना-देना (साझ-पाति) नहीं है। जिसे मर्यादा और अमर्यादा का ध्यान नहीं है, उसे क्या लज्जा? (किंतु अपनी और मेरी वास्तविकता) तब समझोगे जब तुम्हारा पार्श्वभाग (सं०—पाजस्य) उघरेगा। कबीर कहता है कि हरि ही सच्चे स्वामी हैं। सब को छोड़ कर केवल राम का भजन करो।

४

नग्न घूमने से यदि योग मिलता तो वन के सभी मृग मुक्त हो जाते। चाम (शरीर) को नग्न रखने या बाँधने से क्या लाभ, जब तक कि तूने अपने आत्माराम को नहीं पहिचाना? सिर का मुंडन कराने से यदि सिद्धि पाई जा सकती तो मुक्ति की ओर भेड़ क्यों न चली गई? यदि बिंदु-साधन से ए भाई! तर सकते तो किसी अंडकोष (अ०—खुसियः) ने परम गति क्यों न पाई? कबीर कहता है कि हे भाई मनुष्य! सुनो, राम नाम के बिना किसी ने भी गति प्राप्त नहीं की।

५

तुम संध्या प्रातः स्नान करते हो जैसे पानी में मेंढक हो गए हो। जिनका राम के प्रति प्रेम नहीं है वे सब यमराज (धर्मराज) के यहाँ जायँगे। जो शरीर से प्रेम रखते हुए अनेक रूपों से उसे सँवारते हैं उनके हृदय में स्वप्न में भी दया नहीं है। अनेक पंडित और बुद्धिमान (अपने सुख और आनंद के लिए) धर्म ग्रंथों की रचनाओं

के चार चरण* कहते हैं किंतु (सच्चे) साधु इस कलि-सागर में ही सुख पाते हैं। कबीर कहता है कि और अधिक क्या किया जाय? सर्वस्व छोड़ कर एक ब्रह्मानंद (महा-रस) पीना ही उचित है।

६

जिसके हृदय में दूसरा ही (द्वैत या संसार का) भाव है, उसके लिए क्या जप, क्या तप, और क्या पूजा? हे भक्त, तू अपना मन माधव की शरण में ले जा क्योंकि चातुर्य से चतुर्भुज (ब्रह्म) की प्राप्ति नहीं हो सकती। लोक और लोकाचार का परित्याग कर। काम, क्रोध और अहंकार को छोड़। तू कर्म करते हुए अहंकार में बँध गया है और पत्थर में मिल कर उसी की सेवा कर रहा है। कबीर कहता है कि यदि तू (सच्ची) भक्ति कर पाया तो भोले भाव से ही रघुराई (ब्रह्म) तुझे मिल सकेंगे।

७

गर्भावस्था में न तो कुल का चिह्न है और न जाति का क्योंकि एक ब्रह्म-बिंदु से ही सब की उत्पत्ति होती है। रे पंडित, कह, तू ब्राह्मण कब से हुआ? 'ब्राह्मण' कह कह कर तू अपना जन्म मत खो। जो तू ब्राह्मण है और ब्राह्मणी से उत्पन्न हुआ है तो तू इस संसार में किसी दूसरे रास्ते से क्यों नहीं आया? तुम किस प्रकार ब्राह्मण हो और हम किस प्रकार शूद्र हैं? हम किस प्रकार (घृणित) रक्त हैं और तुम किस प्रकार (पवित्र) दूध हो? कबीर कहता है कि (वस्तुतः) जो ब्रह्म का विचार कर सकता है वही हमारे दृष्टिकोण से ब्राह्मण है।

८

तू (माया के) अंधकार में कभी सुख से नहीं सो सकता। उसमें राजा और रंक दोनों मिलकर रोवेंगे। यदि अपनी जिह्वा से राम न कहोगे तो उत्पत्ति और विनाश में रोते ही रहोगे। प्राण छूटने पर वृक्ष की छाया की भाँति माया किसकी होकर रही है? जिस प्रकार शरीर (जंती या यंत्री) में प्राण आने का रहस्य कोई नहीं समझ सका उसी प्रकार शरीर से प्राण जाने (मृत्यु) का रहस्य भी कौन जान सका है? कबीर कहता है कि रे हंस (आत्मा) तू क्षणभंगुर शरीर रूपी सरोवर से रामामृत का पान कर।

९

ज्योति की जाति और जाति की ज्योति होती है (अर्थात् ईश्वरीय आलोक का एक रूप होता है और उस रूप के अस्तित्व से ही ईश्वरीय ज्योति का आभास मिलता है।) † उसी में मोती के सदृश दीखने वाले ब्रह्माण्डों के कच्चे फल लगते

---

* चारि चरन = 'चार अक्षर' की भाँति मुहावरा।

† सूफ़ीमत के अनुसार अहद (परमात्मा) के दो रूप हैं प्रथम है ज़ात, दूसरा सिफ़त। ज़ात तो 'जाननेवाले' के अर्थ में और सिफ़त 'जाना हुआ' के अर्थ में व्यवहृत होता है। अतएव जाननेवाला प्रथम तो अल्लाह है और [illegible]

हैं—अर्थात् निराकार ईश्वर की जाति (सगुण रूप) से ही सृष्टि का निर्माण होता है। इस विचार के अतिरिक्त और कौन सा स्थान (घरु) है जो निर्भय कहा जा सकता है ? केवल उसी विचार से भय भाग जाता है और विचारक अभय होकर रहता है। संसार के तीर्थों के तट पर मन का विश्वास नहीं होता क्योंकि उनके आचार-विचारों में मन उलझ कर रह जाता है। (यदि तुम सच्चे विचारक हो तो तुम्हारे लिए) पाप और पुण्य दोनों ही समान हैं। तुम्हारे अपने घर में तो पारस पत्थर है, तुम दूसरों (माया) के गुण छोड़ दो। कबीर कहता है कि जब मैं निर्गुण ब्रह्म का नाम लेता हूँ तो क्रोध करने की आवश्यकता नहीं है। इससे परिचय पाकर तुम इसी में लीन होकर रहो।

१०

जो व्यक्ति (ब्रह्म को) परिमिति (सीमा) और परिमाण (आकार) में जानता है, वह केवल बातों में ही बैकुंठ की प्रशंसा करता है। वह वास्तव में नहीं जानता कि बैकुंठ कहाँ है। सब लोग "जानते हैं, जानते हैं, वहीं ब्रह्म के पास है" कहते रहते हैं। (वह व्यक्ति) सच्चे कथन और उपदेश पर कभी विश्वास नहीं करेगा क्योंकि वह तो तभी कथन को सत्य मानेगा जब उसके 'अहं' का विनाश होगा। जब तक मन में बैकुंठ की आशा है तब तक प्रभु के चरणों में निवास नहीं हो सकता। कबीर कहता है कि यह मैं किससे कहूँ कि बैकुंठ तो साधु-संगति में ही है।

११

उत्पन्न होता है, विकसित होता है और विकसित होकर उसी ब्रह्म में लीन हो जाता है, इस प्रकार आँखों देखते यह संसार समाप्त होता है। तुम लज्जा से मर नहीं जाते जब इस घर को तुम अपना कहते हो ? अंतिम समय में तो तेरा कुछ भी नहीं रहता ! अनेक यत्नों से तूने अपने शरीर का पोषण किया और मरते समय उसे अग्नि के साथ जला दिया ! जो शरीर तू सुगंधित द्रव पदार्थ से मल-मल कर सुगंधित करता है वही शरीर लकड़ी के साथ जलता है ! कबीर कहता है कि ऐ विचार करने वाले, दुनिया के देखते-देखते सारा रूप नष्ट हो जायगा।

१२

दूसरे के मरने का क्या शोक किया जाय ? शोक तो तभी करना चाहिए जब स्वयं

ज़ात और सिफ़त की शक्तियाँ ही अनन्त का निर्माण करती हैं। इन शक्तियों के नाम हैं नज़ूल और उरूज। नज़ूल का तात्पर्य है लय होने से और उरूज का तात्पर्य है उत्पन्न अथवा विकसित होने से। नज़ूल तो ज़ात से उत्पन्न होकर सिफ़त में अंत पाती है और उरूज सिफ़त से उत्पन्न होकर ज़ात में अंत पाती है। ज़ात निषेधात्मक है और सिफ़त गुणात्मक। ज़ात सिफ़त को उत्पन्न कर फिर अपने में लीन कर लेता है। मनुष्य की परिमित बुद्धि ज़ात को सिफ़त से भिन्न और सिफ़त को ज़ात से स्वतंत्र मानती है।

कबीर का रहस्यवाद, परिशिष्ट, पृष्ठ ६२

हम जीवित रहें ! किंतु मैं नहीं मरूँगा यह संसार भले ही मरे क्योंकि मुझे अब जिलाने वाला मिल गया है। इस शरीर से (वासना की) सुगंधि महक रही है—उसी (क्षणिक) सुख से तू परमानंद (ब्रह्मानंद) भूल गया है। एक कूप है और उसकी पाँच पानी भरने वालियाँ हैं। रस्सी के टूट जाने पर भी वे मूर्ख पानी भरती जाती हैं। (अर्थात् यह शरीर कूप की तरह है और शरीर की पंचेन्द्रियाँ उससे रस लेती हैं। इन इन्द्रियों के साधनों के नष्ट हो जाने पर भी ये रस लेने के लिए प्रयत्नशील रहती हैं।) कबीर कहता है कि यदि एक बुद्धि से विचार किया जाय तो न वह कुँआ है और न पनिहारियाँ हैं। (यह शरीर ही मिथ्या है।)

१३

अचर, चर, कीट और पतंग के अनेक जन्मों में हमने बहुत रस-रंग किए। हे राम, जब से हमने गर्भ में निवास किया, तब से हमने इन योनियों के अनेक घर बसाए हैं। (इस जन्म में) कभी हम योगी हैं, कभी यती, कभी तपस्वी और कभी ब्रह्मचारी। कभी छत्रपति राजा और कभी भिखारी हैं। किंतु इतना निश्चय है कि शाक्त मर जाते हैं और संत जीवित रहते हैं क्योंकि वे जिह्वा से रामामृत पीते हैं। कबीर कहता है कि हे प्रभु, आप कृपा कीजिए। जो कुछ भी मुझ में अभाव हो उसे कृपया पूरा कर दीजिए।

१४

कबीर ने ऐसा आश्चर्य देखा है कि यह संसार दही (ब्रह्म) के धोखे में पानी (माया) का मंथन कर रहा है। गधा (कपटी गुरु या कपटी मन) हरी अंगूरी बेल (ब्रह्म-ज्ञान) चर रहा है और वह (अपने अहंकार में) हँसता और रेंकता (हीस-हींग करता) रहता है और मरता है। भैंस (माया) मुख रहित बछड़ा (अज्ञान) उत्पन्न करती है जो पृथ्वी-तल पर प्रसन्न होकर (जीवों का) भक्षण करता है। कबीर कहता है कि इस खेल का सारा रहस्य मुझ पर प्रकट हो गया। भेड़ (वासना) बकरी के बच्चे लेले (धार्मिक पुस्तकों) का स्तन-पान करती है। कबीर कहता है कि राम में रमण करते हुए (शुद्ध) मति मुझ में प्रकट हो गई मैंने यह सरल युक्ति (सोझी गुरि) प्राप्त की है।

१५

जिस प्रकार जल छोड़कर मछली बाहर अनेक कष्ट पाती है उसी प्रकार पूर्व जन्म में तप से रहित होकर इस जन्म में मेरी बहुत बुरी दशा हुई। हे राम, अब कहो कि मेरी क्या गति होगी ? क्या बनारस छोड़कर मेरी मति भ्रष्ट हो गई ? मैंने अपना सारा जन्म तो बनारस में व्यतीत किया और मरते समय मैं मगहर में उठ कर चला आया। काशी में मैंने बहुत बर्षों तक तप किया। लेकिन मरते समय मैं मगहर का निवासी हो गया। ऐ कबीर, काशी और मगहर को तो तूने समान समझा है किंतु अपनी ओछी भक्ति से तू कैसे (भव-सागर) के पार उतरेगा ? तू इस महामंत्र (गुर) को गर्ज कर कह दे (जिसे बनारस के स्वामी शिव और सभी लोग जानते हैं कि) कबीर मरने पर भी श्री राम में रमण करता है।

१६

जिस शरीर में सुगंधित द्रव-पदार्थ और चंदन मल-मल कर लगाया जाता है वही लकड़ी के साथ जलता है। इस शरीर और धन की क्या बड़ाई है कि पृथ्वी पर गिर पड़ने (मर जाने) के बाद फिर उठाया नहीं जा सकता। जो लोग रात को सोते हैं और दिन में काम करते हैं और एक क्षण भी ईश्वर का नाम नहीं लेते, उनके हाथ में डोर है (शासन करने वाले हैं) और वे मुख में तांबूलादि खाए हुए हैं। किंतु मरते समय वही लोग (अपनी अरथी पर) चोर की भाँति बाँधे गए हैं। जो लोग युक्ति से धीरे-धीरे हरि का गुण गान करते हैं वे राम ही राम में रमण करते हुए सुख पाते हैं। हरि ने ही कृपा करके मुझ में नाम की दृढ़ता दी और उन्हीं ने अपनी सुगंधि मुझ में बसा दी है। कबीर कहता है कि रे अंधे, तू चेत। केवल राम ही सत्य है और यह समस्त प्रपंच झूठा है।

१७

जब मैंने गोविंद को जान लिया है तो जो मेरे लिए यम थे वही उलट कर मेरे लिए राम हो गए। इस स्थिति में दुःख के विनाश होने पर मैंने विश्राम किया। मेरे शत्रु ही उलट कर मेरे लिए मित्र हो गए हैं और शाक्त ही उलट कर हितचिंतक सज्जन बन गए हैं। अब सब लोगों ने मुझे हितकारक मान लिया है। जब मैंने गोविंद को जान लिया तो शांति हुई। जो शरीर में करोड़ों बाधाएं थीं वे सब उलट कर सुख-पूर्ण सहज समाधि में परिवर्तित हो गईं। जो अपने आप को स्वयं पहिचान लेता है उसे न तो रोग और न त्रिविध ताप व्याप सकते हैं। मेरा मन भी उलट कर शाश्वत और नित्य हो गया। मैंने इसे तब समझा जब मैं जीवन-मृतक हो गया। कबीर कहता है, इस प्रकार सहज सुख में समा जाओ और न तो स्वयं डरो, न दूसरे को डराओ।

१८

शरीर के मरने पर जीव किस स्थान को जाता है और वह किस प्रकार अतीत अनाहत शब्द में रत हो जाता है? जो राम को जानते हैं वही इस तत्व को पहिचानते हैं जिस प्रकार गूंगा शक्कर खाकर मन में प्रसन्न होता है। मेरा ईश्वर (बनवारी) ऐसा ज्ञान कहता है—रे मन, तू सुषुम्णा नाड़ी में वायु को दृढ़ कर ऐसा गुरु कर कि फिर कोई गुरु न करना पड़े। तू ऐसे पद में रमण कर कि फिर अन्य पद में रमण न करना पड़े। तू ऐसा ध्यान धर कि फिर दूसरा ध्यान न धरना पड़े। तू इस प्रकार मर कि फिर कभी न मरना पड़े। गंगा (पिंगला नाड़ी) को उलट कर तू यमुना (इडा नाड़ी) में मिला दे और बिना संगम-जल के तू मन ही मन में (अपनी अनुभूति में) स्नान कर। यह व्यवहार (संसार का प्रपंच) तो नर्क (लोचारक) के समान है। इस प्रकार तत्व का विचार कर लेने के अनंतर और क्या विचारने की आवश्यकता? जल, तेज, वायु, पृथ्वी और आकाश जैसे एक दूसरे के समीप रहते हैं, इसी प्रकार

तू हरि के समीप रह। कबीर कहता है कि निरंजन ब्रह्म का ध्यान कर। तू ऐसे घर को जा, जहां से लौट कर फिर आना न हो।

१९

राम का मूल्य सोने से नहीं आँका जा सकता इसलिए मैंने अपना मन देकर राम को मोल ले लिया है। अब राम ने भी मुझे अपना जान लिया है और मेरा मन भी सहज स्वभाव से संतुष्ट हो गया है। ब्रह्मा ने जिसका वर्णन करते करते अंत नहीं पाया वही राम भक्ति से घर-बैठे आ गया! कबीर कहता है कि तू चंचल मति छोड़ दे क्योंकि निश्चय रूप से केवल राम-भक्त ही भाग्यवान हैं।

२०

जिस मरने से सारा संसार संत्रस्त है वही मरना गुरु के शब्द से उज्ज्वल हो उठा है। अब मेरा मन समझ गया है कि किस प्रकार मरना चाहिए। जिन्होंने राम को नहीं जाना है वे तो यों ही मर मर जाते हैं। सब लोग 'मरना मरना' कहते हैं लेकिन जो सहज रूप से मरते हैं वे अमर हो जाते हैं। कबीर कहता है कि मेरे मन में आनंद उत्पन्न हो गया। सारा भ्रम नष्ट हो गया और अब केवल परमानंद ही व्याप्त हो रहा है।

२१

राम-भक्ति पैने तीर की तरह है। ये तीर जिसे लगते हैं वही उसकी पीड़ा जान सकता है। अन्यथा (जिसे ये तीर नहीं लगे हैं) वह अपने सारे शरीर को खोज ले। न उसे पीड़ा का कोई स्थान मिलेगा न पीड़ा का मूल ही। सभी नारियाँ एक-रूप देख पड़ती हैं। उन्हें देख कर यह नहीं जाना जा सकता कि कौन (प्रियतम की) प्रेयसी है। कबीर कहता है कि जो सौभाग्यशालिनी है उसे ही औरों को छोड़ कर, सुहाग मिलता है। (वही प्रियतम को अच्छी लगती है।)

२२

हे भाई, जिसे हरि-सा स्वामी मिल गया है, उसे अनंत मुक्ति पुकारने जाती है। हे राम, कहो जब मुझे तुम्हारा भरोसा है तब मैं किससे जाकर प्रार्थना करूँ? जिसके ऊपर तीन लोक का भार रक्खा हुआ है, वह (मेरा) प्रतिपाल क्यों न करेगा? कबीर बुद्धि से विचार कर एक बात कहता है कि यदि माता ही अपने पुत्र को विष दे दे तो इसमें (पुत्र का) क्या वश? (अर्थात् यदि मेरा स्वामी ही मेरी ओर से अन्यमनस्क हो जाय तो मेरा क्या चारा?)

२३

बिना सत्य के नारि कैसे सती हो सकती है? हे पंडित, अपने हृदय में विचार करके देखो। बिना प्रीति के स्नेह कैसे स्थिर रह सकता है? जब तक स्वार्थ है तब तक स्नेह नहीं है। जो अपने स्वामी (साह) से स्वार्थ वश (जीव अपने) स्नेह करता है उस रमण करने वाले (रमये) साधक को स्वामी स्वप्न में भी नहीं मिलता। जो अपने स्वामी को तन, मन, धन और गृह सौंप दे, कबीर उसीको 'सुहागिनि' कहता है।

२४

विषय-वासना ही इस सारे संसार में व्याप्त है और यही वासना सारे परिवार (मनुष्य जाति) को ले डूबी है। रे नर, तूने अपनी बड़ी (चौड़ी) नाव (शरीर) को क्यों डुबा दिया है। तूने अपनी (प्रीति) हरि से हटा कर विषय-वासना के साथ जो जोड़ रक्खी है। इस विषय-वासना की आग लगने से देवता और मनुष्य सब जल गए। आश्चर्य है, जल के निकट होते हुए भी यह (नर) पशु उस जल का भाग भी नहीं पीता। कबीर कहता है कि धीरे धीरे ज्ञान का उदय होने से वह जल भी दृष्टि-गत हुआ। और वही जल निर्मल कहा जा सकता है। (यहाँ जल का तात्पर्य ब्रह्म-ज्ञान से है।)

२५

जिस कुल में पुत्र ने ज्ञान का विचार नहीं किया उसकी माता विधवा क्यों न हो गई? जिस मनुष्य ने राम-भक्ति की साधना नहीं की वह अपराधी जन्म लेते ही क्यों न मर गया? वह गर्भ-रूप में ही क्यों न गिर गया? बचा ही क्यों? वह भड़-भूँजें की तरह इस संसार में जीता है। कबीर कहता है यों देखने में वह सुन्दर और रूपवान क्यों न लगे किंतु (हरि के) नाम बिना वह टेड़ा-मेढ़ा और कुरूप ही है।

२६

जो भक्त।स्वामी (ईश्वर) का नाम लेता है मैं सौ बार उसकी बलिहारी जाता हूँ। वही निर्मल है जो निर्मल ईश्वर के गुण गाता है। वही भाई मेरे हृदय को अच्छा लगता है। जिसके शरीर में राम भरपूर निवास करते हैं, हम उनके चरण-कमलों की धूल हैं। मैं जाति का जुलाहा किंतु धीर मति हूँ। इसलिए कबीर सहज भाव से (हरि के) गुण में लीन है।

२७

मेरी आकाश रूपी रसमयी भट्ठी से (ब्रह्मानंद रूपी) रस चू रहा है जिसके संचित करने से मेरा शरीर परिपुष्ट हो गया है। उसे सहज मतवाला कहना चाहिये, जिसने राम रस पीते हुए ज्ञान का विचार किया है। और जब सहज रूपी कला-लिनि (मदिरा पिलाने वाली) मुझसे मिल गई, तो मेरा प्रत्येक दिन आनंद से मत-वाला होकर व्यतीत होता है। निरंजन को पहिचान कर जब मैं उसे हृदय में ले आया तो कबीर कहता है कि मुझे (सच्चा) अनुभव प्राप्त हुआ।

२८

(यदि तुम यह प्रश्न करते हो कि) मन का स्वभाव तो मन ही में व्याप्त रहने वाला है और मन को मार कर किसने सिद्धि की स्थापना की है? ऐसा कौन मुनि है जो मन को मार सका है? और यदि वह अपने मन का विनाश कर डाले तो यह बतलाओ कि वह किसे तार सकता है? (तो मैं यह उत्तर दूँगा कि) सभी लोग मन से प्रेरित होकर ही तो बोलते हैं। और बिना मन के मारे हुए भक्ति हो नहीं

सकती। कबीर कहता है कि जो (मन मारने का) रहस्य जानता है वह मधुसूदन (ब्रह्म) और (उससे निर्मित) त्रिभुवन की ओर अपना मन दे सकता है।

२६

यह जो आकाश और तारे दीख रहे हैं ये किस चित्रकार के द्वारा चित्रित किये गए हैं? अरे पंडित, यह तो कह कि आकाश किस चीज़ पर स्थिर है? यह तो भाग्यशाली जिज्ञासु ही जान सकता है। सूर्य और चंद्र प्रकाश करते हैं। इस प्रकार सभी वस्तुओं में ब्रह्म की परिव्याप्ति है। कबीर कहता है कि (ब्रह्म की यह व्यापकता) वही जान सकता है जिसके मुख में राम है और हृदय में भी राम है।

३०

हे भाई, स्मृति तो वेद की पुत्री ही है। लेकिन यही (हमें और तुम्हें) बाँधने के लिए साँकल और रस्सी लेकर आई है। इस प्रकार अपना नगर (शरीर और मन) तूने स्वयं ही बाँध रखा है। और काल ने तुझे मोह के फंदे में फँसा कर तेरी ओर शर-संधान किया है। यह स्मृति की ज़ंजीर काटने से नहीं कटती और टूट तो सकती ही नहीं। उसने सर्पिणी बन कर सारे संसार को खा डाला है। इसने हमारे देखते सारे जग को लूट लिया है। कबीर कहता है मैं तो राम कह कर इस स्मृति की ज़ंजीर से छूट गया।

३१

अपने मन को बाँध कर (मुहार देकर) उसे लगाम पहिनाओ और उस पर समष्टि (सब) की ज़ीन कस कर आकाश में दौड़ाओ। (अर्थात् मन को संयम से ब्रह्म-ज्ञान की ओर दौड़ाओ) उस पर शुद्ध विचार की सवारी करो और 'सहज' की रकाब पर पैर रख लो। रे मन, चल तुझे बैकुंठ ले जाकर तेरा उद्धार कर दूँ। और खींच (हिच) कर तुझे प्रेम का मंगलमय चाबुक मार दूँ। कबीर कहता है कि वे सवार बहुत ही अच्छे हैं जो वेद और क़ुरान से अलग ही रहते हैं।

३२

जिस मुख से पांचों इन्द्रियों के विषय सेवन किए, देखते-देखते उस मुख में जलती हुई लकड़ी लगा दी। हे राजा राम, तुम मेरा एक दुःख तो काट दो। (और वह यह कि) मैं (त्रितापों की) अग्नि में जलता हूँ और (बार बार) गर्भ में निवास करता हूँ। यह शरीर अनेक प्रकार से नष्ट हो गया है। कोई इसे जलाता है और कोई मिट्टी में गाड़ता है। कबीर कहता है कि हे हरि, मुझे तुम अपने चरणों के दर्शन दो। बाद में चाहे तुम यम ही को मेरे पास क्यों न पहुँचा दो।

३३

(ब्रह्म तो) स्वयं ही अग्नि है और स्वयं ही पवन। यदि वही जलावे तो फिर कौन रक्षा कर सकता है? राम का जाप करते हुए मेरा शरीर जल ही क्यों न जाय! किंतु राम नाम मेरे हृदय में समा गया है। (मैं पूछता हूँ) क्या कोई जलता है और क्या किसी की हानि होती है? यह तो सारंगपाणि (ब्रह्म) नट की भाँति अपनी गेंद

खेलता है। कबीर कहता है कि दो अक्षर (रा और म) ही कह लो। यदि स्वामी कहीं होगा तो वह रक्षा कर ही लेगा।

३४

न मैंने योग में चित्त लगाया, न ध्यान में। बिना वैराग्य के माया नहीं छूट सकी। जब तक राम नाम का सहारा मुझे नहीं है तब तक मेरा जीवन कैसे रह सकता है? कबीर कहता है कि मैंने सारा आकाश खोज लिया किंतु मैंने राम के समान(कृपालु) किसी को नहीं देखा।

३५

जिस सिर पर शृंगार के साथ पाग बाँधी जाती है उसी सिर को खाने के लिए कौवा अपनी चोंच सम्हालता है। इस शरीर और इस धन का क्या गर्व करोगे? फिर राम नाम में दृढ़ क्यों नहीं हो जाते? कबीर कहता है कि हे मेरे मन, सुन, मरने के बाद तेरा यही हाल होगा!

३६

जिस सुख के माँगने पर आगे दुःख आता है, वह सुख माँगते हुए हमें अच्छा नहीं लगता। अभी तक मेरी आत्मा को विषय-वासना से सुख की आशा है। फिर राजा राम में निवास कैसे हो सकेगा? जिस सुख से ब्रह्म और शिव भी डरते हैं उसी सुख को हमने सच्चा सुख समझ लिया है। सनकादिक, नारद, मुनि और शेष ने भी इस शरीर में मन की वास्तविकता नहीं पहिचानी। हे भाई, इस मन को कोई खोजे कि यह शरीर छूटने पर कहाँ समा जाता है। श्री गुरु के प्रसाद से ही जयदेव और नामदेव-इन्होंने भक्ति का प्रेम समझा है। इस मन का न तो कहीं आना होता है न जाना। इसके संबंध में जिसका भ्रम दूर हो जाता है, उसी ने सत्य पहिचाना है। इस मन का न कोई रूप है, न इसकी कोई रेखा है। यह (ब्रह्म की आज्ञा से ही) उत्पन्न होता है और उसी आज्ञा को समझ कर उसी में लीन हो जाता है। इस मन का रहस्य कोई बिरला ही जानता है। इसी मन में सुखदेव जी लीन हुए। समस्त शरीरों में केवल एक ही जीवात्मा है और इसी जीवात्मा में कबीर रमण कर रहा है।

३७

एक ही नाम जो रात्रि दिवस जाग रहा है, उसी से प्रेम कर कितने ही (साधक) सिद्ध हो गए! साधक, सिद्ध और सभी मुनि अपनी-सी कर हार गए किंतु एक नाम का कल्पतरु ही उन्हें तारने में समर्थ हो सका। जो हरि करता है वही होता है, दूसरा नहीं। कबीर कहता है कि उसने तो राम का नाम पहिचान लिया है।

३८

हे जीव, तू निर्लज्ज है, तुझे (थोड़ी भी) लज्जा नहीं है। तू हरि को छोड़ कर क्यों किसी के पास जाता है? जिसका स्वामी ऊँचा (सर्व शक्तिमान) है, वह दूसरे के घर जाते हुए शोभा नहीं देता। जो तू अपने स्वामी (की अनुभूति से) भरपूर

रहेगा तो वह तेरे ही साथ रहेगा, तुझसे दूर नहीं। जिसके चरणों की शरण में स्वयं कमला (लक्ष्मी) है उसके भक्त के घर बोलो, क्या नहीं है? सब कोई (समस्त ब्रह्मांड) जिसकी बात कहते रहते हैं वही तो समर्थ है और दान करने वाला स्वामी हैं। कबीर कहता है, संसार में पूर्ण वही है जिसके हृदय में (हरि के अतिरिक्त) और कोई दूसरा (स्वामी) नहीं है।

३९

किसका पुत्र, किसका पिता, किसका कौन है? कौन मरता है, कौन दुःख देता है? यह हरि ही एक ऐंद्रजालिक है, और उसी ने संसार में यह माया फैला रक्खी है। हाय मैया, मैं उस हरि के वियोग में कैसे जी सकती हूँ। (इसे आत्मा का कथन मानना चाहिए।) किसका कौन पुरुष है और किसकी कौन स्त्री है? इस तत्व को शरीर रहते विचार लो। कबीर कहता है कि मेरा मन तो इसी ठग से माना है—(यही ठग मुझे पसंद आया है) जब मैं इस ठग को पहिचान लेता हूँ तो उसकी सारी ठग-विद्या (माया) मेरी आँखों से दूर हट जाती है।

४०

अब मुझे राजा राम की सहायता मिल गई है। जिस कारण मैंने जन्म और मरण (के पाश) काटकर परम गति प्राप्त की है। मैंने अपने को साधुओं की संगति में लीन कर लिया है। और पंच दूतों (इंद्रियों) से अपने को छुड़ा लिया है। मैं अपनी जिह्वा से अमृतमय नाम का जाप जपता हूँ और मैंने अपने को (प्रभु का) बिना मोल का दास बना लिया है। सतगुरु ने मुझ पर विशेष उपकार किया है। उन्होंने मुझे संसार-सागर से निकाल लिया है। उनके चरण-कमलों से मेरी प्रीति लग गई है और मेरे चित्त में गोविंद का दिनोंदिन निवास होता है। माया का जलता हुआ अंगार बुझ गया और नाम का सहारा होने से मन में संतोष हुआ। मेरे स्वामी प्रभु जल-थल में व्याप्त हो रहे हैं और जहाँ मैं देखता हूँ वहीं मुझे मेरे अंतर्यामी दीख रहे हैं। मैंने अपनी भक्ति स्वयं ही दृढ़ की है क्योंकि पूर्व जन्म के संस्कार मुझे मिल गए हैं। कबीर का स्वामी ऐसा ग़रीब निवाज है कि जिस पर वह कृपा करता है वही परिपूर्ण हो जाता है।

४१

जल में छूत है, थल में छूत है और किरणों में भी (ग्रहण के अवसर पर) छूत है। जन्म में भी छूत है, और फिर मरने में भी छूत है। इस प्रकार तूने सूतक से जल कर (परज कर) अपना नाश कर लिया। कह तो रे पंडित, कौन पवित्र है? मेरा मित्र बन कर ऐसा ज्ञान गाता फिरता है! आँखों में भी छूत है (कहीं शूद्र की दृष्टि न पड़ जाय) बोली में छूत है (कहीं शूद्र से बात न हो जाय) और कानों में भी छूत है। (कहीं शूद्र की बात कान में न पड़ जाय)। उठते बैठते तुझे छूत लगती है। यहाँ तक कि भोजन में भी छूत पहुँच जाती है। इस प्रकार कर्म-बंधन में फँसने की विधि तो

सभी कोई जानते हैं, मुक्त होने की विधि कोई एक ही जानता है। कबीर कहता है कि जो राम को हृदय में विचारते हैं उन्हें छूत नहीं लगती।

४२

हे राम, यदि तुम्हें अपने भक्त का ध्यान है तो एक झगड़ा सुलझा दो। यह मन बड़ा है या वह जिसमें मन अनुरक्त है ? राम बड़ा है, या वह जो राम को जानता है ? ब्रह्मा बड़ा है या वह जिसे उसने उत्पन्न किया है ? वेद बड़ा है या वह जहाँ से वह उत्पन्न हुआ है ? कबीर कहता है कि मैं (इस झगड़े से ही) उदास हो गया हूँ। (मैं पूछता हूँ) तीर्थ बड़ा है या हरि का दास ?

४३

ए भाई, देखो ज्ञान की आँधी आई है। माया से बाँधी हुई यह भ्रम की सारी टट्टी उड़ गई है। द्विविधा की दो थूनियाँ (बोझ रोकने वाले खंभियाँ) गिर पड़ीं और मोह का बलेंडा (म्याल) टूट गया। तृष्णा की छानी पृथ्वी के ऊपर गिर पड़ी और दुर्बुद्धि का भांडा फूट गया। इस आँधी के बाद जो जल बरसा उसी से यह तेरा भक्त भीग गया। कबीर कहता है कि जब उदय होते हुए सूर्य को पहिचाना तो मन प्रकाशित हो उठा। (यहाँ सूर्य का तात्पर्य ब्रह्म-ज्ञान से है।)

४४

न हरि का यश सुनता है, न हरि का गुण गाता है। केवल बकवाद ही में आकाश को (पृथ्वी पर) गिराना चाहता है। ऐसे लोगों से क्या कहा जाय ? जिन्हें प्रभु ने भक्ति से बर्ज्य कर रक्खा है, उनसे हमेशा डरते ही रहना चाहिए। स्वयं तो एक चुल्लू भर पानी नहीं दे सकते और उसकी निंदा करते हैं जिसने पृथ्वी पर गंगा बहा दी है। वे लोग उठते-बैठते कपट-चक्र चलाते हैं। स्वयं तो नष्ट होते ही हैं, दूसरों को भी नष्ट करते हैं। बुरी चर्चा को छोड़ कर और कुछ जानते ही नहीं हैं। स्वयं ब्रह्मा भी यदि कुछ कहें तो वे उसे नहीं मान सकते। स्वयं तो अपने को खोते हैं, दूसरों को भी खोते हैं। वे आग लगाकर स्वयं उस घर में सोते हैं। स्वयं तो काने हैं किंतु दूसरों पर हँसते हैं। उन्हें देखकर कबीर केवल लज्जित ही होते हैं।

४५

पितरों के जीवन-काल में उनपर श्रद्धा तो रही नहीं अब उनके मर जाने पर उनका श्राद्ध करते हैं ! फिर बेचारे पितर भी क्या कुछ पाते हैं ? (श्राद्ध की चीजें तो) कौवे और कुत्ते ही खाते हैं। कोई मुझे बतला भी तो दे कि कुशलता क्या है ? कुशल कुशल करते तो सारा संसार नष्ट हो रहा है ! (केवल कहने से ही) कैसे कुशलता हो सकती है ? मिट्टी के देवी या देवता बनाकर उसके आगे जीवों का बलिदान करते हैं। तुम्हारे पितर तो ऐसे हैं कि अपनी कही हुई (माँगी हुई) चीज़ भी नहीं ले सकते। जो लोग निर्जीव की पूजा के लिए सजीव का बलिदान करते हैं उनके लिए अंतिम-काल बहुत भयानक है। ये संसारी लोग तो राम-नाम की गति न जान सकने से भय

में डूबे पड़े हैं। देवी देवता को पूजते हुए घूमते तो हैं किंतु परब्रह्म को नहीं मानते। कबीर कहता है कि उनकी बुद्धि जाग्रत नहीं हुई और वे विषय-वासना में ही लिपटे पड़े हैं।

४६

जो जीते हुए मरता है और मर कर फिर जीवित हो उठता है उसे ही शून्य में समाया हुआ समझना चाहिए। और जो इस माया में निरंजन रूप होकर रहता है, वह फिर संसार-सागर (योनि रूप से) नहीं पाता। रामरूपी दूध को इस प्रकार मथना चाहिए कि गुरु के आदेशानुसार मन स्थिर रहे, तभी इस रीति से अमृत पिया जा सकता है। गुरु का बाण-वज्र कुशलता से हृदय बेध देता है जिससे उसके पद का अर्थ प्रकाशित हो उठता है। वह गुरु शक्ति (शाक्तमत) के अँधेरे में रस्सी के भ्रम से रहित होकर निश्चल रूप से शिव-स्थान (बनारस) में निवास करता है। वही बिना बाण के धनुष चढ़ा सकता है जिससे उसने हे भाई, यह संसार भेद रक्खा है। उसका शरीर दशों दिशा की अंतर्हित पवन (प्राणायाम) से आंदोलित होता रहता है और (ईश्वर से) उसकी अनुरक्ति का सूत्र जुड़ा रहता है। (उसी के उपदेश से) निर्विकार मौन में लीन मन शून्य में समा सकता है और द्विविधा और बुरी बुद्धि भाग जाती है। कबीर कहता है कि राम नाम में अनुरक्ति होने के कारण मैंने एक विचित्र अनुभव के दर्शन किए।

४७

हे बैरागी, पवन को उलट कर (प्राणायाम कर) शरीर के अंतर्गत छः चक्रों को (कुंडलिनी के द्वारा) बेध कर अपनी सुरति (आत्मा) में शून्य (ब्रह्म-रंध्र) के प्रति अनुराग उत्पन्न कर और जो (ब्रह्म) आता है न जाता है, मरता है न जीता है, उसे खोज। मेरे मन, तू उलट कर अपने आप में समा जा। गुरु की कृपा से तुझे दूसरी ही बुद्धि मिल गई नहीं तो तू अभी तक बेगाना ही था। जो जैसा मानते हैं उसके अनुसार उन्हें पास रहने वाला ब्रह्म दूर और दूर रहने वाला ब्रह्म पास मालूम देता है। जिन्होंने ब्रह्म-रस का पान किया है, वे जानते हैं कि ओरी का जल उलट कर बरेडा (छानी) का जल हो जाता है (अर्थात् उनकी बाह्य इंद्रियाँ अन्तर्मुखी हो जाती हैं।) (हे मन) तेरे निर्गुण रूप का रहस्य किससे कहूँ? (जो उसे समझ सके) ऐसा कोई विवेकी (ज्ञानवान) ही होगा। कबीर कहता है कि जो जैसा पलीता देता है, उसे उसी प्रकार की आग दीखती है।

४८

'सहज' की ऐसी विचित्र कथा है जो कही नहीं जा सकती। वहाँ न वर्षा है, न सागर, न धूप, न छाया, न उत्पत्ति और न प्रलय ही है। न जीवन है न मृत्यु, न वहाँ दुःख का अनुभव होता है न सुख का। वहाँ शून्य की जाग्रति और समाधि की निद्रा दोनों ही नहीं हैं। न वह तोली जा सकती है, न वह छोड़ी जा सकती है, न वह हलकी है, न भारी। उसमें ऊपर नीचे की कोई भावना नहीं है, वहाँ रात और दिन

की स्थिति नहीं है। न वहाँ जल है, न पवन। और वहाँ अग्नि भी नहीं है। वहाँ तो एकमात्र सत-गुरु का साम्राज्य है। वह अगम है, इंद्रियों से परे है, केवल गुरु की कृपा से ही उसकी प्राप्ति हो सकती है। कबीर कहता है कि मैं अपने गुरु की बलि जाता हूँ। उन्हीं की अच्छी संगति में मिलकर रहना चाहिए।

४६

हमारा राम एक ऐसा नायक (व्यापार करने वाला) है कि उसने सारे संसार को बनजारा (व्यापार करने वाला) बना दिया है। उस संसार ने पाप और पुण्य के दो बैल ख़रीदे और पवन (साँस) की पूँजी सजाई। उसने शरीर के भीतर तृष्णा की गोंनि भर दी, इस प्रकार उसने अपना टांडा ख़रीदा। (उसे रोकने के लिये) काम और क्रोध कर-वसूल करने वाले हुए और मन की भावनाएँ डाकू बन गई। पंच तत्व मिलकर उससे अपना इनाम वसूल करते हैं, इस प्रकार यह टांडा (भवसागर) के पार उतरा। कबीर कहता है कि ऐ संतो सुनो, अब ऐसी परिस्थिति आ गई है कि घाटी (भक्ति-पथ) पर चढ़ते समय एक बैल (पाप) थक गया है। अब तुम अपनी (तृष्णा की) गोंनि फेंक कर आगे चल पड़ो।

५०

नैहर (पेवकडै) में केवल चार दिन रहना है, फिर तो प्रियतम (साहुरडै) की सेवा में जाना होगा। यह बात अंधे लोग नहीं जानते क्योंकि वे मूर्ख और अज्ञानी हैं। प्रेयसी अपना साज-सामान बाँधकर खड़ी है। क्योंकि बिदा कराने के लिए पाहुने आए हुए हैं। वहाँ जो तलाई (छोटी सरोवरी) दीख पड़ रही है, उससे पानी लेने के लिए किस रस्सी की आवश्यकता है? (अर्थात् ब्रह्म-ज्ञान के स्रोत का जल लेने के लिए किसी ग्रंथ रूपी रस्सी की आवश्यकता नहीं है।) यदि उसी क्षण रस्सी टूट जाय तो पनिहारी (आत्मा) उठ कर चली जाती है। यदि स्वामी कृपा करे और दयालु हो जाय तो अपना सारा कार्य सँवर जाय। सौभाग्यशालिनी तो उसे ही समझना चाहिये जो गुरु के शब्द का विचार करे। (अन्य स्त्रियाँ तो) कर्म-बंधन (किरत) में बँधी हुई हैं, उसी में वे घूमती फिरती हैं और उसी प्रकार की बातें कहती हैं, वे बेचारी क्या करें! (परिणाम यह होता है कि) कि वे निराश होकर (इस संसार से) चल खड़ी होती हैं और उनके चित्त में किंचित् भी धैर्य नहीं रहता। कबीर की शरण में जाकर हरि के चरणों से लगो और उसका भजन करो।

५१

योगी कहते हैं कि योग ही अच्छा और श्रेयस्कर है, और कोई दूसरा (संप्रदाय) ठीक नहीं है। रुंडित और मुंडित (जिन्होंने शरीर और सिर के बाल मुड़ा लिए हैं) और एक शब्द में विश्वास रखनेवाले यही कहते हैं कि हम लोगों ने सिद्धि प्राप्त कर ली है। (परंतु सच बात यह है कि) हरि के बिना सभी अज्ञानी लोग भ्रम में भूले हुए हैं। अपने को मुक्त कराने के लिए जिस किसी की शरण में जाओ वही अनेक बंधनों

में बँधा हुआ है। उनकी (बतलाई हुई) विधि तो जहाँ से उत्पन्न हुई थी, वहाँ ही समा गई और उसी समय विस्मृत हो गई। फिर भी पंडित, गुणी और शूरवीर तो यही कहते हैं कि हम ही (ज्ञान का) दान करने वाले हैं और हम ही बड़े हैं। (यों तो) जिसे समझाओ वही समझता है और बिना समझे संसार में रहता कौन है? (किंतु) सतगुरु के मिलने से ही अंधकार से बचा जा सकता है और (उसकी बतलाई हुई) इन्हीं रीतियों से ज्ञान का माणिक प्राप्त होता है। दाहने और बाएं विकारों को छोड़ कर (यहाँ वहाँ की बातों में न उलझ कर) सीधे हरि के चरणों में दृढ़ता पूर्वक रहना चाहिए। कबीर कहता है कि जब गूँगा गुड़ खा लेता है तो पूछने पर वह क्या कह सकता है! (इसी प्रकार ब्रह्म-ज्ञान का अनुभव करने वाला क्या बतलाए कि उसकी अनुभूति क्या है!)

५२

(शरीर के नष्ट होने पर) जहाँ जो कुछ था वहाँ अब कुछ नहीं है—पाँच तत्व भी वहाँ नहीं रह गए। ऐ बंदे, मैं पूछता हूँ कि इडा, पिंगला और सुषुम्णा ये (नाड़ियाँ) आवागमन में कहाँ चली जाती हैं? तागा (साँस) टूटने पर आकाश (ब्रह्म-रंध्र) नष्ट हो जाता है। फिर यह तेरी बोलने की शक्ति कहाँ समा जाती है? यही संदेह मुझे प्रतिदिन कष्ट देता है और मुझे कोई समझा कर नहीं कहता। (इस माया में) जहाँ न तो ब्रह्मांड है, न पिंड और निर्माण कर्त्ता भी नहीं है। (समस्त सृष्टि को) जोड़ने वाला तो सदा अतीत है। फिर यह अतीत कहो किसमें रहता है? विनाश होने के पूर्व तक न तो (तेरे) जोड़ने से कुछ जुड़ेगा और न (तेरे) तोड़ने से कुछ टूट ही सकेगा। फिर कौन किसका स्वामी है, कौन किसका सेवक है और कौन किसके पास जाता है? कबीर कहता है मेरी तो ब्रह्म से लव लग रही है और मैं दिन रात वहीं निवास करता हूँ। उसका रहस्य तो केवल वही जानता है क्योंकि एक वही अवि-नाशी है।

५३

श्रुति और स्मृति ही मुझ योगी के कर्णी (कान का आभूषण) और मुद्रा (कानों में पहनने का स्फटिक कुंडल) है और समस्त बाहर का घेरा (क्षितिज) ही मेरा पहनने का वस्त्र (खिंथा) है। मेरा उठना-बैठना शून्य गुफा (ब्रह्म-रंध्र) ही में है और मेरा संप्रदाय कर्मकांड (कलप) से रहित है। मेरे राजन्, मैं ऐसा बैरागी और योगी हूँ जिसकी, शोक से रहित होने के कारण, मृत्यु नहीं होती। ब्रह्मांड और उसके खंड मेरी सिंगी (सींग की तुरही) है और पृथ्वी (महि) मेरा बटुवा है; सारा संसार ही भस्म से परिपूर्ण है। भूत, वर्तमान और भविष्य इन तीन क्षणों में ही मेरी ताड़ी (त्राटक) लगी हुई है। और इन तीनों को पलटने में ही (भविष्य को वर्तमान या भूत, भूत को वर्तमान या भविष्य, वर्तमान को भूत या भविष्य) इन बंधनों से छूटता हूँ और सर्वव्यापी हो जाता हूँ। युगों युगों से सरस्वती ने जिसे सजाया है

की स्थिति नहीं है। न वहाँ जल है, न पवन। और वहाँ अग्नि भी नहीं है। वहाँ तो एकमात्र सत-गुरु का साम्राज्य है। वह अगम है, इंद्रियों से परे है, केवल गुरु की कृपा से ही उसकी प्राप्ति हो सकती है। कबीर कहता है कि मैं अपने गुरु की बलि जाता हूँ। उन्हीं की अच्छी संगति में मिलकर रहना चाहिए।

४६

हमारा राम एक ऐसा नायक (व्यापार करने वाला) है कि उसने सारे संसार को बनजारा (व्यापार करने वाला) बना दिया है। उस संसार ने पाप और पुण्य के दो बैल ख़रीदे और पवन (साँस) की पूँजी सजाई। उसने शरीर के भीतर तृष्णा की गोंनि भर दी, इस प्रकार उसने अपना टांडा ख़रीदा। (उसे रोकने के लिये) काम और क्रोध कर-वसूल करने वाले हुए और मन की भावनाएँ डाकू बन गईं। पंच तत्व मिलकर उससे अपना इनाम वसूल करते हैं, इस प्रकार यह टांडा (भवसागर) के पार उतरा। कबीर कहता है कि ऐ संतो सुनो, अब ऐसी परिस्थिति आ गई है कि घाटी (भक्ति-पथ) पर चढ़ते समय एक बैल (पाप) थक गया है। अब तुम अपनी (तृष्णा की) गोंनि फेंक कर आगे चल पड़ो।

५०

नैहर (पेवकडै) में केवल चार दिन रहना है, फिर तो प्रियतम (साहुरडै) की सेवा में जाना होगा। यह बात अंधे लोग नहीं जानते क्योंकि वे मूर्ख और अज्ञानी हैं। प्रेयसी अपना साज-सामान बाँधकर खड़ी है। क्योंकि बिदा कराने के लिए पाहुने आए हुए हैं। वहाँ जो तलाई (छोटी सरोवरी) दीख पड़ रही है, उससे पानी लेने के लिए किस रस्सी की आवश्यकता है? (अर्थात् ब्रह्म-ज्ञान के स्रोत का जल लेने के लिए किसी ग्रंथ रूपी रस्सी की आवश्यकता नहीं है।) यदि उसी क्षण रस्सी टूट जाय तो पनिहारी (आत्मा) उठ कर चली जाती है। यदि स्वामी कृपा करे और दयालु हो जाय तो अपना सारा कार्य सँवर जाय। सौभाग्यशालिनी तो उसे ही समझना चाहिये जो गुरु के शब्द का विचार करे। (अन्य स्त्रियाँ तो) कर्म-बंधन (किरत) में बँधी हुई हैं, उसी में वे घूमती फिरती हैं और उसी प्रकार की बातें कहती हैं, वे बेचारी क्या करें! (परिणाम यह होता है कि) कि वे निराश होकर (इस संसार से) चल खड़ी होती हैं और उनके चित्त में किंचित् भी धैर्य नहीं रहता। कबीर की शरण में जाकर हरि के चरणों से लगो और उसका भजन करो।

५१

योगी कहते हैं कि योग ही अच्छा और श्रेयस्कर है, और कोई दूसरा (संप्रदाय) ठीक नहीं है। रुंडित और मुंडित (जिन्होंने शरीर और सिर के बाल मुड़ा लिए हैं) और एक शब्द में विश्वास रखनेवाले यही कहते हैं कि हम लोगों ने सिद्धि प्राप्त कर ली है। (परंतु सच बात यह है कि) हरि के बिना सभी अज्ञानी लोग भ्रम में भूले हुए हैं। अपने को मुक्त कराने के लिए जिस किसी की शरण में जाओ वही अनेक बंधनों

में बँधा हुआ है। उनकी (बतलाई हुई) विधि तो जहाँ से उत्पन्न हुई थी, वहाँ ही समा गई और उसी समय विस्मृत हो गई। फिर भी पंडित, गुणी और शूरवीर तो यही कहते हैं कि हम ही (ज्ञान का) दान करने वाले हैं और हम ही बड़े हैं। (यों तो) जिसे समझाओ वही समझता है और बिना समझे संसार में रहता कौन है? (किंतु) सतगुरु के मिलने से ही अंधकार से बचा जा सकता है और (उसकी बतलाई हुई) इन्हीं रीतियों से ज्ञान का माणिक प्राप्त होता है। दाहने और बाएं विकारों को छोड़ कर (यहाँ वहाँ की बातों में न उलझ कर) सीधे हरि के चरणों में दृढ़ता पूर्वक रहना चाहिए। कबीर कहता है कि जब गूंगा गुड़ खा लेता है तो पूछने पर वह क्या कह सकता है! (इसी प्रकार ब्रह्म-ज्ञान का अनुभव करने वाला क्या बतलाए कि उसकी अनुभूति क्या है!)

५२

(शरीर के नष्ट होने पर) जहाँ जो कुछ था वहाँ अब कुछ नहीं है—पाँच तत्व भी वहाँ नहीं रह गए। ऐ बंदे, मैं पूछता हूँ कि इडा, पिंगला और सुषुम्णा ये (नाड़ियाँ) आवागमन में कहाँ चली जाती हैं? तागा (साँस) टूटने पर आकाश (ब्रह्म-रंध्र) नष्ट हो जाता है। फिर यह तेरी बोलने की शक्ति कहाँ समा जाती है? यही संदेह मुझे प्रतिदिन कष्ट देता है और मुझे कोई समझा कर नहीं कहता। (इस माया में) जहाँ न तो ब्रह्मांड है, न पिंड और निर्माण कर्त्ता भी नहीं है। (समस्त सृष्टि को) जोड़ने वाला तो सदा अतीत है। फिर यह अतीत कहो किसमें रहता है? विनाश होने के पूर्व तक न तो (तेरे) जोड़ने से कुछ जुड़ेगा और न (तेरे) तोड़ने से कुछ टूट ही सकेगा। फिर कौन किसका स्वामी है, कौन किसका सेवक है और कौन किसके पास जाता है? कबीर कहता है मेरी तो ब्रह्म से लव लग रही है और मैं दिन रात वहीं निवास करता हूँ। उसका रहस्य तो केवल वही जानता है क्योंकि एक वही अविनाशी है।

५३

श्रुति और स्मृति ही मुझ योगी के कर्णी (कान का आभूषण) और मुद्रा (कानों में पहनने का स्फटिक कुंडल) है और समस्त बाहर का घेरा (क्षितिज) ही मेरा पहनने का वस्त्र (खिंथा) है। मेरा उठना-बैठना शून्य गुफा (ब्रह्म-रंध्र) ही में है और मेरा संप्रदाय कर्मकांड (कलप) से रहित है। मेरे राजन्, मैं ऐसा बैरागी और योगी हूँ जिसकी, शोक से रहित होने के कारण, मृत्यु नहीं होती। ब्रह्मांड और उसके खंड मेरी सिंगी (सींग की तुरही) है और पृथ्वी (महि) मेरा बटुवा है; सारा संसार ही भस्म से परिपूर्ण है। भूत, वर्तमान और भविष्य इन तीन क्षणों में ही मेरी ताड़ी (त्राटक) लगी हुई है। और इन तीनों को पलटने में ही (भविष्य को वर्तमान या भूत, भूत को वर्तमान या भविष्य, वर्तमान को भूत या भविष्य) इन बंधनों से छूटता हूँ और सर्वव्यापी हो जाता हूँ। युगों युगों से सरस्वती ने जिसे सजाया है

ऐसे मन और पवन को मैंने अपना तूँबा बना लिया है। इससे मेरी शरीर की तंत्री स्थिर हो गई और अनाहत नाद की जो वीणा बजी उसका स्वर कभी नहीं टूटा। इसे सुनकर सुनने वालों के मन आनंदसे परिपूर्ण हो गए और माया अस्थिर हो उठी। कबीर कहता है कि (मेरे सदृश) जो बैरागी खेल जाता है (अपने जीवन में ऐसे प्रयोग करता है) उसका आवागमन छूट जाता है।

५४

नौ गज, दस गज और इकीस गज की एक पुरिआ तानी गई (अर्थात् नरी पर ताने और बाने को बुनने से पहिले फैलाया। यहाँ नौ गज और दस गज बाने के लिए और इकीस गज ताने के लिये मानना चाहिए।) उस पुरिआ के फैलाव में साठ सूत रक्खे गए और उसमें नव खंड डालकर राछ के द्वारा बहत्तर भाग किए गए। इस प्रकार इस करघे पर बहुत वस्त्र लगा। यह वस्त्र बिनवाने के लिए (माँ) चली। लेकिन जुलाहा घर छोड़कर जा रहा है। (उसका कारण यह है कि) न तो कपड़ा करघे के बेलन पर लिपटता है और न वह मोर—(लकड़ी की कमचियों के सहारे) आदि से ठीक तरह सधा ही रहता है क्योंकि अधिक माँड़ लग जाने से ढाई सेर कपड़ा पाँच सेर हो गया है। (यदि बुनने की सुविधा के लिए माँड़ कम लगाया जाय और) ढाई सेर को पाँच सेर न किया जाय तो वह झगड़ालू स्त्री झगड़ा करने लगती है। (वह झगड़ा इसलिए करती है कि यदि मेरा कपड़ा अधिक भारी होगा—वास्तव में हो ढाई सेर ही लेकिन यदि वह पाँच सेर के वज़न का हो जाय तो पैसे अधिक मिलेंगे लेकिन बेचारे जुलाहे की मुसीबत यह है कि यदि वह कपड़ा भारी करने के लिए माँड़ अधिक लगाता है तो या तो कपड़ा करघे में नहीं लिपटता या कोशिश करने पर भी खिंचाव में झोल आ जाता है। सूत का फैलाव तुला नहीं रहता।) फिर कहीं दिन को भी बैठकर बुना जाता है ? दिन का बाज़ार (बैठ या पैठ) है जहाँ अच्छे अच्छे ख़रीद करने वाले मालिक आते हैं उनसे ही बरकत होती है। यह कोई वक्त है कपड़े बुनने का ? इस समय यहाँ क्यों कपड़ा बुनवाने के लिए आई है ? (प्रातःकाल कपड़े बुनने का अच्छा समय होता है।) फिर पास रक्खा हुआ पानी का यह कूँडा भी फूट गया जिससे सारी पुरिया भीग गई। इसीलिए जुलाहे को ग़ुस्सा आ गया। फिर बाने को बुननेवाली जो ढरकी (Shuttle Cock) है वह भी ख़राब हो गई है। या तो उससे तागा ही नहीं निकलता या यदि निकलता है तो उलझकर रह जाता है। (फिर जुलाहे को झुँझलाहट क्यों न हो ?) कबीर कहता है कि ऐ पगली ! (बेचारी) तू यह सारा पसारा छोड़कर जीवन बिता।

५५

एक (आत्मा की) ज्योति उस (एक परब्रह्म की) ज्योति से मिल गई। अब और कुछ हो अथवा न हो। जिस घट (शरीर) में राम नाम की उत्पत्ति नहीं होती वह घट फूट कर नष्ट हो जाय तो अच्छा है। ऐ सुंदर साँवले राम, मेरा तुझमें अनुरक्त हो गया है। साधु मिलने से ही सिद्धि होती है इसमें चाहे योग हो या भोग हो। इन

दोनों के संयोग से ही राम-नाम से संयोग हो सकता है। लोग समझते हैं कि (जो कुछ मैं कह रहा हूँ) यह एक साधारण गीत है, किंतु वस्तुतः यह ब्रह्म-विषयक विचार है जो काशी में मनुष्य को मरते समय दिया जाता है। गाने वाला और सुनने वाला चाहे जो कोई हो, लेकिन तू हरि के नाम से चित्त लगा। और ऐसा करने से—कबीर कहता है कि—परम गति की प्राप्ति में कोई संदेह नहीं रह जाता।

५६

जिन्होंने (अपने बचने का) यत्न किया, वे सब डूब गए। इस प्रकार भव-सागर को वे लोग पार नहीं कर सके। कर्म, धर्म और अनेक संयम करते हुए अहंकार की बुद्धि ने उनका मन जला दिया। जो साँस और भोजन का देने वाला स्वामी है उसे तूने मन से क्यों भुला दिया? तेरा जन्म हीरा और लाल (जैसे अलभ्य रत्नों) की भाँति अमूल्य है, उसे तूने कौड़ी (साधारण ममता और मोह) के बदले दे रक्खा है! तुझे तृष्णा, तृषा भूख और भ्रम कष्ट देते हैं किंतु इन कष्टों का विचार तू हृदय में नहीं करता। तेरे मन में केवल मतवाला मान ही रह गया, तूने गुरु के शब्दों को कभी हृदय में धारण नहीं किया। स्वाद से आकर्षित होकर इंद्रियों ने तुझे रस की ओर प्रेरित कर दिया और तू विकार से भरे हुए यौवन का रस लेता फिरता है। कर्मकांड से तू (बुरे) संतों के संग में केवल लोह और काष्ठ की माला (और साधुओं के आभूषण आदि ही) हृदय में धारण करता है। अनेक योनि और जन्मों में भ्रमित होकर भागते हुए हम थक गए और दुःख सहन करते हुए भी अब हम शिथिल हो गए। कबीर कहता है कि अब तो गुरु के मिलने से ही महारस (ब्रह्मानंद) मिलेगा और प्रेम-भक्ति के सहारे इस (भव-सागर) से निस्तार होगा।

५७

कच्चे भराव की तरह यह पागल मन ऐसी हस्तिनि है जिसने अपनी गति में ईश्वर की रचना कर डाली है। (अथवा हे पागल मन! कच्चे भराव की तरह यह शरीर की हस्तिनि ऐसी है जिसने अपनी बुद्धि के विकास में स्वयं ईश्वर की सृष्टि कर डाली है) और काम-वासना के हाथी उसके वश में इस प्रकार आ गए हैं कि अंकुशों की मार सिर पर सहन करते हैं (लेकिन हटते नहीं।) हे पागल मन, तू विषय वासनाओं से बच और समझ कर हरि से प्रेम कर। निर्भय होकर हरि का भजन न करने से राम रूपी जहाज़ पकड़ में नहीं आता। हे पागल मन, तूने हाथ पसार कर (विषय-वासनाओं को) उसी प्रकार मुट्ठी में पकड़ लिया है जिस प्रकार बंदर (सकरे मुँह के बरतन में से) अनाज मुट्ठी में भर कर निकालना चाहता है। लेकिन छूटने में कठिनाई होने से (वह पकड़ा जाता है और) घर घर के दरवाज़े नाचता फिरता है। हे पागल मन, माया का व्यवहार तो जैसे (सेमर की) नलनी है जो (देखने में अत्यंत आकर्षक है किंतु भीतर रुई भरी रहने के कारण रस-हीन है) सुग्गे को आकर्षित कर लेती है। और उस माया का विस्तार उसी प्रकार है जैसे कुसुंभी

रंग का जो पानी पड़ते ही फैलता जाता है। हे पागल मन, तूने स्नान करने के लिए अनेक तीर्थ बनाए और पूजने के लिए बहुत से देवताओं को बनाया। लेकिन कबीर कहता है कि हे पागल मन, इन से तू संसार से मुक्त नहीं हो सकता। तुझे मुक्ति तो हरि की सेवा से ही मिल सकती है।

५८

(राम-नाम का धन इस प्रकार है कि) न तो उसे अग्नि जलाती है, न वायु अपने में लीन करता है और न चोर उसके समीप आ सकता है। इसलिए राम-नाम के धन को संचित करना चाहिए, क्योंकि वह धन कहीं नहीं जा सकता। हमारा धन तो माधव,गोविंद और धरणीधर है। इसी को वास्तव में धन कहना चाहिए। जो सुख गोविंद प्रभु की सेवा में मिलता है, वह सुख राज्य (करने) में भी नहीं प्राप्त हो सकता। इस धन के लिए शिव सनक आदि खोजते खोजते वीतरागी हो गए! यदि मुकुंद को मन मान लिया जाय और नारायण को जिह्वा, तो यम का बंधन किसी प्रकार भी (गले में) नहीं पड़ सकता। मेरे गुरु ने ज्ञान और भक्ति का धन मुझे दिया इस कारण उनकी सुबुद्धि में ही मेरा मन लग गया। जो मन स्वयं तो (विषय-वासनाओं में) जल रहा है किंतु (ईश्वर-ज्ञान रूपी) जल-थंभन के लिए दौड़ रहा है। (अर्थात् विषय-वासनाओं में जलते हुए भी ईश्वर की अनुभूति रूपी शीतल जल को आने से रोक रहा है) उसका भ्रम-बंधन का भय भाग गया। (अर्थात् वह संसार में ही लीन हो गया।) कबीर कहता है कि ऐ कामदेव के मद से उन्मत्त (मनुष्य), तू अपने हृदय में विचार कर देख। तेरे घर में लाखों और करोड़ों घोड़े और हाथी हैं। (तुझे इतना सुख नहीं है जितना मुझे है क्योंकि) मेरे घर में केवल एक मुरारी ही हैं।

५९

जिस प्रकार बंदर है जो हाथ की मुट्ठी चनों से भर लेता है और लोभ से नहीं छोड़ सकता, उसी प्रकार यह मनुष्य है। वह लालच से तरह तरह के काम करता फिरता है और उन्हीं के अनुसार बार बार बंधन में पड़ता है। इस प्रकार भक्ति के बिना उसका जीवन व्यर्थ ही गया। साधु-संगति और भगवत्-भजन बिना उसके लिए कहीं भी सुख नहीं रह सका। जिस प्रकार उद्यान में फूल फूलते हैं और उनकी सुगंधि कोई नहीं लेता। (काल उन्हें नष्ट कर देता है।) उसी प्रकार जीव अनेक योनियों में भ्रमण करता है और काल बार बार उन्हें नष्ट करता है। यह धन, यौवन, पुत्र और स्त्री केवल दृश्य-मात्र के रूप में मनुष्य को दिये गए हैं। उन्हीं में यह मनुष्य अटक कर उलझ गया है, वह इंद्रियों से प्रेरित जो हो गया है। जीवन की अवधि ही अग्नि है, और यह शरीर जिसका चारों ओर से शृंगार किया गया है एक तिनके का महल है (जो पल भर में जल जायगा।) कबीर कहता है कि भव-सागर पार करने के लिए मैंने सतगुरु की शरण ली है।

६०

मैले पानी और उज्ज्वल मिट्टी से इस शरीर की प्रतिमा बनाई गई है। न मैं कुछ हूँ और न कोई चीज़ ही मेरी है। यह शरीर, यह संपत्ति और यह समस्त आनंद हे गोविंद, तेरा ही है। इस मिट्टी में पवन का समावेश किया और गोविंद ने यह माया-प्रपंच चलाया है। कुछ लोगों ने असंख्य धन का संचय किया है किंतु अंत में उनकी भी कपाल-क्रिया मिट्टी के घड़े फोड़ने की भाँति की गई। कबीर कहता है कि अंत में ओसारे में (मकान से हट कर) [खुदे हुए गढ़े (नींव) में उसका अंत होता है] और वह अहंकारी क्षण भर में नष्ट हो जाता है।

६१

ऐ जीव, राम को इस भाँति जपो जिस भाँति ध्रुव और प्रह्लाद ने हरि का जाप किया था। हे दीनदयालु, मैंने एक मात्र तेरे भरोसे अपने समस्त परिवार को जहाज़ पर चढ़ा लिया है। (अब इस भव-सागर से तू ही पार लगा।) तू जिससे चाहे उससे अपनी आज्ञा मनवा किंतु इस जहाज़ को तू पार लगा दे। गुरु के प्रसाद से मेरे हृदय में ऐसी बुद्धि समा गई है कि मैं आवागमन से रहित हो गया हूँ। कबीर कहता है कि एक सारंगपाणि (राम) का ही तू भजन कर। भव-सागर के इस पार और उस पार सभी जगह वही एक दानी है।

६२

(पिछली) योनि को छोड़कर जब मैं इस जग में आया तो इस संसार की हवा लगते ही मैं अपने स्वामी को भूल गया। अतः हे जीव, तू हरि के गुण गा। (यह आश्चर्य तो देख कि) तू गर्भ-योनि में ऊपर (मुख किए हुए) तप करता था। फिर भी जठराग्नि से तू सुरक्षित रहा। तू चौरासी लक्ष योनियों में घूम कर आया है। (अब तू ऐसा भजन कर कि) इस योनि से छूट कर तुझे किसी और जगह न जाना पड़े। कबीर कहता है कि तू सारंगपाणि (राम) का भजन कर जो न आते हुए दीखता है और न जाते हुए ज्ञात होता है। (अर्थात् जो सदैव स्थिर और चिरंतन है।)

६३

न तो स्वर्ग-निवास की अभिलाषा करना चाहिए, न नर्क-निवास से डरना चाहिए जो कुछ होना होगा, वह तो होगा ही, मन में आशा ही क्यों की जाय? (केवल) राम का गुण गाना चाहिए जिससे परम-पद की प्राप्ति हो। जप क्या है? तप क्या है? संयम क्या है? व्रत और स्नान क्या है? जब तक कि भगवान के भक्ति-भाव की युक्ति न जानी जाय! न तो संपत्ति देखकर प्रसन्न होना चाहिए और न विपत्ति देखकर रोना चाहिए। जैसी संपत्ति है, वैसी ही विपत्ति है। और होगा वही जो ईश्वर द्वारा निर्दिष्ट है। कबीर कहता है कि अब मुझे ज्ञात हो गया कि (वह ब्रह्म) संतों के हृदय के भीतर है। वस्तुतः सेवक वही है और सेवा उसी की अच्छी है जिसके हृदय में मुरारि (ब्रह्म) निवास करते हैं।

६४

रे मन, तेरा कोई नहीं है, तू व्यर्थ ही (औरों का) भार मत खींच। यह संसार तो वैसा ही है जैसा पक्षी का वृक्ष-बसेरा। मैंने तो राम-रस पी लिया है जिससे (संसार की विषय वासना के) अन्य रस भूल गए हैं। दूसरों के मरने पर रोने से क्या लाभ? जब स्वयं अपनी स्थिरता नहीं है। जो वस्तु उत्पन्न होती है, वह अवश्य नष्ट होगी। इसलिए (मैं क्यों रोऊँ?) मेरी बलाय दुखी होकर रोय! जहाँ जैसी सृष्टि है ब्रह्म ने वैसी ही (अवस्था के अनुकूल) उसकी रचना की है। किंतु लोग उसका (अनुचित रूप से) रस पीने में लगे हुए हैं। कबीर कहता है कि हे बैरागी, तू अपने चित्त में जागृति लाकर राम का स्मरण कर (अथवा कबीर कहता कि हे चित्त, तू चैतन्य होकर वीतराग से राम का स्मरण कर।)

६५

कामिनी आँखों में आँसू भर कर और लंबी साँस लेकर (अपने स्वामी का) मार्ग देख रही है। न तो (अधिक अश्रुओं से) उसका हृदय भीगता है। (इस डर से कि अधिक अश्रुओं से नेत्र-ज्योति धूमिल न पड़ जावे) और न अपने स्थान से उसका पैर हटता है, (न कहीं जाती है, इस डर से कि न जाने कब उसके स्वामी उसे दर्शन देने चले आवें) उसे तो एक-मात्र अपने (स्वामी) हरि के दर्शन पाने की आशा है। ए काले काग, तू क्यों नहीं उड़ जाता? जिससे मुझे अपने प्यारे राम शीघ्र ही मिल जावें? कबीर कहता है कि जीवन के मोक्ष के लिए हरि की भक्ति करनी चाहिए। एक नारायण के नाम का आधार ही लिया जाय और जिह्वा से राम में ही रमण किया जाय (या जिह्वा से राम-नाम ही उच्चारण किया जाय।)

६६

आस-पास तुलसी के घने वृक्ष हैं। बीच में बनारस गाँव है। इसका सौंदर्य देख कर (परमात्मा रूपी) ग्वालिनि मोहित हो गई है। (कबीर कहते हैं कि ऐ ग्वालिनि, तू यहीं निवास कर) मुझे छोड़ कर कहीं भी आना-जाना छोड़ दे। हे (प्रभु) सारंगधर, मेरा मन तुम्हारे ही चरणों में लग गया है। तुम तो उसीको मिलते हो जो परम सौभाग्यशाली है। यों तो समस्त वृंदावन के मन को हरने वाले कृष्ण गोपाल गायें चराते हुए (ईश्वर माने जाते हैं) किंतु ऐ सारंगधर, तुम जिसके स्वामी हो, वह मैं हूँ और मेरा नाम कबीर है।

६७

कितनों ही ने बहुत से वस्त्र पहिन रक्खे हैं और कितनों ही ने वन में वास कर लिया है किंतु ऐ मनुष्य, ईश्वर से धोखा करने में तुम्हें क्या मिला? जल में अपना शरीर डुबाने से तुम्हें क्या लाभ हुआ? ऐ जीव, मैं जानता हूँ कि तू नष्ट होगा। अरे मूर्ख, अविगत (ब्रह्म) को समझ। मैंने जहाँ जहाँ देखा फिर वहाँ दूसरी बार दृष्टि भी नहीं की क्योंकि (सभी) माया के साथ लिपटे हुए हैं। ज्ञानी, ध्यानी तो बहुत उपदेश

करने वाले हैं और यह सारा संसारा एक प्रपंच ही है। कबीर कहता है कि एक राम-नाम के बिना यह संसार माया से अंधा हो रहा है।

६८

रे मन, तू अपना भ्रम छोड़ दे और निस्संकोच होकर प्रकट रूप से कार्य कर। (समझ ले कि) तू इस माया से दंडित किया गया है। क्या शूरवीर कभी सम्मुख संग्राम से डरता है? या सती स्त्री क्या कभी (भंडार) संपत्ति का संचय करती है? रे पागल मन, तू अपनी अस्थिरता छोड़ दे। जब तूने अपने हाथ में (सत्य-व्रत)का सिंधौरा ले रक्खा है तब अपने को जला कर समाप्त कर देने में ही तुझे सिद्धि मिलेगी। संसार काम, क्रोध और माया से ग्रसित होकर इसी प्रकार असमंजस या अड़चन में पड़ा हुआ है। इसलिए कबीर कहता है कि उच्चातिउच्च राम को मैं कभी नहीं छोड़ूँगा।

६९

तेरा आज्ञा-पत्र मेरे सिर-माथे है। उस पर फिर मैं क्या विचार करूँगा? तू ही नदी है, तू ही कर्णधार है और तुझी से मेरा निस्तार होगा। ऐ बंदे, तेरा अधिकार तो केवल वंदना करने में ही है। स्वामी चाहे क्रोध करे या प्यार करे। तेरा नाम ही मेरा आधार है। (इसका परिणाम यह होगा कि) आग भी फूल की भाँति हो जायगी। कबीर कहता है कि मैं तो तुम्हारे घर का गुलाम हूँ। चाहे मारो, चाहे जिलाओ।

७०

चौरासी लाख जीवों की योनियों में भ्रमण करते हुए नंद (कृष्ण का पिता) बहुत थक गया। उस बेचारे का बहुत बड़ा भाग्य था कि (उसके घर में) भक्तों के लिए अवतार लिया गया। तुम जो (कृष्ण को) नंद का पुत्र कहते हो तब (मैं पूछता हूँ कि) नंद किसका पुत्र था? जब पृथ्वी आकाश और दसों दिशाएं नहीं थीं तो यह नंद कहाँ था? वस्तुतः 'निरंजन' तो उसी का नाम है जिस पर न तो संकट पड़ते हैं और न जो योनियों में भ्रमण करता है। कबीर का स्वामी तो ऐसा देवता है जिसके न माता है और न पिता।

७१

ऐ लोगो, मेरी निंदा करो, मेरी निंदा करो। निंदा तो भक्त को बहुत प्यारी है। उसके लिए तो निंदा ही पिता है और निंदा ही माता। यदि निंदा होती है तो (समझ लो कि) बैकुंठ जाना (निश्चित) है और नाम के तत्व को मन में स्थान देना भी (निश्चित) है। यदि निंदा होती है तो हृदय शुद्ध हो जाता है। (दूसरे शब्दों में) हमारे (मैले) कपड़े (मानों) निंदक ही धोता है। जो निंदा करता है वह हमारा मित्र है। और उसी निंदक में हमारा चित्त (निवास करता) है। निंदक वही है जो निंदा स्पर्धा के साथ, होड़ लगा कर करे। तभी तो निंदक हमारा जीवन नम्र बनाता है। भक्त कबीर के लिए तो (एक मात्र) निंदा ही सार रूप है। क्योंकि (अंत में) निंदक तो डूब जाता है और हम पार उतर जाते हैं।

७२

हे राजा राम, तू ऐसा निर्भय तरण-तारण स्वामी है (कि मैं क्या कहूँ !) जब हम थे तब तुम नहीं थे, अब जब तुम हो तो हम नहीं हैं। अब हम और तुम ऐसे अभिन्न हो गए हैं कि (तुम्हें) देखते ही मन को (इस बात का) विश्वास हो जाता है। जब बुद्धि (का प्रधान्य) था तब बल किस प्रकार रह सकता था? अब बुद्धि और बल दोनों ही परीक्षा में नहीं ठहरते। कबीर कहता है कि (राजा राम ने) मेरी बुद्धि हरण कर ली है। और जब सांसारिक बुद्धि ही बदल गई, तो मैंने सिद्धि प्राप्त कर ली है।

७३

हे मन, तूने षट् नेम कर अपनी कोठली [शरीर] को अच्छी तरह से व्यवस्थित किया और तुझे उसके भीतर एक अनुपम वस्तु (आत्मा) दृष्टिगत हुई। उसे तूने अपने प्राणों के कुंजी और ताले से अविलंब सुरक्षित किया। किंतु हे भाई मन, तू जागता रह। तूने बेख़बर होकर अपना जन्म व्यर्थ ही खो दिया। चोर तेरा घर लूटे जा रहा है। दरवाज़े पर पाँच पहरेदार (पंचेंद्रियां) रहते हैं किंतु उनका कोई विश्वास नहीं है। तू जाग और चैतन्य-चित्त रहते हुए भी तू (ब्रह्म-ज्ञान का) प्रकाश अपने हाथ में ले। नवीन घर [शरीर] को देखकर कामिनी (माया) भी आनंद से आत्म-विस्मृत हो गई। किंतु उसे वह अनुपम वस्तु (आत्मा) नहीं मिली। कबीर कहता है कि फिर भी उसने नवों स्थान (शरीर के नव द्वार) तो लूट लिए किंतु वह दसवें द्वार (ब्रह्म रंध्र) तक नहीं पहुँच सकी। उसी में आत्मा का तत्व लीन हो गया था।

७४

माई, मुझे दूसरी भाँति से न समझ लेना और न (किसी भाँति) भिन्न ही जानना। जिसके गुण शिव और सनक आदि गाते हैं, उसी (ब्रह्म) में मेरे प्राण निवास करते हैं। गुरु के द्वारा आचरित ज्ञान का प्रकाश हृदय में है और मेरा ध्यान गगन-मंडल (ब्रह्म-रंध्र) में है। विषय-रोग और भय के बंधन दूर हो गए और मन में वास्तविक घर की शांति आ गई है। (वैसी शांति जो एक विदेश से आये हुए को अपने घर पहुँचने पर मिलती है।) एक ही बुद्धि और प्रेम से मैंने अपने स्वामी को पूर्णरूपेण समझ लिया है अब किसी दूसरे को मन में लाने की आवश्यकता नहीं है। चंदन की सुगंधि से मेरा मन सुगंधित हो उठा है और त्याग से मेरा मन का सारा अभिमान घट गया है। जो अपने स्वामी के यश का गान और ध्यान करता है, उसके लिए ही प्रभु का स्थान है। और वही सौभाग्यशाली है जो अपने मन में कर्म-की प्रधानता का मंथन करता है। मैंने शक्ति और शिव को काट कर (अर्थात् शाक्त और शैवों के सिद्धांतों का खंडन कर) अपनी आत्मा का 'सहज भाव' प्रकाशित किया है और एक ब्रह्म में मैं एक होकर लीन हो गया हूँ। कबीर कहता है कि मैंने गुरु का सत्संग प्राप्त कर महासुख पाया और चकित (घूमते हुए) मन को संतोष दिया। (पंक्तियों के अंत में 'नां' केवल राग-पूर्ति के लिए रक्खा गया है।)

बावन अखरी

७५

बावन अक्षर और तीन लोक—इन्हीं में समस्त सृष्टि है। किंतु ये अक्षर नष्ट हो जायँगे क्योंकि वह अक्षर (ब्रह्म) इन बावन अक्षरों में नहीं है। जहां ध्वनि है, वहीं अक्षर है और जहां ध्वनि नहीं है, वहां मन की स्थिरता नहीं है। किंतु ब्रह्म 'ध्वनि' और 'अ-ध्वनि' के मध्य में है। वह जैसा है, उसे उसी रूप में कोई नहीं देखता। यदि तुमने अल्लाह (ईश्वर) को पा लिया तो क्या कहोगे ? (उस ब्रह्मानंद में मौन ही रहना होगा।) और यदि कुछ कहोगे भी तो किसका उपकार करोगे ? जिसका तीन लोक में विस्तार है वह तो वट के बीज ही में सूक्ष्म रूप से रमण कर रहा है। अल्लाह को पाने के छः भेद हैं, उस भेद को कुछ कुछ जान भी लिया जा सकता है। किंतु यदि उस भेद को उलट कर तुम केवल अपने मन को बेध लो तो उस अभंग और अछेद (जिसको विभाजित नहीं कर सकते और जिसका छेदन नहीं कर सकते) ब्रह्म को पाओगे। तुर्क (मुसल्मान) 'तरीकत' जानता है और हिंदू वेद और पुराण पढ़ता है। ये लोग अपना मन समझाने के लिए थोड़ा बहुत ज्ञान पढ़ते हैं। मैंने सब से प्रारंभ में 'ओ' ध्वनि से परिपूर्ण ओंकार को ही जाना है। किंतु (लोग) उसे लिख कर मिटा देते हैं और उसे मानते भी नहीं है। वास्तव में जो 'ओ' ध्वनि के ओंकार को देख पाते हैं उसे देखने के अनंतर फिर किसी तरह से भी उनका विनाश नहीं हो सकता।

क—से (सहस्रदल) कमल में कुंडलिनी-किरण का प्रवेश हुआ। और सहस्रार के चंद्र का उदय होने पर भी पंखुड़ियां संपुटित नहीं हुईं। और वहाँ जो उस सहस्र-दल कमल का रस (अमृत) प्राप्त हुआ उसका आनंद अकथनीय है। उसे कह कर क्या समझाया जाय ?

ख—से खोड़ि (अर्थात् षट्चक्र) की अनुभूति हुई। और उन षट्चक्रों को छोड़ कर दसों दिशाओं में दौड़ने की आवश्यकता नहीं रही। जब जीव ख़सम (स्वामी) को पहिचान कर क्षमा धारण कर लेता है तभी तो वह मुक्त और स्वतंत्र होकर अक्षय पद की प्राप्ति करता है।

ग—से गुरु के वचन की पहिचान होनी चाहिए और उस वचन के अतिरिक्त कोई दूसरी बात सुननी भी नहीं चाहिए। पक्षी की भाँति (किसी वस्तु का सार लेकर) कहीं न जाय। केवल अगह (जो पकड़ा न जा सके ऐसे ब्रह्म को) पकड़ कर गगन में (ब्रह्म-रंध्र या शून्य में) निवास करे।

घ—से वह (ब्रह्म) घट घट में निवास करता है। और घट (वस्तु या शरीर) के फूटने से भी वह कभी घटता (कम होता) नहीं है। यदि उस घट के किनारे तुम लग जाओ तो उस घट को छोड़ कर औघट (विकट स्थान में) दौड़ने की क्या आव-श्यकता ?

ङ—से निग्रहँ (आत्म-संयम) में स्नेह कर अपने संदेह का निवारण करो। किसी प्रकार का निषेध देखकर न भागना यही सब से बड़ा चातुर्य है।

च—से ही यह (संसार का) बड़ा भारी चित्र बनाया गया है। इस चित्र को छोड़कर चित्रकारी की ओर चैतन्य बनो। यह (संसार की) उलझन तो चित्र-विचित्र (रंग-बिरंगी) है। इस चित्र को छोड़कर इसके चित्रकार में ही चित्त लगाओ।

छ—यह तो छत्रपति (ईश्वर) के पास है। इसी 'छ' में छक कर और सारी आशाओं को छोड़ कर क्यों नहीं रहते? रे मन, मैंने तुझे क्षण क्षण समझाया। तूने उसे (ईश्वर) को छोड़कर अपने आपको क्यों (संसार के) बंधन में डाल दिया है?

ज—से यदि जीते-जी हम शरीर (की इंद्रियों) को जला दें तो यौवन के जलाने से उसे (ब्रह्म से मिलने की) युक्ति मिल जायगी। इस प्रकार सुलग कर जब आदमी जल जाता है तब कहीं जाकर वह उज्ज्वल ज्योति प्राप्त करता है।

झ—से (इस संसार से) उलझ-सुलझ नहीं जाना चाहिए। हमेशा इससे झिझक कर ही रहना चाहिए क्योंकि इसका कोई प्रमाण या विश्वास नहीं है। खीझ खीझ कर दूसरों को समझाने की क्या आवश्यकता! झगड़ा करने से झगड़ा ही हाथ आवेगा।

ञ—जो तेरे शरीर के अत्यंत निकट है उसे छोड़कर दूर क्यों जाता है? जिस कारण (तूने) संसार को खोजा, वह तो निकट ही मिल गया?

ट—इस घट में (इंद्रियों के) बड़े भयानक घाट हैं। तू (ब्रह्म-रंध्र का) दरवाज़ा खोल कर (सहस्रार के) महल में क्यों नहीं चला जाता? उस स्थान को अटल देखकर तू कहीं वहां से टल न जा। जब तू उसी से लिपट कर रहेगा तो तू अपने घट (शरीर) का परिचय प्राप्त कर लेगा।

ठ—से समीप रहने वाला ठग (इंद्रियों का विषय) दूर हो जाता है और ठग के दूर होने पर कठिनता से मन में धैर्य आता है। जिस ठग ने सारे संसार को ठग कर खा लिया उस ठग को ठगने वाला मन स्थल पर आ गया।

ड—डर उत्पन्न होता है और डर विनष्ट होता है। उसी एक डर में (दूसरा) डर समा कर रहता है। यदि तू एक बार डरेगा तो फिर (सदैव) तुझे डर लगेगा; किंतु यदि तू एक बार निडर हुआ तो डर तेरे हृदय से (सदैव के लिए) भाग जायगा।

ढ—यदि तू ढूँढ़ता है तो ढिग (अपने समीप ही) ढूँढ़, दूसरी जगह क्यों ढूँढ़ता है? (दूसरी जगह) ढूँढ़ते ढूँढ़ते तेरे प्राण ही ढह गए (नष्ट हो गए)। जिस समय सुमेरु (मेरु दंड) पर चढ़ कर तू ढूँढ़ने आया तो जिसने इस गढ़ को गढ़ा है, वही उस गढ़ में पाया गया।

ण—रण में सम्मुख होकर जूझने की भाँति मनुष्य को स्नेह करना चाहिए उस (ब्रह्म) से जो न मरता है न जीता है। और उसी का जन्म धन्य समझना चाहिए जो केवल एक (मन) को मारता है और अनेक (इंद्रियों) को यों ही छोड़ देता है।

(क्योंकि वह समझता है कि मन को मारने से इंद्रियां स्वयं मर जायँगी।)

त—(ब्रह्म तो) अ-तर है जो किसी प्रकार तरा नहीं जा सकता। उसका शरीर समस्त त्रिभुवन में समाया हुआ है। यदि समस्त त्रिभुवन मन में समा जावे तो तत्व से तत्व मिल कर सुख प्राप्त हो सके।

थ—(ब्रह्म) अथाह है, उसकी थाह नहीं पाई जा सकती। वह तो अथाह है किंतु यह (संसार) स्थिर नहीं रहता। जो थोड़े ही स्थल में (शून्य में) अपने स्थान को बनाना प्रारंभ करता है वह बिना ही सहारे मंदिर (शरीर) को स्थिर कर लेता है।

द—इस विनाश होने वाले संसार को देख कर उसमें, न देखे जाने वाले (ब्रह्म) के समान ही विचार रखना चाहिए। जब दशमद्वार (ब्रह्म-रंध्र) में (कुंडलिनी की) कुंजी दोगे तभी दयालु (ब्रह्म) का दर्शन कर सकोगे।

ध—अर्ध (नीचे) और ऊर्ध्व (ऊपर) का निर्णय करते हुए देखोगे कि अर्ध भाग ऊर्ध्व भाग में निवास करना चाहता है। किंतु यदि अर्ध भाग के बदले ऊर्ध्व भाग (मिलने के लिए) गतिशील हो तो अर्ध भाग और ऊर्ध्व भाग दोनों ही मिल जायँ (और मिल कर एक हो जावें) तथा सुख की प्राप्ति हो।

न—(उस ब्रह्म की ओर) रात दिन निरखते (निरीक्षण करते) ही व्यतीत होता है। और निरखते निरखते नेत्र लाल हो जाते हैं। जब देखने के इस अभ्यास से (उस ब्रह्म की) प्राप्ति हुई तब (मैंने) दृश्य और दर्शक दोनों को एकाकार कर लिया।

प—अपार (जो ब्रह्म) है उसका पार नहीं पाया गया तो (उसकी) परम ज्योति से परिचय प्राप्त किया गया। जब पांचों इंद्रियों का निग्रह किया गया तो पाप और पुण्य दोनों से निस्तार या छुटकारा मिल गया।

फ—बिना फूल के फल (षट् चक्र) होते हैं, उसके फंकों (खंडों) को जो कोई देख ले तो उस पर विचार करते ही (संसार की) घाटी में नहीं पड़ना पड़ता और उस फल के खंड-खंड सारे शरीर को खंड-खंड कर देते हैं। (शारीरिक वासनाएँ नष्ट-भ्रष्ट हो जाती हैं।)

ब—जब ब्रह्म-विंदु उस महाविंदु (ब्रह्म) से मिलाया तो दोनों विंदुओं के मिलने से कभी वियोग की अवस्था आ ही नहीं सकी। जो सच्चा बंदा (सेवक) है उसे ईश्वर की वंदना ही ग्रहण करनी चाहिए और स्वयं बंदक (बंधन करनेवाला या बाँधने वाला) होकर बंधन की वास्तविकता का अनुभव करना चाहिए।

भ—अब मैंने जीवन का (भेद) रहस्य उस (ईश्वरीय) रहस्य से मिला दिया है इस लिए भय का नाश होकर मेरे हृदय में भरोसा (विश्वास) आ गया है। जो बाह्य था वही अंतरंग हो गया और रहस्य के प्रकट होने से मैंने उस भूपति (संसार के स्वामी) को पहचान लिया।

म—(संसार के) मूल को ग्रहण करने से ही मन को संतोष होता है और जो वास्तव में मर्मी (रहस्य को जानने वाला) होता है वही मन को जान सकता है। मिलते

हुए मन के मिलने में कोई देर न लगावे। अंत में (मन के मिलने पर) लीन होने में वह (सच्चे) सुख को प्राप्त करेगा। (वास्तव में) मन से ही मनुष्य का काम है, उसी मन के साधने से सिद्धि होगी। अपने मन में कबीर मन से ही कहते हैं कि मन-सी उसे और कोई वस्तु नहीं मिली। यही मन शक्ति है और यही मन शिव है। यही मन पंच तत्व का जीवात्मा है। इसी मन को लेकर जो 'उन्मन' (हठयोग की एकाग्रता में) रहता है, वह तीनों लोकों का रहस्य प्रकट कर सकता है।

य—को यदि तू जानता है तो दुर्बुद्धि को नष्ट कर अपने शरीर रूपी गाँव ही में निवास कर। और (संसार से) युद्ध में प्रवृत्त होकर कभी पीठ मत दिखला, तभी तेरा नाम 'शूर' होगा।

र—जिसने (संसार के) रस को नीरस रूप में समझा उसी ने (नीरस) वीतरागी होकर वास्तविक (ब्रह्मानंद के) रस को पहिचाना। इस (संसार के)रस को छोड़ने से वह (ब्रह्मानंद का) रस प्राप्त हो जाता है। उस रस के पीने से इस (संसार) का रस कभी पसंद नहीं आ सकता।

ल—से मन में इस प्रकार की लव (चाह) लाना चाहिए जिससे अन्य किसी वस्तु से आकर्षित न होकर या अन्य किसी स्थान में न जाकर अत्यंत सुख प्राप्त हो। यदि इस प्रकार की वहां (ब्रह्म में) प्रेम की लौ लगाई जायगी तो तुम अल्लाह को प्राप्त कर लोगे और अल्लाह को प्राप्त कर उसके चरणों में लीन हो जाओगे।

व—से बार बार विष्णु (ब्रह्म) की सेवा करो। विष्णु की सेवा करते हुए (तुम कभी न थकोगे या) तुम्हें कभी पराजय न मिलेगा। मैं उनकी बार बार बलि जाता हूँ जो विष्णु संबंधी यश-गान करते हैं। विष्णु (ब्रह्म) की प्राप्ति होने पर सभी प्रकार का सुख प्राप्त होगा।

'व' से उसी (ब्रह्म) को जानना चाहिए। उसी के जानने से यह शरीर (सफल) होगा। जब यह (शरीर) और वह (ब्रह्म) मिलेगा तो इन दोनों को मिलते हुए कोई भी न जान सकेगा।

स—(श) से तुम्हें ठीक तरह से खोज करनी चाहिए और तुम शरीर और ब्रह्म-परिचय के बीच की अवस्था में निरोध करो! यदि शरीर और ब्रह्म-परिचय इन दोनों का भाव उत्पन्न हो गया तो (तुम्हारे शरीर में) त्रिभुवन-पति संपूर्ण रूप से व्याप्त हो जायगा।

ख—(ष) जो कोई उस ब्रह्म की खोज में (पूर्णतः) लग जाता है वह उसी खोज में (लीन हो जाता है) और फिर उसका जन्म नहीं होता। जो समझते-बूझते हुए उसकी खोज पर विचार करता है उसे संसार-सागर पार करते हुए देर नहीं लगेगी।

स—जो उस ब्रह्म की सेज अपनी सेज के साथ सुसज्जित करता है। वही वास्तव में (इस संसार के) संदेह का निवारण करता है। वह (संसार के) क्षणिक सुखों को

छोड़ कर (ब्रह्म का) परम सुख प्राप्त करता है और तब इस आत्मा रूपी स्त्री का वह (ब्रह्म) स्वामी कहलाता है।

ह—(वह ब्रह्म इस संसार में) अनेक रूपों में (प्रकट) होता है किंतु उसे (प्रकट) होते हुए कोई नहीं जानता। जब उसे (प्रकट) होते हुए (देख सको) तभी मन को संतोष होता है। इस प्रकार वह (ब्रह्म संसार में) तो है किंतु यदि उसे इस (प्रकट होते हुए) रूप में कोई देख सके तब संसार में केवल वही होगा (उसी की सत्ता रहेगी।) और यह (मनुष्य) कुछ न होगा।

ल—(ल) इस संसार में 'लव' 'लव' (चाह) करते हुए सब लोग फिरते हैं। इसीलिए उन्हें बहुत दुःख सहन करना पड़ता है। किंतु जो लक्ष्मीपति (विष्णु या ब्रह्म) से अपनी लव लगाते हैं उनका सारा दुःख मिट जाता है और वे सब प्रकार का सुख प्राप्त करते हैं।

ख—(क्ष) (इस संसार में) कितने लोग (यों ही) नष्ट और समाप्त होते चले गए किंतु वे नष्ट और समाप्त होते हुए भी नहीं चेते। (उनकी आँखें नहीं खुलीं।) अब यदि तेरे मन में आवे तो इस संसार को पहिचान और जिस स्थान से (ब्रह्म से) तेरा वियोग हुआ है, वहीं स्थिर रह। तूने इस प्रकार बावन अक्षर जोड़ कर बनाये किंतु तू इनमें से एक अक्षर भी नहीं पहिचान सका। कबीर तो केवल सत्य का शब्द कहता है। यदि (कोई) पंडित हो तो (उस शब्द को)समझ कर भय रहित (संसार में) रहे। पंडित और ज्ञानवान लोगों का यह व्यवहार होता है कि वे तत्व का विचार करें। फिर जिसके हृदय में जैसी बुद्धि होगी, कबीर कहता है, वह उसी प्रकार जानेगा।

थिंती (तिथि)

७६

पंद्रह तिथियां और सात दिन होते हैं किंतु कबीर कहता है कि इनका वार-पार नहीं। (ये अपरंपार हैं।) जो साधक और सिद्ध इस रहस्य को देख पाते हैं वे स्वयं कर्ता और देवता हो जाते हैं।

थिती। अमावस में अपनी आशा का निवारण करना चाहिए और अंतर्यामी राम की सेवा करनी चाहिए। जीते जी मोक्ष-द्वार पर जाओ और अपनी आत्मा के सार और शब्द-तत्व का अनुभव करो। मैं गोविंद के चरण-कमलों के रंग में रँग गया। महात्माओं के प्रसाद से मेरे मन (के समस्त भाव) निर्मल हो गए और हरि के कीर्तन में मैं प्रतिदिन जागता रहा।

परिवा—(प्रतिपदा के दिन) प्रियतम (प्रभु) का विचार करो। (देखोगे कि) घट (शरीर) में अपार अघट (निराकार प्रभु) क्रीड़ा करेगा। काल (मृत्यु) की कल्पना उसे कभी नहीं खा सकेगी और वह आदि पुरुष में लीन होकर रहेगा।

द्वितीया—को (साधक) अपने अंगों का सार खींचना जाने और माया और ब्रह्म के साथ समान रूप से रमण करे। (परिणाम-स्वरूप) वह साधक न तो (अपने रूप में) बढ़ेगा और न घटेगा। वह कुल-रहित और माया-रहित निरंजन से समरूप होकर रहेगा।

तृतीया—को तीनों गुण (सतोगुण, रजोगुण और तमोगुण) को समान रूप से स्थिर कर ले। (फलतः) वह आनंद का मूल परम पद प्राप्त करेगा। साधु-संगति से उसके हृदय में विश्वास उत्पन्न होगा और उसे आंतरिक और बाह्य प्रकाश मिलेगा।

चतुर्थी—को चंचल मन को पकड़ो और काम, क्रोध के साथ कभी न बहो। जल और थल में तुम अपने आपको देखोगे और अपने मन में स्वयं अपना जाप करोगे।

पंचमी—को पंच तत्वों के विस्तार में कनक और कामिनी दोनों का व्यवहार देखो। (इन्हें देखकर) जो पवित्र प्रेमा-सुधा का रस पान करता है उसे वृद्धावस्था और मरण का दुःख नहीं होता।

षष्ठी—को (साधक) छः चक्रों की छहों दिशाओं में दौड़ता है किंतु बिना (उन चक्रों के) परिचय के वह स्थिर नहीं रहता। यदि तुम द्विविधा को मिटाकर क्षमा को पकड़े रहो तो कर्म और धर्म की पीड़ा न सहोगे।

सप्तमी—को अपनी वाणी को पवित्र बनाना जानो और आत्म-ब्रह्म को प्रमाण रूप से मानों। इससे समस्त संशय छूट जायगा और दुःख का नाश होगा। तुम (ब्रह्म-रंध्र के) शून्य-सरोवर में (ब्रह्मानंद का) सुख पाओगे।

अष्टमी—अष्टधातु से बना हुआ यह जो शरीर है उसमें परम ऐश्वर्यवान कुल-रहित निरंजन ब्रह्म है। गुरु से पहुँचा हुआ ज्ञान यह भेद बतलाता है कि यदि इस काया में (साधक) उल्टा रहे अर्थात् अपनी बहिर्मुखी इंद्रियों को अंतर्मुखी कर ले तो वह अभंग और अछेद (जो भंग न किया जा सके और जिसके टुकड़े न किए जा सकें) हो जायगा।

नवमी—को नवों द्वारों की साधना करनी चाहिए और चंचल मनोवृत्तियों को बंधन में रखना चाहिए। लोभ, मोह और अन्य विकारों को भूल जाना चाहिए और युग युगान्तर जीते हुए अमर (ज्ञान का) फल खाना चाहिए।

दशमी—भ्रम छूटने पर जब गोविंद से मिलाप होगा तो दसों दिशाओं में आनंद छा जायगा। वह गोविंद ज्योति-स्वरूप है और उपमा रहित तत्त्व है। वह 'मल' और 'अमल' से परे है। (न उसके समीप) छाया है, न धूप है।

एकादशी—को एक ही दिशा में प्रधावित होना चाहिए। उससे शरीर-जन्म का संकट फिर न आने पावेगा। (फलतः) शरीर शीतल और निर्मल हो जाता है और दूर बतलाया गया (प्रभु) समीप पाया जा सकता है।

द्वादशी—को (शून्य में) बारह सूर्य उदित होते हैं और रात दिन अनाहत नाद का तूर्य (मंगलमय बाजा) बजने लगता है। उस समय तीनों लोकों का स्वामी दृष्टिगत

होता है और फिर आश्चर्य की बात यह होती है कि जीव स्वयं शिव (ब्रह्म) बन जाता है।

त्रियोदशी—को अगम (ब्रह्म) के यश-गान में प्रवृत्त हो जाओ। अर्ध और ऊर्ध्व के बीच में उसे एक रूप से (सम) पहिचानना चाहिए। न वह नीचा है, न ऊँचा; न वह मानी है, न अमानी। इस प्रकार राम समान रूप से सब कहीं व्यापक हैं।

चतुर्दशी—को (देखो कि) मुरारि (ब्रह्म) चौदह लोकों के मध्य रोम रोम में निवास करते हैं। समत्त्व और संतोष का ध्यान धरो और इस प्रकार ब्रह्म-ज्ञान को एकत्र कर (नथनी कर) कहना चाहिए।

पूर्णिमा—में पूर्ण चंद्र आकाश में शोभित होता है। उसकी कलाओं का विकास होता है और सहज प्रकाश फैल जाता है। कबीर कहता है कि आदि और अंत के मध्य में स्थिर होकर रहना चाहिए तभी (साधक) सुख-सागर में लीन होता है।

वार

७७

रोज़ रोज़ (या बारंबार) हरि के गुण गाओ और गुरु से प्राप्त किये गए रहस्य से हरि को प्राप्त करो।

आदित्य—(रविवार) को भक्ति का आरंभ करो और शरीर रूपी मंदिर को संकल्प के स्तंभ से सहारा दो। यद्यपि (भजन में) रात-दिन अखंड (संगीत) स्वर हृदय में प्रवेश करता रहे तथापि वायु का अनाहत वेणु सहज में (मानस की स्वाभाविक और अंतरंग प्रवृत्ति में) अवश्य होता रहे।

सोमवार—को (सहस्रार के) चंद्र से अमृत का स्राव होना चाहिए जिसके स्वाद-मात्र से (मूलाधार चक्र का) समस्त विष नष्ट हो जाता है। जब (मुख) द्वार में वाणी रुकी रहेगी तभी मन उस अमृत को पीकर मतवाला बना रहेगा।

मंगलवार—को माहित्र ऋचा का जाप करे। पांच (इंद्रिय रूपी) चोरों (को बाँधने) की रीति समझे। अपना घर छोड़ कर बाहर न जाय, नहीं तो राजा (राम) रुष्ट हो जायगा।

बुधवार—को अपनी इस बुद्धि का प्रकाश करना चाहिए कि हृदय स्थित कमल (विशुद्ध चक्र) में हरि का निवास है। उस हरि में गुरु को मिला कर दोनों को समान भाव से जानना चाहिए। और ऊर्ध्व पंकज (सहस्रदल कमल) को सीधा करना चाहिए। (उसके रंध्र-द्वार को कुंडलिनी से खोल कर सीधे अमृत की धार को शरीर में गिराना चाहिए।)

बृहस्पतिवार—को अपने शरीर से (इंद्रियों का) विष दूर बहा देना चाहिए और तीनों देवताओं (ब्रह्मा, विष्णु और महेश) को एक साथ (ब्रह्म) के रूप में लाना चाहिए। बिना यह समझे और बिना इंद्रियों का विष दूर बहाये त्रिकुटी में (भृकुटी का मध्य

स्थान जहाँ आज्ञा चक्र है) तीनों नदियाँ (इडा, पिंगला और सुषुम्णा) मिल कर भी हृदय का कल्मष (पाप) नहीं धो सकतीं।

शुक्रवार—के सहारे (अथवा सुकृत करने वाले सात्विक जनों के सहारे) इस व्रत पर आरूढ़ होना चाहिए और प्रति दिन अपने-आप से (अपनी कलुष भावनाओं से) युद्ध करना चाहिए। पाँचों इंद्रियों को (प्रभु के अनुराग से) सदैव सुर्ख़ (अरुण) रखना चाहिए तभी (प्रभु की ओर आकर्षित दृष्टि के अतिरिक्त) दूसरी दृष्टि कभी शरीर के भीतर प्रवेश न करेगी।

थावर—(शनिवार या शनीचर जो चर न हो अथवा शीघ्रगामी न हो, इसलिए शनि को 'मंद' नाम दिया गया है।) को जो अपना (हृदय) स्थिर करके रखता है वह अपने शरीर में ज्योति के दीपाधार को प्रज्वलित करता है। उससे शरीर के बाहर और भीतर प्रकाश हो जाता है और फल-स्वरूप सभी कर्मों का नाश होता है। जब तक शरीर में (ब्रह्म-ज्ञान के अतिरिक्त) दूसरी टेक है तब तक इस (शरीर रूपी) महल से कोई लाभ नहीं। राम में रमण करते हुए जब उसका रंग लग जाता है तभी, कबीर कहता है, अंग निर्मल होते हैं।

रागु आसा

१

श्री गुरु के चरणों का स्पर्श करके मैं विनय करता हूँ और पूछता हूँ कि मैंने यह प्राण क्यों पाये हैं? यह जीव संसार में क्यों उत्पन्न और नष्ट होता है? कृपा कर मुझे समझा कर कहिए। हे देव, दया करके मुझे सन्मार्ग पर लगाइए जिससे भय का बंधन टूट जाय और (मैं) जन्म-मरण के दुःख से, फिर कर्म के (मिथ्या) सुख से और जीव की योनियों से छूट जाऊँ। मेरा मन माया-पाश के बंधन को नष्ट नहीं करता और शून्य को पाने की चेष्टा नहीं करता। अपने आत्म-पद निर्वाण को नहीं पहिचानता और इस प्रकार ढीठ होने से नहीं चूकता। उससे जो कुछ भी कहा जाता है, वह प्रतिफलित नहीं होता और यदि प्रतिफलित होता भी है तो वह उसको जानता नहीं है, इस प्रकार भाव और अभाव दोनों से रहित है। उदय (उत्पन्न होने) और अस्त (नष्ट होने) की बुद्धि मन से नष्ट हो गई है फिर भी वह (मन) सदैव अपनी स्वाभाविक (कलुषित) मनोवृत्तियों में लीन रहता है। (आपकी कृपा से) जब प्रतिबिंब (जीवात्मा) बिंब (परमात्मा) में मिल जायगा और यह जल से भरा हुआ घड़ा (शरीर) नष्ट होगा तब, कबीर कहता है, (तुम्हारे) ऐसे गुण से भ्रम भाग जायगा और तभी मन शून्य में लीन हो जायगा।

२

(बनारस के संतों का वर्णन करते हुए कबीर कहते हैं—) साढ़े तीन-तीन गज़ की धोती पहने हुए, पैरों में तिहरे तागे लपेटे हुए, गले में जपमाला डाले हुए और हाथ में

लोटे लिए हुए इन कम्बख़्तों को हरि के संत नहीं कहना चाहिये। ये लोग तो बनारस के ठग हैं। मुझे ऐसे संत अच्छे नहीं लगते जो टोकरे भर-भर के पेड़ा गटक जाते हैं। बर्तन माँज कर ऊपर खाना खाते हैं (कि कहीं किसी की भोजन पर छाया न पड़ जाय) और लकड़ी धो कर जलाते हैं। पृथ्वी को खोद कर दो चूल्हे बनाते हैं और फिर सब आदमी मिल कर खाते हैं। वे पापी (अपराध करके) अपराधी बने हुए सदा (यहाँ से वहाँ) घूमते रहते हैं और मुख से ही वे एक दूसरे को अछूत कहते हैं। (अर्थात् किसी का मुख ही देखकर वे छूत मान लेते हैं और स्नान करते हैं।) इस प्रकार वे अभिमानी हमेशा फिरते रहते हैं और अपने सारे कुटुंब को (अपने साथ ही पाप में) डुबाते हैं। वे जहाँ से (द्रव्य आदि) लाते हैं, वह (उसी प्रकार से वहीं या वैसे ही कामों में) नष्ट हो जाता है और वे उसीके अनुसार कर्म भी करते फिरते हैं। कबीर कहता है, (बनारस के इन संतों को छोड़कर) जो सतगुरु से भेंट करता है वह फिर जन्म लेने के लिए (संसार में) नहीं आता।

३

मेरे पिता ने मुझे आश्वासन दिया। मुझे सुखदायक सेज दी और मुख में अमृत (के समान भोजन) दिया। उस पिता को मैं अपने मन से कैसे भुला दूँ? मैं न (इस मर्यादा के) आगे जाऊँगा और न अपनी बाज़ी हारूँगा। (न जीवन में असफल होऊँगा।) मेरी माता मर गई किंतु मैं फिर भी सुखी हूँ। मैं दगली (मोटे वस्त्र की अंगरखी) भी नहीं पहनता फिर भी मुझे पाला (ठंड) नहीं लगता। (अर्थात् पिता के दुलार ने माँ के अभाव की पूर्ति कर दी है।) मैं उस पिता की बलि जाता हूँ जिनसे मैं उत्पन्न हुआ हूँ। उन्होंने पंच (इंद्रियों) से मेरा साथ छुड़ा दिया है। अब मैंने पंच (इंद्रियों के विष) को मार कर पैरों के नीचे दबा दिया है और हरि-स्मरण ही में मेरा तन और मन भीन रहा है। हमारा पिता बहुत बड़ा गोसांई (अतीत या जितेंद्रिय) है। मैं (पापी) उस पिता के पास क्यों कर (किस प्रकार) जाऊँ? यदि मुझे सतगुरु मिल जायँ तो वे मेरा पथ-प्रदर्शन कर देंगे विशेष रूप से जब जगत-पिता मेरे मन को अच्छे लगने लगे हैं। (हे पिता) मैं तुम्हारा पुत्र हूँ और तुम मेरे पिता हो। एक ही स्थान पर हम दोनों निवास करते हैं। किंतु सेवक कबीर ने तो दोनों को (अपने को और पिता को) एक ही समझ रक्खा है क्योंकि गुरु के प्रसाद से मुझे सब कुछ ठीक तरह से दीखने लगा है।

४

(यह माया का वर्णन है।) एक पात्र या पत्तल भर खाने के टुकड़े (उरकट-कुरकट) और एक पात्र भर पानी है। उसे खाने के लिए चारों ओर से पंच जोगी बैठे हैं और बीच में एक नकटी रानी है। (तात्पर्य यह कि केवल एक शरीर है और उसका उपभोग करने के लिए पाँच इंद्रियाँ हैं और बीच में माया है।) वाह (हूँ) इस नकटी का नीखरा बहुत बढ़ गया है! किसी विवेकी (ज्ञानवान) को तो तूने नहीं काटा? इस नकटी

(मर्यादा-हीन) माया का निवास सभी स्थानों में है और इसने सभों का शिकार (अहेर) कर मार डाला है। यह (माया) सब संसार की बहन और भांजी बन कर बैठी है (जिसके सभी लोग पैर पड़ते हैं।) किंतु जिन लोगों ने इसे वरण करके स्त्री बना लिया है उनकी यह दासी हो गई है। हमारा स्वामी (गुरु) बहुत विवेक-पूर्ण है और स्वयं संत-रूप से प्रसिद्ध है। वही हमारे माथे पर स्थित है। (अर्थात् रक्षक है।) हमारे निकट (उसे छोड़ कर) और कोई नहीं आ सकता। (मेरे गुरु ने उस माया की) नाक काट ली, कान काट लिए और उसे नष्ट-भ्रष्ट करके डाल दिया है। कबीर कहता है, यह तीनों लोकों की प्रियतमा (माया) संतों की परम शत्रु है।

५

योगी, यती, तपस्या करने वाले और संन्यासी अनेक तीर्थों में भ्रमण करते हैं। वे लुंजित (लुंचित—जिनके शरीर के केश उखाड़ लिए गए हैं।) अथवा मुंजित (मूंज की मेखला पहने हुए हैं।) या मौन होकर जटा रखाए हुए हैं किंतु (इतना सब होते हुए भी) अंत में उन्हें मरना पड़ता है। इसलिए (केवल) राम की सेवा करनी चाहिए। जिसकी जिह्वा में राम-नाम का प्रेम है उसका यम क्या कर सकता है? जो लोग शास्त्र, वेद, ज्योतिष और अधिक से अधिक व्याकरण जानते हैं, और जो लोग तंत्र, मंत्र और सभी ओषधियाँ पहिचानते हैं, उन्हें भी अंत में मरना पड़ता है। जिन लोगों को राज्य का उपभोग प्राप्त है; छत्र, सिंहासन और अनेक सुंदर स्त्रियों का संग सुलभ है और पान, कपूर और सुगंधित चंदन उपलब्ध है, उन्हें भी अंत में मरना पड़ता है। मैंने वेद, पुराण और सभी स्मृतियाँ खोज डालीं, किसी के द्वारा भी उद्धार नहीं हो सकता इसलिए कबीर कहता है, केवल इस राम का जाप करो जिससे तुम अपना जन्म और मरण मिटा सको।

६

हाथी रवाब बजाता है, बैल पखावज और कौआ ताल (या करताल) बजाता है। गधा लंबा वस्त्र पहन कर नाचता है और भैंसा भक्ति करता है। राजा राम ने ककड़ी के बड़े पकाये हैं। किन्हीं (वास्तव में) समझने वाले ने उन्हें खाए हैं। सिंह घर में बैठ कर पान लगा रहा है, घीस (बड़ा चूहा) उन पानों की गिलौरियाँ ला रहा है। चूहे का बच्चा घर घर में मंगल गा रहा है और कछुवा शंख बजा रहा है। यह सब उत्सव इसलिए हो रहा है कि उच्च कुलोद्भव पुत्र (जीवात्मा) विवाह करने के लिए चला आ रहा है और उसके लिए सोने का मंडप (शरीर) छाया गया है। वेदी पर परम सुंदर कन्या (माया) है जिसका गुण खरगोश और सिंह गा रहे हैं। कबीर कहता है कि ऐ संतो, सुनो (यह आश्चर्य की बात है कि) कीड़े ने पर्वत खा लिया है और कछुआ कहता है कि (इस विवाह में) अंगार भी चंचल हो रहा है और उलूकी आध्यात्मिक उपदेश सुना रही है। [टिप्पणी—जीवों का यह रूपक कबीर के रूपक-रहस्य की विशेषता है। जीवात्मा और माया का विवाह होने पर इंद्रियाँ उत्सव मनाने लगती

हैं। हाथी, बैल, कौआ, गधा और भैंसा ये कर्मेन्द्रियों के रूप में हैं और सिंह, घूस, चूहा, कछुआ और शशक ये ज्ञानेन्द्रियों के रूप में हैं। यहाँ जिस क्रिया-कलाप का वर्णन है, वह विवाह से संबंध रखता है। 'कीड़े ने पर्वत खा लिया' का तात्पर्य है—देह ने आत्मा को निगल लिया, 'अंगार भी चंचल हो गया' का तात्पर्य है— आध्यात्मिक अनुराग संसार के विषयों की ओर आकृष्ट हो गया और 'उलूकी आध्यात्मिक उपदेश सुना रही है' का तात्पर्य है—अज्ञता धार्मिक स्वाँग भर रही है। 'ककड़ी के बड़े' का तात्पर्य है—सच्चा ज्ञान। अंतिम पंक्ति का पाठ होना चाहिए : 'कछुआ कहै अंगार भि लोर उलूकी सबदु सुनाइआ'।]

७

बटुवा तो एक (शरीर) है जिसमें बहत्तर (नाड़ियों की) आधारियाँ (लकड़ी की टेवकी जिसका सहारा लेकर साधू जन बैठते हैं।) हैं और जिसका एक ही (ब्रह्म-रंध्र) द्वार (या मुँह) है। ऐसे बटुवे के साथ जो नौ खंड की पृथ्वी (समस्त पृथ्वी) माँग लेता (अधिकार कर लेता) है, वही सारे संसार में (सच्चा) योगी है। ऐसा योगी नवों निधि प्राप्त करता है जो नीचे (मूलाधार चक्र) का ब्रह्म ऊपर (सहस्रदल) में ले जाता है। ऐसा योगी ध्यान ही को सुई बनाकर, उसमें शब्द का तागा भाँज कर डालता है और ज्ञान रूपी खिंथे (वस्त्र) को सीता है। वह पंच तत्व का तिलक करता है और गुरु के दिखलाए हुए मार्ग पर चलता है। वह दया की फावड़ी (से ज़मीन साफ़ कर) काया की धूनी (बनाता है) और उसमें अपनी (ज्ञान) दृष्टि की आग जलाता है। उस (ब्रह्म) का भाव हृदय के भीतर लेकर चारों युगों का त्राटक लगाता है। इस शरीर में जिसने प्राण दिए हैं उस राम का नाम ही सब योग की सामग्री है। कबीर कहता है, जो उस राम की कृपा धारण करता है वही सच्चा निशाना लगा सकता है। (सच्चा योग कर सकता है।)

८

हिंदू और मुसलमान ये (अलग अलग) कहाँ से आए ? और किसने यह (धर्म) पथ चलाया ? ऐ मूर्ख, अपने हृदय में विचार कर कि बहिश्त और दोज़ख़ किसने पाई ? ऐ क़ाज़ी, तूने किस क़ुरान का उपदेश दिया है ? तूने पढ़ते-गुनते हुए सब लोगों को (भुलावा दे दे कर) इस प्रकार नष्ट किया कि किसी को अपने (विनाश का) पता ही नहीं चल पाया। यदि तू शक्ति से स्नेह कर (अर्थात् हिंसा पूर्वक) सुन्नत करता है तो मैं इसे स्वीकार नहीं करूँगा। यदि ख़ुदा मुझे मुसलमान बनायेगा तो मेरी सुन्नत आप से आप हो जायगी। और यदि सुन्नत करने से ही कोई मुसलमान होता है तो स्त्री का क्या करेगा ? (उसकी सुन्नति तो हो ही नहीं सकती।) अर्धांगिनी स्त्री तो छोड़ी भी नहीं जा सकती, इसलिए हिंदू ही रहना उचित है। (ऐ क़ाज़ी) तू क़ुरान का पढ़ना छोड़। अरे पागल, तू राम का भजन कर। तू बहुत अत्याचार कर रहा है। कबीर ने तो राम की टेक ही पकड़ी है। मुसलमान लोग (समझा समझा कर) थक-पच गए।

९

जब तक दिए के मुख में बत्ती और तेल है (अर्थात् जीवन है) तब तक सब कुछ दिखलाई पड़ता है। जैसे ही तेल जल जाता है वैसे ही बत्ती (जलने से) रुक जाती है और सारा महल (शरीर) सूना हो जाता है। (फिर तो) ऐ पागल, तुझे एक घड़ी भी कोई नहीं रखता ! इसलिए तू उसी राम-नाम का जाप कर। कह, तू किसकी माता है, किसका पिता है और किस पुरुष की स्त्री है ? जब तेरा शरीर नष्ट होता है तो कोई बात ही नहीं पूछता। 'निकालो' 'निकालो' (का शब्द) ही होता है। जब तेरे बंधु-बांधव तेरी अरथी ले जाते हैं तो देहली पर बैठ कर माता रोती है और बाल बिखराए हुए स्त्री रोती है किंतु यह जीवात्मा अकेला ही जाता है। कबीर कहता है, हे संतो, सुनो। इस भवसागर में रहते हुए, मुझ सेवक के प्रति अत्याचार हो रहा है और हे गुसाँई, मेरे सिर पर से यम नहीं हटता। (या मृत्यु नहीं टलती।)

१०

सनक और सनंदन ने उसका अंत नहीं पाया। ब्रह्मा ने भी वेद पढ़-पढ़कर अपना जन्म गँवा दिया। इसलिए हे भाई, यदि हरि की खोज करनी है (अथवा उसके रहस्य का मंथन करना है) तो इस प्रकार मंथन करो कि हाथ से उसका तत्व न जाने पावे। (इस मंथन के लिए कहीं बाहर जाने की आवश्यकता नहीं है।) इसके लिए शरीर ही की मटकी करनी चाहिए और मन ही में मंथन होना चाहिए। इस मटकी में शब्द का रस ही सुसज्जित करना (भरना) चाहिए। यदि मन के (सात्विक) विचारों से हरि-मंथन किया जायगा तो गुरु की कृपा से अमृत की धारा प्राप्त होगी। कबीर कहता है, जो धार्मिक आचार्य निडर होकर इस प्रकार (मंथन का) कार्य करता है वह राम-नाम के सहारे इस भव-सागर के पार उतर जाता है।

११

(जीवन की) बत्ती सूख गई और तेल समाप्त हो गया। (साँस का) बाजा नहीं बज रहा है। (जीवात्मा रूपी) नट जो सो गया है ! अग्नि बुझ गई और धुआँ भी नहीं निकला। जीवात्मा एक परमात्मा में रम गया, अब कोई दूसरी वस्तु ही नहीं रह गई। तार के टूटने पर रबाब नहीं बजता। उस (परमात्मा) को भूल कर (जीवात्मा ने) अपना ही काम बिगाड़ा। (संसार का) कथन करना, बोलना, कहना और कहलाना वास्तविक रूप में मिथ्या समझते हुए भी (उस ईश्वर का गुण) गाना भूल गया ! कबीर कहता है, जो अपनी पंच (इंद्रियों) को चूर कर लेते हैं। उनसे परम पद दूर नहीं रह जाता।

१२

पुत्र जितने अपराध करता है; उतने माता अपने हृदय में नहीं रखती। हे राम, मैं तेरा बालक हूँ। मेरे अवगुणों का नाश क्यों नहीं करता ? यदि (बालक) अत्यंत क्रोध कर (उस पर) दौड़ता भी है तो माता उसे अपने चित्त में स्थान नहीं देती। चिंता के आवर्त्त में मेरा मन पड़ गया है। बिना (ईश्वर के) नाम के मैं कैसे पार उत-

रहूँगा ! (हे राम) मेरे शरीर में सदैव पवित्र मति दो जिससे सुख के साथ स्वाभाविक रूप से कबीर तुम में रमण करे।

१३

हमारी हज तो गोमती के किनारे है जहाँ हमारा पीतांबर गुरु निवास करता है। वाह वाह, वह कितना अच्छा गाता है ! (उसके द्वारा लिया गया) हरि का नाम मेरे मन को अच्छा लगता है। उसकी सेवा नारद और शारदा द्वारा होती है और उसके समीप ही उसकी स्त्री कमला दासी बन कर बैठती है। मैं अपने कंठ में माला और जिह्वा में राम का नाम हजार बार लेकर उसे प्रणाम करता हूँ। कबीर कहता है, मैं राम के गुण गाता हूँ और हिंदू और मुसलमान दोनों को समझाता हूँ (कि दोनों का ईश्वर एक ही है।)

१४

मालिनी (पूजा के लिए फूल) पत्ती तोड़ती है, किंतु (यह नहीं जानती) कि पत्ती पत्ती में जीवात्मा है। प्रत्युत जिस पत्थर (की मूर्ति) के लिये वह पत्ती तोड़ती है वही पत्थर (की मूर्ति) निर्जीव है। मालिनी यह भूल गई है कि सतगुरु देव जागता है (जो उसे उसका दोष दिखला सकता है।) पत्ती में ब्रह्मा है, डाल में विष्णु है और फूल में शंकर देवता है। जब यह (मालिनी) प्रत्यक्ष रूप से इन तीनों देवताओं को तोड़ती है तो सेवा किसकी करती है ? (मूर्तिकार ने) पत्थर को गढ़ कर मूर्ति बनाई। उसकी छाती पर पैर रख कर (उसका निर्माण किया।) यदि यह मूर्ति सत्य है तो पहले (उसे) मूर्ति गढ़ने वाले को खाना चाहिये। भात, दाल, लपसी और रवेदार पंजीरी तो भोग लगाने वाले ने उड़ा डाली, इस मूर्ति के मुँह में केवल धूल ही पड़ी। (इस मूर्ति का फिट्टे मुँह !) कबीर कहता है कि मालिनी भूल गई और उसके साथ सारा संसार भुलावे में पड़ गया केवल मैं नहीं भूला ! मेरे स्वामी राम और हरि ने कृपा कर मेरी रक्षा कर ली।

१५

(मेरी आयु के) बारह वर्ष बाल्यावस्था ही में कट गए। बीस वर्ष तक किसी प्रकार का तप नहीं किया। तीस वर्ष तक किसी देवता की पूजा नहीं की फिर वृद्ध होने पर केवल पछताना ही (हाथ) रह गया। 'मेरी-मेरी' करते ही सारा जन्म व्यतीत हो गया ! इस (शरीर रूपी) सागर का शोषण करके (काल) सर्प बलवान हो गया। तू सूखे हुए सरोवर (शरीर) की मेंड़ बाँध रहा है, काटे हुए खेत की रक्षा कर रहा है। चोर (काल) आया और तुरंत ही (चोरी करके) ले गया और तू 'मेरी' कहता हुआ मूर्ख बना घूमता है। तेरे चरण, शीश, हाथ काँपने लगे और तेरे नेत्रों की पुतलियों से व्यर्थ ही आँसू बहते रहते हैं, तेरी जिह्वा से शुद्ध वचन भी नहीं निकलते तब तू धर्म कर्म की आशा करता है ? जब हरि जी कृपा करें तभी 'हरि' का नाम लेकर लाभ-पूर्वक उनमें लौ लगाई जा सकती है। मैंने गुरु के प्रसाद से ही यह हरि (रूपी) धन पाया है। अंत में नाड़ी चली जाने पर (शरीर के निधन पर बिना कष्ट के)

हम यहाँ से चल सकते हैं। कबीर कहता है, रे संतो, अन्न, धन (अथवा धन-वन) यहाँ से कुछ भी नहीं ले जा सकते। जब गोपालराय (ईश्वर) का बुलावा आता है तब इस माया के मंदिर (शरीर) को छोड़कर चले जाना ही पड़ता है।

१६

(ईश्वर ने) किसी को तो रेशमी वस्त्र दिए, किसी को निवाड़ से बुने हुए पलँग। किसी को नारियल और प्याज़ तक नहीं दी और किसी को खाने के लिए करैला दिया। इसलिए हे मन, भोजन के संबंध में विवाद मत करो, केवल सत्कर्म ही करते रहो। कुम्हार (ईश्वर) ने एक ही मिट्टी गूँध कर उसमें अनेक प्रकार की कांति उत्पन्न की। किसी में मोती और मुकताहल सुसज्जित किए और किसी में रोग भर दिए। कंजूस को तो धन सुरक्षित करने के लिए दिया है, वह मूर्ख कहता है कि यह धन मेरा है। जब यम का दंड उसके सिर लगता है तो पल भर में निर्णय हो जाता है (कि वास्तव में धन किसका है।) ईश्वर का सच्चा भक्त वही कहलाता है जो (उसकी) आज्ञा (मानने) में सुख पाता है। उसे जो अच्छा लगता है वह सत्य रूप से मानता है और अपना मन शरीर में नहीं लगाता। कबीर कहता है, रे संतो सुनो, इस संसार में 'मेरी' 'मेरी' (की माया) झूठी है। कपड़े की पेटी की ज़ंजीर छूटने पर (काल) चीथड़े या गुदड़ी को फाड़ कर उसमें से चमकीला प्रकाशवान रत्न (आत्मा) ले भागता है।

१७

ऐ काज़ी, तुमसे ठीक तरह बोलते नहीं बनता। हम तो दीन, बेचारे ईश्वर के सेवक हैं और तुम्हारे मन में राजसी बातें भाती हैं। (किंतु इतना समझ लो कि) सर्व प्रथम ईश्वर, धर्म के स्वामी ने कभी अत्याचार करने की आज्ञा नहीं दी। तू रोज़ा रखता है, और नमाज़ गुज़ारता (पढ़ता) है किंतु यह समझ ले कि कलमा (जो वाक्य मुसलमान धर्म का मूल मंत्र है—ला इला इल्लिलाह मुहम्मद उर्रसूलिल्लाह।) पढ़ने से स्वर्ग की प्राप्ति नहीं होती। जो (साधना) कर सकता है वह अपने शरीर के भीतर ही सत्तर काबा (के दर्शन कर सकता) है। नमाज़ का अर्थ है न्याय विचार और कलमा का अर्थ है अक़्ल को जानना। जो पाँचों (इंद्रियों) को मार कर मुसल्ला बिछाता है वही तो सच्चे धर्म को पहिचानता है! अपने स्वामी को पहिचान कर हृदय में दया का संचार कर, मारने का अहंकार ज़रा कम कर। जब तू स्वयं (धर्म को) जान कर दूसरे को भी जना दे तभी तो तू स्वर्ग का भागी होगा। 'मिट्टी एक ही है, उसने ही अनेक रूप रख छोड़े हैं और उस (प्रत्येक रूप) में ब्रह्म है' यही पहिचानने की आवश्यकता है। कबीर कहता है, तूने स्वर्ग छोड़कर नर्क से अपने मन को संतोष दिया है।

१८

आकाश (ब्रह्म-रंध्र) के नगर से एक बूँद भी नहीं बरसती और यह नाद न जाने कहाँ समा जाता है? मैं तो समझता हूँ कि परब्रह्म परमेश्वर माधव परम हंस (जीवात्मा) को लेकर चले जाते हैं। (नहीं तो) ये बाबा जो (कुछ देर पहले) बोलते थे और

शरीर के साथ रहते थे, जो अपनी आत्मा में नृत्य करते थे और कथा-वार्ता कहते थे, वे कहाँ गए? वह बजाने वाला कहाँ गया जिसने शरीर रूपी मंदिर में निवास किया! उसकी आत्मा से अब साखी और शब्द नहीं निकलते क्योंकि उसका सब तेज जो खींच लिया गया है! (उसी तरह) तेरे कान भी व्याकुल हो गए, तेरी इंद्रियों का बल भी थक गया। तेरे हाथ और पैर शिथिल होकर ढलक गए और तेरे मुख से बात भी नहीं निकलती। चोर की तरह ये पंच दूत (पंच तत्व) अपने आप में भ्रमण करते हुए थक गए। मन रूपी हाथी भी थक गया, हृदय भी थक गया जो अच्छा तेज धारण कर रमण करता था। मृतक होने पर दसों बंद छूट जाते हैं, और मित्र और भाई आदि सब को छोड़ना पड़ता है। कबीर कहता है, जो हरि का ध्यान करता है वह जीते जी अपने शरीर के (विषय) बंधन तोड़ देता है।

१६

सर्पिणी (माया) जिसने ब्रह्मा, विष्णु और महादेव को भी छला, उसके ऊपर कोई बलवान नहीं है। यह सर्पिणी निर्मल जल (आत्मा) में घुस गई है, उसे मारो, मारो। जिसने त्रिभुवन को डस लिया, उसे मैंने गुरु के आशीर्वाद से देख लिया। ऐ भाई, तुम 'सर्पिणी' 'सर्पिणी' क्या कहते हो? जिसने 'सत्य' की परख कर ली है, उसीने सर्पिणी का नाश किया है। सर्पिणी से अधिक कोई दूसरी चीज़ मिथ्या या सारहीन नहीं है। यदि सर्पिणी जीत ली जाय तो यम क्या कर सकता है? यह सर्पिणी तो उसी (ब्रह्म) की बनाई हुई है। इसके ऊपर 'बल' और 'अबल' क्या हो सकता है? (यह तो सिर्फ़ उसी ब्रह्म की इच्छा है कि यह सर्पिणी कभी शक्ति-सम्पन्न हो या शक्ति-हीन।) यद्यपि वह शरीर की इसी बस्ती में निवास करती है तथापि गुरु के प्रसाद से कबीर सरलता से उस (सर्पिणी से) मुक्ति पा गए।

२०

कुत्ते को स्मृति सुनाने से क्या (लाभ)? उसी तरह शाक्त (शक्ति के उपासक) के समीप ईश्वर के गुण गाने से क्या (लाभ)? इसलिए तुम केवल राम में ही रमण करो और करते रहो। किसी शाक्त से भूल कर भी (उस राम के संबंध में) कुछ न कहो। कौवे को कपूर चुगाने से क्या (लाभ)? सर्प को दूध पिलाने से क्या (लाभ)? सत्संगति में मिल कर विवेक-बुद्धि होती है जिस तरह पारस के स्पर्श से लोहा स्वर्ण हो जाता है (किंतु इन शाक्तों में कभी परिवर्तन नहीं हो सकता!) शाक्तों और कुत्तों से सभी कुछ कर गुज़रा (समझो।) प्रारंभ से जैसा इनके भाग्य में लिख गया है, वही कर्म ये करते हैं। (ये सत्संगति आदि से नहीं सुधर सकते।) यदि अमृत ले ले कर नीम को सींचो तो कबीर कहता है, उसका (कड़वा) स्वभाव कभी नहीं जा सकता।

२१

जिस रावण ने (अपनी रक्षा के लिए) लंका जैसा क़िला बनाया जिसके चारों ओर समुद्र की खाई-सी बनी थी, उस रावण के घर की ख़बर भी आज किसी को नहीं है। इसलिए (ईश्वर से) क्या माँगते हो, कुछ भी तो स्थिर रहने वाला नहीं है। आँखों

देखते यह सारा संसार चला जा रहा है। जिस रावण के एक लाख पुत्र और सवा लाख नाती थे, उस रावण के घर में आज दिया-बत्ती भी नहीं है। चंद्र और सूर्य जिसका भोजन पकाते थे और अग्नि जिसके कपड़े धोता था (वह रावण कहाँ है?) गुरु की आज्ञा से (हृदय में) राम-नाम ही को स्थान दो जो इस प्रकार स्थिर रहता है कि वह कभी नहीं जाता (उसका कभी विनाश नहीं होता।) कबीर कहता है, रे लोगो सुनो, राम-नाम के बिना मुक्ति नहीं होती।

२२

पहले पुत्र हुआ पीछे माता उत्पन्न हुई और गुरु अपने शिष्य के चरण-स्पर्श करता है। हे भाई, तुम यह आश्चर्य सुनो कि तुम्हारे देखते हुए गाय सिंह को चरा रही है। जल में रहने वाली मछली पेड़ पर जाकर जनती है और आँखों के सामने कुत्ते को बिल्ली ले जाती है। एक पेड़ है जो नीचे तो बैठा हुआ है अथवा जिसके नीचे तो पत्ते हैं और ऊपर जड़ है, ऐसा पेड़ फूल-फलों से परिपूर्ण है। घोड़ा चरता है और भैंस उसे चराने ले जाती है, बैल तो बाहर ही खड़ा रहता है और गोनि घर के भीतर (अपने आप) चली आती है। कबीर कहता है, जो इस पद को समझता है, वह राम में रमण करता है और उसे (संसार का) सारा रहस्य सूझ पड़ता है। [टिप्पणी—यह कबीर की एक उल्टबाँसी है और इसके सारे रूपकों में कार्य-व्यापार की परिस्थिति उलटी बतलाई गई है। आध्यात्मिक पक्ष में इस रूपक में आए हुए नामों का निम्न-लिखित अर्थ लेने से अर्थ-संगति स्पष्ट हो जाती है :—

[पुत्र—जीव। माता—माया। गुरु—शब्द। चेला—जीवात्मा। सिंह—ज्ञान। गाय—वाणी। मछली—कुंडलिनी। तरुवर—मेरुदंड। कुत्ता—अज्ञानी। बिल्ली—माया। पेड़—सुषुम्णा नाड़ी। फल-फूल—चक्र और सहस्रदल कमल। घोड़ा—मन। भैंस—तामसी वृत्तियाँ। बैल——पंच प्राण। गोनि—स्वरूप की सिद्धि।]

२३

जिस माता ने तुझे बिंदु से पिंड का रूप दिया और उदर-ज्वाला से (बचा कर, सुरक्षित करके) अपने पेट में दस मास रक्खा (उस माता के कष्टों पर ध्यान न देते हुए) तू माया के वशीभूत फिर हो गया? रे प्राणी, (संसार-सुखों के) साधारण लोभ के लिए तू अपना रत्नरूपी जन्म क्यों खो रहा है? (ज्ञात होता है कि) पूर्व जन्म की कर्म-भूमि में तूने बीज नहीं बोया। बाल्यावस्था से तू वृद्धावस्था को प्राप्त हुआ। जो होना था सो तो हुआ किंतु जब यमराज आकर तेरे केश पकड़ता है तो तू क्यों रोता है? जब तू जीवन की आशा करता है तब यमराज तेरी साँसों (की गिनती करता हुआ तुझ) को देखता है। कबीर कहता है, यह संसार एक इंद्रजाल है। तू अब भी सँम्हल कर अपने (कर्मों का) पासा फेक।

२४

तन और मन को बार बार सुगंधित पराग-कणों में परिवर्तित कर मैं पाँचों तत्वों को बराती बनाऊँगी और राजा राम के साथ भाँवर (विवाह कर) लूँगी क्योंकि मेरी

आत्मा उन्हीं के रंग में रँगी हुई है। हे सौभाग्यशालिनी नारियो, मंगल गीत गाओ क्योंकि मेरे घर स्वामी राजाराम आए हैं। जिस राम के नाभि-कमल से उत्पन्न होकर (ब्रह्मा ने) वेदों की रचना की और (संसार में) ज्ञान का विस्तार किया, उसी राम को मैंने पति-रूप में पाया है, मेरा इतना बड़ा भाग्य है! इस अवसर पर कितने ही देवता, मनुष्य और मुनिजन आए हैं। मैं तो जानती हूँ कि उनकी संख्या तेतीसों करोड़ है। (उन्हीं के सामने) मुझे एकेश्वर भगवान विवाह कर ले चले हैं—ऐसा कबीर कहता है।

२५

मैं सासु (माया) से प्रताड़ित हूँ किंतु ससुर (गुरु जिन्होंने माया पर अधिकार कर लिया है) को प्रिय हूँ। जेठ (असाधु) के नाम से मैं बहुत डरती हूँ। सखी सहेली (कर्मेन्द्रिय) और ननँद (ज्ञानेन्द्रिय) ने मुझे पकड़ रखा है किंतु मैं देवर (साधु पुरुषों) के सत्संग के बिना व्याकुल और विदग्ध हो रही हूँ। मेरी मति पागल हो गई क्योंकि मैंने राम को भुला दिया। अब मैं अपना जीवन किस प्रकार व्यतीत करूँ? अपने राम के साथ मैं एक ही सेज पर सोई (हृदय में ईश्वर सदैव वर्तमान रहा) किंतु मैं उन्हें आँख से देख भी नहीं सकी। आह, मैं यह दुःख किससे कहूँ! मेरा बाप (अहंकार) सदैव लड़ाई करता रहता है और मेरी माँ (प्रकृति) बहुत मतवाली है। (तब मुझे कैसे शांति मिले?) जब मैं अपने बड़े भाई (सहज) के साथ थी तब मैं अपने प्रियतम (ईश्वर) को अत्यंत प्रिय थी। कबीर कहता है, इन पांचों इंद्रियों का (बहुत बड़ा) झगड़ा है और मैंने उनसे झगड़ते हुए सारा जन्म गँवा दिया। इस झूठी माया ने सब संसार को बाँध रक्खा है लेकिन मैंने तो राम में रमण करते हुए सुख पाया है।

२६

हम अपने घर में नित्य सूत का ताना तानते हैं (कपड़ा बुनते हैं) और तुम्हारे गले में जनेऊ है। तुम तो वेद और गायत्री का पाठ करते हो और हमारे हृदय में गोविंद का निवास है। (तू कहता है) मेरी जिह्वा ही विष्णु है, नेत्र नारायण है और हृदय में गोविंद का निवास है लेकिन जब यम तेरे दरवाज़े आकर पूछ रहा है (जब तू वृद्ध हो गया) तब ऐ पागल, तू क्या मुकुंद का नाम ले रहा है! हम गाय-बैल (आदि जानवर) हैं तो (हे प्रभु) तुम ग्वाले हो जो जन्म जन्म में हमारी रक्षा करते हो। जब तुम हमें संसार-सागर से पार उतार कर नहीं चराते तो तुम हमारे स्वामी कैसे हो? तू ब्राह्मण है, मैं काशी का जुलाहा हूँ, मेरा ज्ञान तू समझ। तूने तो संसार के भूपालों और राजाओं से याचना की है लेकिन मेरा ध्यान सदैव हरि में ही (लगा रहता) है।

२७

संसार का जीवन (ठीक) वैसा ही है जैसा स्वप्न। इस प्रकार जीवन और स्वप्न समान हैं। लेकिन हमने परम निधान (ब्रह्म) को छोड़ कर उस स्वप्न को सच मानते

हुए उसमें गाँठ दे दी है। बाबा (हे गुरु) माया और मोह ने मेरा यह भला (!) किया है कि उसने मुझसे मेरा ज्ञान रूपी रत्न छीन लिया है। (जलती हुई चमकदार ज्वाला को) आँख से देख कर पतंग उससे उलझ जाता है किंतु वह मूर्ख यह नहीं देखता कि यह आग है जो उसे जला डालेगी। उसी तरह से यह मूर्ख मनुष्य कनक और कामिनी में लगा हुआ काल के फंदे से सजग नहीं होता। (विवेक) विचार करते हुए तू अपने विकारों को छोड़। स्वयं तरने वाला और दूसरों को तारने वाला वही (ब्रह्म) है। कबीर कहता है, (यह अनुभव होने पर) तू देखेगा कि संसार का जीवन ऐसा है जिसकी समता कोई दूसरी चीज़ नहीं कर सकती।

२८

चाहे मैंने अभी तक अनेक रूप (जन्म) रक्खे हों किंतु अब फिर मेरा कोई रूप नहीं होगा। (मैं आवागमन से मुक्त हो जाऊँगा।) मेरा तो तागा, तंतु और सभी साज थक गया (जुलाहे के-सभी कार्यों को छोड़ दिया।) अथवा मेरी साँस (तागा)तंतु (आत्मा) और सभी साज (इंद्रियाँ) थक गई हैं क्योंकि मैं राम-नाम के वशवर्ती हो गया हूँ। अब मुझे न तो नाचना ही आता है और न मेरा मन मँदला (बाजा) ही बजाता है। मैंने काम-क्रोध की माया जला डाली और तृष्णा के घड़े को फोड़ दिया। काम से भरा हुआ मेरा शरीर भी पुराना हो गया और मेरा सारा भ्रम छूट गया। मैंने सभी प्राणियों को एक समान जान लिया है और वाद-विवाद करना भी छोड़ दिया है। कबीर कहता है, राम के अनुकूल होने पर मैंने संपूर्णता प्राप्त कर ली है।

२९

तू रोजा रखता है और अल्लाह को मनाता है फिर भी अपने स्वाद के लिए जीवों का नाश करता है। तू केवल अपना स्वार्थ देखता है, किसी दूसरे के हित को नहीं। इस प्रकार (व्यर्थ ही) तू क्यों झख मारता है ? ऐ क़ाज़ी, साहब (स्वामी) तो एक है, वह तेरा है और तुझी में है। यह सोच-विचार कर तू नहीं देखता ! ऐ पागल, तू दीन से सहानुभूति नहीं रखता इसलिए तेरा जन्म भी किसी काम का नहीं है। क़ुरान तो यह स्पष्ट और सत्य कहता है कि अल्लाह जो है, न वह कोई पुरुष है न स्त्री। ऐ पागल, न तूने पढ़ा है, न चिंतन किया है इसीलिए तो तेरे हृदय में दया और सहानुभूति नहीं है। अल्लाह परोक्ष रहते हुए भी सारे शरीर के भीतर है यह अपने हृदय में विचार कर ले। कबीर पुकार कर कहता है, हिंदू और मुसलमान दोनों में वह एक ही है।

३०

मैंने मिलने के लिए शृंगार किया किंतु इस सांसारिक जीवन के स्वामी हरि नहीं मिले। हरि ही मेरे प्रियतम हैं और मैं हरि की ही प्रेयसी हूँ। राम बड़े हैं मैं उनसे कुछ छोटी हूँ। (आश्चर्य है कि) स्त्री (आत्मा) और स्वामी (परमात्मा) एक साथ ही रहते हैं—एक ही सेज पर—(शरीर पर) किंतु उनमें मिलाप दुःसाध्य और कठिन

(हो रहा) है। वही सौभाग्यशालिनी धन्य है जो प्रियतम को अच्छी लगती है। कबीर कहता है, फिर उसे जन्म लेने के लिए (संसार में) नहीं आना पड़ता। (वह प्रियतम में लीन हो जाती है।)

३१

हीरे (आत्मा) से हीरा (परमात्मा को) बेध कर (उसमें प्रवेश कर) पवन (प्राणायाम) द्वारा मेरा मन सहज (रूप) में समा कर रह गया है। इस हीरे (आत्मा) ने सभी (सूर्य, चंद्र आदि) ज्योतियों को बेध कर उनमें प्रवेश पाया है, यह (ज्ञान) मैंने सतगुरु के वचनों से पाया है। हरि की कथा तो अनाहत नाद के समान है। ऐ जीव ! तू हीरा (शुद्ध आत्मा) बन कर उसे पहिचान ले। कबीर कहता है, उसने तो उस हीरे (परमात्मा) को इस प्रकार देखा है कि वह सारे संसार में लीन हो रहा है। यह गुप्त हीरा तो तब प्रकट हुआ जब गुरु की शक्ति ने मुझे मार्ग दिखला दिया।

३२

(मैंने दो विवाह किए।) पहली स्त्री (माया) तो कुरूप, कुजात और कुलक्षणी थी जो मेरे स्वामी के द्वारा भी बुरी समझी गई। दूसरे बार की स्त्री (भक्ति) रूपवती, सुजाता और सुलक्षणी है जो सरलता से गर्भवती हुई (जिससे सद्‌गुण आदि उत्पन्न हुए।) अच्छा हुआ, मेरे पहले विवाह की सड़ी स्त्री नष्ट हो गई। मेरे दूसरे बार की स्वीकार की हुई स्त्री (ईश्वर करे) अनेक युगों तक जीवित रहे। कबीर कहता है, जब छोटी स्त्री (दूसरे बार की स्त्री) आई तो बड़ी (पहले बार की स्त्री) का सौभाग्य तो स्वभावतः टल गया (नष्ट हो गया) अब तो छोटी स्त्री (भक्ति) मेरे साथ हो गई है और बड़ी ने किसी दूसरे व्यक्ति को ग्रहण कर लिया है। [यदि इस पद का आध्यात्मिक अर्थ न लिया जाय तो यह कहा जा सकता है कि कबीर ने अपने जीवन में दो विवाह किए थे। पहली स्त्री कुलक्षणी थी जो इन्हें छोड़ कर दूसरे के पास चली गई और दूसरी सुलक्षणी थी जो इनके पास रही और उससे इन्हें संतान भी प्राप्त हुई।]

३३

मेरी स्त्री का नाम 'धनिया' था। उस नाम के बदले इन संन्यासियों ने उसका नाम 'राम जनिया' रख लिया। (ज्ञात होता है, कबीर के समय में 'रामजनिआ' वर्तमान अर्थ 'वेश्या' के अर्थ में प्रचलित न था)। इन संन्यासियों ने मेरे घर में आग लगा दी है (धूएँ से भर दिया है।) मेरे बेटे को भी (अपने संप्रदाय में दीक्षित कर सगुण) राम का भक्त बना लिया है। कबीर कहता है, ऐ मेरी माँ, सुन। इन मुँडे हुए संन्यासियों ने मेरी जाति नष्ट कर दी है। [इस पद में कबीर के जीवन की परिस्थितियों का चित्र है। रामानंद के अनुयायी सगुणोपासक अवधूतों ने कबीर के लड़के (कमाल) को कबीर के सिद्धांतों से हटा कर सगुण संप्रदाय में मिला लिया था। तभी तो कबीर को कहना पड़ा, 'बूड़ा बंसु कबीर का उपजिओ पूतु कमालु।)

३४

अरी नव वधू, तू ठहर। घूँघट मत काढ़। अंतिम समय में तेरी रक्षा न हो सकेगी। क्या घूँघट काढ़ने से तेरे हृदय की आग बुझ सकी ? कहीं उनका (मुँड़े हुए संन्यासियों का) मार्ग तुझे न लग जाय (तू उनके मार्ग पर न चली जाय!) घूँघट काढ़ने का गौरव तो दस पाँच दिन ही है कि यह बहू अच्छी आई है। तेरा घूँघट तो तभी सच्चा होगा जब तू (परमात्मा) का गुण गाते हुए (प्रसन्नता से) कूदने और नाचने लगे कबीर कहता है, नव वधू की विजय तो तभी होती है जब वह हरि का गुण गाते हुए अपना जन्म व्यतीत करती है।

[यहाँ नव वधू का अर्थ आत्मा से लिया जाना चाहिए।]

३५

करवत लेना (आरे से अपने को कटवा डालना) अच्छा है लेकिन (मुझ से मुँह फेर कर) तेरा करवट लेना अच्छा नहीं है। ऐ प्रियतम! तू मेरे गले से लग। यह मेरी प्रार्थना सुन। मैं तेरी वारी जाती हूँ, तू (मेरी ओर) अपना मुख फेर, मेरी ओर करवट दे। (इस प्रकार मुझसे उदासीन रह कर) मुझे क्यों मारता है ? यदि तू मेरा शरीर भी चीर दे तो मैं अपना अंग न मोड़ूँगी और यदि मैं सगर्भा ('सहज' ज्ञान सहित) भी हो जाऊँ तो तुझ से प्रेम नहीं तोड़ूँगी। हमारे और तुम्हारे बीच में कोई नहीं हो सकता। तुम मेरे स्वामी हो और मैं तुम्हारी अच्छी स्त्री हूँ। कबीर कहता है, हे लोई, सुनो। अब मुझे तुम्हारा विश्वास नहीं है (क्योंकि मैं स्वयं राम की स्त्री हो गया हूँ।)

३६

उस (ईश्वर रूपी) जुलाहे का रहस्य किसी ने नहीं जाना जिसने सारे संसार में अपना ताना तान दिया है। जब तक (ऐ पंडित) तुमने वेद पुराण सुने, तब तक मैंने थोड़ा सा अपना ताना फैलाया। उस ईश्वर रूपी जुलाहे ने पृथ्वी और आकाश का करघा बनाया और चंद्र और सूर्य को (ढरकी-Shuttle Cock बना कर) साथ-साथ चलाया। मैंने पाई जोड़ कर (फैले हुए ताने को कूँची से माँज कर) उसे बराबर किया और तब तांती (राछ) से मैं पूर्ण संतुष्ट हुआ। अब मुझ जुलाहे ने अपना वास्तविक घर जान लिया और अपने शरीर में ही राम को पहिचान लिया। कबीर कहता है, मैंने अपना करघा तोड़ दिया है और अपना सूत (संबंध) उस (परमात्मा रूपी जुलाहे के) सूत से मिला लिया है।

३७

जिसके हृदय में मैल है, यदि वह तीर्थों में भी स्नान करे तो उसे बैकुंठ-गमन प्राप्त न होगा। यदि समस्त संसार उस पर विश्वास भी कर ले तो कुछ न होगा क्योंकि राम इन बातों से अनजान नहीं हैं। (वे सब जानते हैं।) अतः केवल एक ही ईश्वर

राम की पूजा करो, गुरु की सेवा ही सच्चा स्नान है। जल में स्नान करने से यदि गति होती तो मेंढक तो नित्य ही स्नान करते हैं। जैसे मेंढक हैं, वैसे ही ये लोग हैं, जो बराबर योनि में आते हैं। मन कठोर रखते हुए जो बनारस में मरता है, वह नरक से बच नहीं सकता। यदि ऊँचा जय-घोष करते हुए हरि का संत मर जाय (और उसे मुक्ति हो जाय) तब तो सारी सेना जय-घोष करते हुए (संसार-सागर से) तर सकती है। निराकार प्रभु वहाँ निवास करता है जहाँ न दिन है न रात है, न वेद है न शास्त्र है। कबीर कहता है, हे नर, तू उसकी आराधना कर, यह संसार तो पागल है! (इसके रास्ते न जा।)

रागु गूजरी

१

हरि- भजन के विना तू बैल होगा। वह भी दूसरे का। उस समय चार पैर, दो सींग और गूँगा मुख (होने से) तू (ईश्वर का) गुण-गान कैसे कर सकेगा? उठते-बैठते तुझ पर डंडा पड़ेगा तब तू कहाँ अपना सिर छिपावेगा? उस समय (नाथने से) तेरी नाक फटेगी, (बोझ से) तेरे कंधे टूट जावेंगे और खाने को तुझे मिलेगा कोदौं का भुस। सारे दिन (चरते हुए) जंगल में डोलता फिरेगा, फिर भी तेरा पेट न भरेगा। तूने सच्चे भक्तों का कहना न माना इसलिए अपना किया पावेगा। दुःख-सुख (का उपभोग) करते हुए तू अनेक भ्रमों में डूब गया है इसलिए अनेक योनियों में घूमता फिरेगा। रत्न के समान उज्ज्वल जन्म खो कर तूने अपने ईश्वर को भुला दिया है। फिर ऐसा अवसर तू कहाँ पावेगा? तू बाजीगर के बंदर की तरह घूमता फिरेगा और बँधे हुए ही रात्रि व्यतीत करेगा। कबीर कहता है, राम-नाम के बिना तू अपना सिर धुन कर पछतायगा।

२

कबीर की माँ छिप छिप कर रोती है, हे राम, ये बच्चे कैसे जियेंगे? कबीर ने तनना-बुनना सब छोड़ दिया है और हरि का नाम अपने शरीर पर लिख लिया है। (अब खाने-पीने को पैसे कहाँ से आवें?) (लेकिन मैं कहता हूँ कि) जब तक मैं (ढरकी के) छेद में तागा डालता हूँ तब तक मैं अपने स्नेही राम को भूल जाता हूँ। ओछी तो मेरी मति है और ज़ात का हूँ जुलाहा। मुझे तो हरि के नाम का लाभ ही सच्चा लाभ है। कबीर कहता है, हे मेरी माँ, सुन, हमें और इन (बच्चों) को (खाने के लिए) देने वाला एक राम ही है। (वही हमारे और बच्चों के पोषण का प्रबंध करेगा।)
[कबीर ने अपने परिवार की दशा और परिस्थितियों का एक चित्र उपस्थित किया है।]

रागु सोरठि

१

मूर्ति की पूजा करते-करते हिंदू मर गए और सिर झुका-झुका कर (नमाज़ पढ़ते हुए) मुसलमान मर गए। वे (हिंदू किसी के मरने पर उसे) जला देते हैं और वे

(मुसलमान) गाड़ देते हैं किंतु दोनों ने ही (ऐ मन) तेरे रहस्य को नहीं समझा। ऐ मन, यह संसार बहुत बड़ा अंधा है (जो यह नहीं देखता कि) चारों दिशाओं में मृत्यु का बंधन फैला हुआ है। कवि लोग सुंदर कपड़ों से सजे हुए सभा-भवनों में कवित्त पढ़ते हुए मर गए और जटा रख-रख कर योगी मर गए फिर भी (ऐ मन) ये लोग तुझे नहीं पहचान सके (तुझ पर विजय प्राप्त नहीं कर सके।) द्रव्य संचित करते हुए राजा मर गए जिन्होंने दुर्गों पर विजय प्राप्त कर बहुत-सा स्वर्ण एकत्रित किया। वेद पढ़-पढ़ कर पंडित मर गए और रूप देख-देख कर नारी भी मर गई। अपने शरीर की ओर देख कर यह समझ लो कि राम-नाम के बिना सभी लोग छले गए हैं। कबीर यह उपदेश करके कहता है, हरि के नाम के बिना किसने गति पाई है?

२

इस शरीर का गौरव यही है कि जब जलता है तो भस्म हो जाता है, पड़ा रहता है तो इसे कीट-कृमि खा डालते हैं। कच्चे घड़े पर जब पानी पड़ता है, (तब उसके नष्ट होने के समान ही यह शरीर है।) क्यों भैया, फूले-फूले फिर रहे हो? जब दस महीने औंधे मुख रहे थे, वह दिन कैसे भूल गए? जिस प्रकार मधुमक्खी रस एकत्रित करती है उसी भाँति तुमने जोड़-जोड़ कर धन एकत्रित किया है। मरते समय लोग उसी धन को 'ले लो, ले लो' कह कर ले लेते हैं (और तुझे बाहर निकाल देते हैं।) भूत को घर में कौन रहने देता है? घर की देहली तक तेरे साथ तेरी विवाहिता स्त्री रहती है। इसके आगे नगर के सज्जन और संभ्रांत लोग रहते हैं। श्मशान तक सब कुटुंब के लोग रहते हैं, इसके आगे जीवात्मा अकेला जाता है। कबीर कहता है, हे प्राणी, सुन। तू काल से पकड़ा जाकर कूएँ में गिर पड़ा है। तूने झूठी माया में अपने आप को वैसा ही बँधा लिया है जिस प्रकार सेमल की रंगीन फली के भ्रम में तोता। (वह समझता है कि इस रंगीन फल में बहुत स्वाद होगा किंतु जैसे ही वह उसमें चोंच मारता है, वैसे ही उसमें से रुई निकल पड़ती है।)

३

वेद पुराण आदि सभी धार्मिक ग्रंथों के सिद्धांत सुन कर तूने कर्म की आशा की (कि उससे तेरा निस्तार होगा) किंतु जिस समय काल ने लोगों को खाना शुरू किया तो वे चतुर (?) लोग निराश होकर गुरु के पास चले! रे मन, इस (ढंग) से एक भी कार्य सफल नहीं हो सकता यदि तूने रघुपति राजा का भजन नहीं किया। नादी (जो अनाहत नाद में विश्वास रखते हैं), वेदी (जो वेदों को मानने वाले हैं) शबदी (जो शब्द-ब्रह्म के उपासक हैं) और मौनी (जो जीवन पर्यंत मौन-व्रत धारण करते हैं) साधुओं ने वनखंड में जाकर योग और तप किया और चुन कर सात्विक कंद और मूल का आहार किया किंतु उनसे भी यमराज का पट्टा ही लिखाया गया (अर्थात् वे भी यम के अधिकार-पत्र से शासित हुए।) जिनके हृदय में नारदी भक्ति नहीं आई और जिन्होंने अपने शरीर को भक्ति के आडंबरों से बहुत अच्छी तरह सजाया और राग एवं रागनी

अलापते हुए आडंबरी रूप रक्खा, उन्होंने हरि से क्या प्राप्त किया? समस्त संसार के ऊपर काल की छाया पड़ी है और उसमें ज्ञानी जन भ्रम से चित्रवत् लिखे हुए हैं। कबीर कहता है, वे ही कुछ सेवक खालसे (शुद्ध) हो सके जिन्होंने प्रेम और भक्ति को वास्तविक रूप से समझा है।

४

मैंने अपने दो दो नेत्रों से अवलोकन किया है—हरि के बिना और कुछ नहीं देखा। मेरे नेत्र उन्हींके अनुराग में अरुण हैं। उनके अतिरिक्त मुझसे अब क्या कहा जा सकता है? हमारा सारा भ्रम नष्ट हो गया, भय भाग गया जब राम-नाम से हृदय लग गया। बाजीगर (ब्रह्म) ने डंका बजाया और सारा संसार तमाशा देखने के लिए जुड़ गया। (तमाशे के बाद) बाजीगर ने अपना सारा स्वांग इकट्ठा कर लिया और फिर अपने ही रंग में (विचार में) रमण करने लगा। उपदेश-मात्र से भ्रम नष्ट नहीं होता। संसार में तो सब लोग उपदेश दे दे कर अपना मुख छिपा लेते हैं। कबीर कहता है, मुझ पर स्वयं गुरु ने कृपा की और उसके द्वारा उन्होंने सब प्रकार से मेरे तन-मन का हरण कर लिया। मैं उन्हीं के रंग में रँगा हुआ हूँ क्योंकि मुझे संसार के वास्तविक जीवन का प्रदाता मिल गया है।

५

जिसके वेद ही दूध के भंडार हैं और समुद्र ही मथने की मटकियाँ हैं उस (ब्रह्म) की तू अहीरिनि (मथने वाली) हो जा, फिर तेरे तक्र को नष्ट करने की शक्ति किसमें है? ऐ दासी (आत्मा), तू जग के जीवन और प्राणों के आधार राम को अपना पति क्यों नहीं बना लेती? तेरे गले में तौक़ है और पैरों में बेड़ी है (माया का बंधन है) और तू घरों-घर (योनियों में) रमती फिरती है। ऐ दासी, तुझे अब भी चेत नहीं हुआ? जान ले, तुझ अभागी को यम ने देख लिया है। दासी ने कहा—'वस्तुतः प्रभु ही तो करने और कराने वाला है, बेचारी दासी के हाथ क्या है? सोते-सोते जागी हूँ और जिस ओर प्रवृत्त की गई हूँ उस ओर प्रवृत्त हो गई हूँ!' कबीर ने कहा—'ऐ दासी, यह सुबुद्धि तूने कहाँ से पाई जिससे तूने भ्रम की रेखा मिटा दी है?......अच्छा, वह रस मैंने भी जान लिया है और गुरु के प्रसाद से मेरा मन संतुष्ट हो गया है।'

६

जो बिना माया में उलझे हुए नहीं जी सकते और बिना घाल मिले (सौदे के तौल या गिनती से ऊपर मिलने वाली वस्तु) नहीं अघाते उनका जीवन क्या अच्छा जीवन कहा जा सकता है? वस्तुतः बिना मृत्यु के जीवन नहीं है। अब क्या कहा जाय और क्या ज्ञान का विचार किया जाय? अपनी ओर देखकर तो यह सारा (बाह्य) व्यवहार नष्ट हो गया। मैंने कुंकम (इंद्रियों को) घिस कर, चंदन (आत्मा) को रगड़ कर बिना चर्म चक्षुओं के यह संसार देख लिया है। जिसमें पुत्र (जीवात्मा) ने पिता (परमात्मा) को उत्पन्न किया है (अर्थात् अपने हृदय में परमात्मा को अनुभूति से प्रकट

किया है।) बिना ही स्थान के (ब्रह्म-रंध्र या शून्य में) नगर (सारे ब्रह्मांड) को स्थिर किया है। पुनः जीवात्मा रूपी याचक ने ऐसा दाता (परमात्मा) प्राप्त किया है जो न तो दिया जा सकता है, न खाया (उपभोग किया) जा सकता है। न वह छोड़ा जा सकता है, न अलग किया जा सकता है। वह किसी दूसरे के पास भी नहीं जा सकता। जो जीवन और मरण की वास्तविकता समझता है वह पंच प्राणों के पर्वतों पर चढ़ने में सुख का अनुभव करता है। कबीर को वह हरि रूपी धन मिल गया है जिसके मिलने पर उसने अपने आपको मिटा दिया है।

७

क्या पढ़ा जाय, क्या गुना जाय और क्या वेद पुराण सुना जाय! पढ़ने और सुनने से क्या होता है यदि स्वाभाविक रूप से उस ब्रह्म से मिलन न हो। ऐ गँवार, तू हरि का नाम नहीं जपता, बारंबार क्या सोच रहा है? तुझे अंधकार में एक दीपक चाहिए जिससे तुझे इंद्रियों से ग्रहण न की जा सकने वाली वस्तु की प्राप्ति हो। तुझे वह अगोचर वस्तु मिल सकती है क्योंकि तेरे शरीर में ही वह दीपक समाया हुआ है। कबीर कहता है, अब तूने जाना? जब जानेगा तो तेरा मन भी संतुष्ट होगा। लेकिन मन संतुष्ट होने पर भी लोग विश्वास नहीं करते। यदि वे विश्वास नहीं करते तो फिर किया क्या जा सकता है?

८

हृदय में तो कपट है और मुख में ज्ञान! झूठमूठ तू क्या पानी (माया) को मथ रहा है? इस शरीर में ऐसे क्या गुण हैं जो तू इसे बार-बार माँज रहा है (साफ़ कर रहा है?) और फिर जब तेरे शरीर के भीतर भी मल भरा हुआ है! लौकी को अड़सठ तीर्थों में भले ही स्नान करा दिया जाय किंतु उसका कड़ुवापन फिर भी नहीं जा सकता। कबीर तो विचार पूर्वक यही कहता है, केवल मुरारी (ब्रह्म ही) भव-सागर से तार सकता है।

९

तू अनेक प्रपंच कर दूसरे का धन लाता है और उसे अपने पुत्र और स्त्री के समीप लुटा देता है। ऐ मन, तू भूल कर भी कपट न कर, अंत में तेरे जीवात्मा से ही सब वसूल किया जायगा। क्षण-क्षण में तेरा शरीर क्षीण हो रहा है और वृद्धा-वस्था का अनुभव होता है। (तू इतना निर्बल हो जायगा कि) तेरी अंजुली से कोई पानी भी न पा सकेगा। कबीर कहता है, तेरा कोई नहीं है। तू शीघ्र ही हृदय में राम का जाप क्यों नहीं करता?

१०

हे संतो, पवन-साधन (प्राणायाम) से मेरे मन में सुख का बानक बन सका है और मैं इसे योग-प्राप्ति के फल-स्वरूप ही समझता हूँ। गुरु ने मुझे योग का सूक्ष्म-मार्ग

दिखलाया जिसमें इंद्रिय रूपी चंचल मृग आकर चोरी से चरा करते हैं। मैंने अपने (शरीर के) दरवाज़े बंद कर लिए और (उन मृगों को स्थिर करने के लिए) अनाहत बाजे की ध्वनि की। कुंभ के कमल (सहस्रदल कमल) में जो जल भरा हुआ था, उसे नष्ट कर मैंने उसे चैतन्य और ऊँचा किया। जन कबीर कहता है, मैंने यह जान लिया और जब जान लिया तो मेरे मन को संतोष हुआ।

११

मैं भूखे आपकी भक्ति नहीं कर सकता। आप अपनी यह माला लीजिए। मैं संतों की चरण-धूल (की शपथ लेकर) माँगता हूँ। मुझे किसी का कुछ देना नहीं है। हे माधव, मेरी तुम्हारे साथ इस तरह कैसे बन सकती है? यदि तुम स्वयं मुझे नहीं देते तो मैं तुमसे माँग के लेना चाहता हूँ। मैं दो सेर चून (आटा) माँगता हूँ और पाव भर घी के साथ नमक। आध सेर दाल माँगता हूँ। इससे मुझे दोनों वक्त (दिन और रात में) भोजन करा लो। एक चार पैर की खाट माँगता हूँ। एक तकिया और एक रुई से भरा हुआ दोहरा कपड़ा। ऊपर (ओढ़ने के लिए) मैं एक कंबल चाहता हूँ। फिर यह भक्त तुझमें लीन होकर तेरी भक्ति करे। मैंने किंचिन्मात्र भी किसी से कुछ नहीं लिया, एकमात्र तेरे नाम से मैं शोभा पाना चाहता हूँ। कबीर कहता है, इसी से मेरा मन संतुष्ट होता है और जब मेरा मन संतुष्ट होता है तो मैं हरि को जान लेता हूँ।

रागु धनासरी

१

सनक, सनंदन और महेश के सदृश (शक्तिशाली) तथा शेष नाग भी (हे राम) तेरा रहस्य नहीं जानते। मैंने तो संत-संगति से ही राम को हृदय में बसा लिया है। (यदि) हनुमान के सदृश (बली) और गरुड़ के समान (गतिशील) भी हरि के गुण नहीं जानते (तो) सुरपति (इंद्र) और नरपति राजागण भी नहीं जान सकते। चारों वेद, स्मृतियाँ और पुराण (कैसे जान सकते हैं) जब स्वयं कमला (लक्ष्मी) कमलापति (ब्रह्म) के गुण नहीं जान सकतीं। इसलिए कबीर कहता है, यह मनुष्य भ्रम में न पड़े। राम के चरणों से लग कर उनकी शरण में पड़ रहे।

२

दिन से प्रहर और प्रहर से घड़ी में आयु घटती रहती है और शरीर क्षीण होता रहता है। काल रूपी शिकारी वधिक की भाँति घूमता रहता है। (उससे बचने का) क्या उपाय किया जा सकता है? (मृत्यु का) दिन समीप आने लगा है। माता, पिता, भाई, पुत्र और स्त्री कहाँ कौन किसका है? जब तक शरीर में ज्योति निवास करती है पशु को भी अपनेपन का ज्ञान नहीं होता। जीवन-रक्षा के लिए वह लालच करता रहता है और उसे आँखों से कुछ भी नहीं सूझ पड़ता। कबीर कहता है, रे प्राणी,

सुन, तू अपने मन की भ्रांति छोड़ दे! तू एक-मात्र नाम का जाप कर और उस एक (ब्रह्म) की शरण में पड़ा रह।

३

जो सेवक कुछ भक्ति-भाव जानता है, उसे (मृत्यु का) आश्चर्य कैसा! जिस प्रकार जल में जल मिल कर अलग नहीं होता, उसी भाँति यह जुलाहा (कबीर) भी उस ब्रह्म में ढुलक कर—एक रूप होकर—मिल गया है। हे हरि के भक्तगण, मैं तो बुद्धि का भोला हूँ—मुझ में अल्प बुद्धि है (लेकिन मैं पूछता हूँ कि) यदि कबीर काशी में शरीर छोड़ कर (मुक्ति पा जाय) तो इसमें राम का क्या अनुग्रह? कबीर कहता है, हे लोगो सुनो, तुम लोगों में से कोई भ्रम में न भूले। यदि हृदय में राम है तो (मरने के लिए) क्या काशी, और क्या ऊसर मगहर!! (दोनों ही समान हैं।)

४

यदि मैंने साधारण तप किया तो मैं इंद्रलोक और शिवलोक जाऊँगा और फिर वहाँ से लौट कर आ जाऊँगा। मैं (ईश्वर से) क्या माँगू? कुछ स्थिर ही नहीं है। मैं तो केवल राम-नाम ही अपने मन में रखता हूँ। राज्य की शोभा, वैभव और बड़ाई, अंत में किसी की सहायता नहीं करती। पुत्र, स्त्री, लक्ष्मी और माया इनसे कहो किसने सुख पाया है? कबीर कहता है, (राम के अतिरिक्त) दूसरा मेरे किसी काम का नहीं है। हमारे मन में तो राम का नाम ही (बहुत बड़ा) धन है।

५

हे भाई, राम का स्मरण करो, राम का स्मरण करो, राम का स्मरण करो। राम-नाम के स्मरण के बिना तुम अधिकाधिक डूबते ही जाओगे। स्त्री, पुत्र, शरीर, घर और सुख देने वाली संपत्ति इनमें से कुछ भी काल की अवधि (अंत) के समय तेरी नहीं होगी। अजामिल, गज और गणिका ने निकृष्ट कर्म किये किंतु वे भी राम का नाम लेने से (भवसागर के) पार उतर गए। तूने शूकर और कुत्ते की योनि में भ्रमण किया फिर भी तुझे लज्जा नहीं आई? तूने राम-नाम रूपी अमृत छोड़ कर क्यों विष खा लिया? तू विधि-निषेध के कर्म का भ्रम छोड़ कर राम-नाम ले। सेवक कबीर कहता है, तू गुरु के प्रसाद से राम को अपना स्नेही बना।

रागु तिलंग

१

हे भाई, वेद और क़ुरान ये झूठे हैं, इनसे हृदय की चिंता नहीं जाती। यदि एक क्षण भर के लिए हृदय में थोड़ी स्थिरता ले आओ तो सर्व-स्वामी ईश्वर तुम्हारे सामने ही उपस्थित ज्ञात होगा। ऐ बंदे, तू अपने हृदय में प्रतिदिन खोज और व्यर्थ की व्याकुलता में मत फिर। यह जो संसार है वह एक नगर-मेले की तरह है जिसमें

विपत्ति के समय हाथ पकड़ने वाला कोई नहीं है। तू झूठ-मूठ पढ़-पढ़ कर प्रसन्न होता है और निश्चिंत होकर ईश्वर के अतिरिक्त अन्य वस्तुओं पर वाद-विवाद बकता फिरता है। (सत्य तो यह है कि) सर्वश्रेष्ठ ईश्वर ही सच्चा है। वह सृष्टिकर्त्ता सृष्टि के बीच में ही है किंतु वह श्याम मूर्ति के रूप में नहीं। आकाश के बीच में जो आकाश-गंगा है उसी में उसने स्नान किया था। उसी का सदैव चिंतन कर और अपनी अंतर्दृष्टि से देख कि वह यत्र-तत्र-सर्वत्र विद्यमान है। अल्लाह (ब्रह्म) ही पूर्ण पवित्र है। उस पर संदेह तो तब किया जाय जब वह एक से भिन्न (दूसरा) हो। कबीर कहता है, वह कृपालु ही जिस पर कृपा करे, वही उसे जान सकता है।

रागु सूही

१

इस संसार में अवतरित होकर तुमने क्या किया! तुमने राम का नाम कभी नहीं लिया। तुम किस बुद्धि में फँसे हुए हो जो राम का जाप नहीं करते? ऐ अभागे, मरते समय के लिए क्या कर रहे हो? तुमने दुःख और सुख उठा कर परिवार का पोषण किया किंतु मरते समय तुमने अकेले ही दुःख उठाया। जब तुम्हारा गला पकड़ा जायगा तभी तुम्हें पुकार करना है। कबीर कहता है, पहले से ही अपनी सँभाल क्यों नहीं करता?

२

नन्हा सा जीव थर-थर काँप रहा है। मैं नहीं जानती कि मेरा प्रियतम (ईश्वर) मेरे साथ क्या व्यवहार करेगा! रात (मेरा यौवन) व्यतीत हो गया, कहीं दिन (वृद्धावस्था) भी इसी प्रकार व्यतीत न हो जाय! भ्रमर (काले बाल) तो उड़ गए। उनके स्थान पर बक (श्वेत केश-जाल) बैठ गया। कच्चे घड़े (शरीर में) पानी (अवस्था) स्थिर नहीं रहती। जब हंस (जीवात्मा) चलने लगता है तब यह शरीर कुम्हला जाता है। मैंने वैसा ही शृंगार किया है जैसे कुमारी कन्या शृंगार करती है। उसके साथ जो भी (देवता) रमण कर उससे आबद्ध (बाझ) हो जाय, वही स्वामी या आराध्य मान लिया जाता है। कौवों (सांसारिक अभिलाषाओं) को उड़ाते हुए मेरी भुजा दुखने लगी है। कबीर कहता है, इसी भाँति साँसारिक व्यवहारों में जीवन की कथा समाप्त हो जाती है।

३

शासनाधिकार समाप्त हो गया, अब सारा लेखा देना होगा। उसे लेने के लिए यम के निर्दय दूत आ पहुँचे। तुमने क्या सुरक्षित किया है और क्या खो दिया है, शीघ्र ही चलो, दीवान (धर्मराज) ने बुलाया है। दीवान के बुलाने से इसी समय चलो क्योंकि ईश्वर के दरबार का आज्ञा-पत्र आया है। निवेदन के साथ जो कुछ भेंट देना है दो

और यदि कुछ कहना शेष है तो उसे गा दो। आज की रात भर है जो कुछ सुलझाना है उसे सुलझा लो। जो कुछ भी तुम्हारा खर्च हुआ है, उसकी पूर्ण रक्षा कर लो। प्रातःकाल की नमाज़ सराय में जाकर गुज़ारना, अदा करना। साधु-संगति से जिसे हरि का रंग लग गया है, वह भाग्यशाली पुरुष धन्य है। ईत (साधारण जन) और ऊत (निस्संतान) बड़े सुखी और सुंदर हैं जिन्होंने (सब झंझटों से रहित होकर) जन्म का अनमोल फल प्राप्त किया है। (अन्यथा संसारी मनुष्यों ने) जागते-सोते अपना जीवन खो दिया है और संपत्ति जोड़ कर वे दूसरों (अपनी स्त्री और बच्चों) के वश में हो गए हैं। कबीर कहता है, ऐसे ही मनुष्य भूले हुए हैं क्योंकि वे अपने स्वामी को भूल कर मिट्टी (सुंदर स्त्री और धन आदि) में उलझ गए हैं।

४

(देखते देखते) नेत्र थक गए, सुनते सुनते कान थक गए और (कार्य करते हुए) सुंदर शरीर थक गया। वृद्धावस्था की हुंकार से सब बुद्धि थक गई केवल एक माया ही नहीं थकी। रे पागल, तू ज्ञान का विचार नहीं कर पाया। तूने व्यर्थ ही जन्म गँवा दिया। प्राणी तब तक (सुख के) सरोवर की तृष्णा करता रहता है जब तक कि उसके शरीर में साँस रहती है। यदि वह हरि के चरणों में निवास करने के लिए अपना शरीर ले भी जाता है तो उसके साथ भक्ति-भाव नहीं जाता। जिसके हृदय के भीतर 'शब्द' निवास कर लेता है, उसकी (सांसारिक वासनाओं के प्रति) प्यास जाती रहती है। वह (ईश्वर का) आदेश समझ कर जीवन की चौपड़ खेलता है और मन लगा कर अपने (भावों का) पाँसा डालता है। जो भक्त अविगत (ईश्वर) को जान कर उसका भजन करते हैं, उनका किसी प्रकार भी नाश नहीं होता। कबीर कहता है, वे सेवक कभी नहीं हारते जो पाँसा डालना जानते हैं।

५

एक दुर्ग (शरीर) है, उसके पाँच विश्वसनीय और बलवान रक्षक (पंच प्राण) हैं। वे पाँचों मुझसे कैफ़ियत तलब करते हैं। मैंने किसी की ज़मीन तो जोती-बोई नहीं है। (ऐसी स्थिति में) कैफ़ियत देना दुःखप्रद मालूम होता है। ऐ हरि भक्तो, मुझे इस दुर्ग के पटवारी (मन) की नीति डसती या दुःख देती है। जब मैंने भुजा उठा कर गुरु को रक्षा के लिए पुकारा तब उन्होंने मेरा उद्धार कर लिया। उस दुर्ग में नौ तो दंड देने वाले जमादार (नव द्वार) हैं और दस दौड़ने वाले मुंसिफ़ (दस इंद्रियाँ) हैं। वे किसी (भक्ति-भाव की) प्रजा का निवास करने नहीं देते। वे (बुद्धि की) पूरी डोरी नापते भी नहीं हैं और बहुत बेगार लेते हैं। बहत्तर कोठे वाले घर (शरीर) में एक पुरुष (अहंकार) समाया हुआ है, उसी ने मेरा नाम (बेगार में) लिखा दिया है। जब धर्मराज का चिट्ठा देखा गया तो मेरे ऊपर न पावना था न देना। अतः संतों की कोई निंदा न करे क्योंकि संत और राम एक ही हैं। कबीर कहता है, मैंने वह गुरु पा लिया है जिसका नाम विवेक है।

रागु बिलावलु

१

यह संसार ऐसा तमाशा है कि इसमें कोई स्थायी रूप से रहने नहीं पायेगा। तुम सीधे-सीधे अपने रास्ते चलो नहीं तो यह संसार तुम्हें बहुत बुरा धक्का देगा। बालक, बूढ़े और तरुण होते हुए सभों को यह यम ले जायगा। यह बेचारा मनुष्य तो चूहा बनाया गया है जिसे मृत्यु रूपी बिल्ली खा जायगी। चाहे मनुष्य धनवान हो चाहे निर्धन हो, इसकी कोई मर्यादा नहीं है। काल इतना बली है कि वह राजा और प्रजा को समान रूप से मारता है। ईश्वर के सेवक जो उनके कृपा-भाजन हैं, उनकी तो बात ही दूसरी है। वे न आते हैं, न जाते हैं, न कभी मरते है क्योंकि वे परब्रह्म के साथी है। पुत्र, स्त्री, लक्ष्मी और माया इन्हें (अपने वास्तविक रूप में) जान कर छोड़ दो। कबीर कहता है, हे संतो, (इस त्याग से) सारंगपाणि ब्रह्म तुम्हें अवश्य मिल जायगा।

२

मैं न विद्या पढ़ता हूँ और न वाद-विवाद करना जानता हूँ। मैं तो हरि के गुण कहते-सुनते पागल हो गया हूँ। मेरे बाबा, सारा संसार चतुर है, केवल मैं पागल हूँ। मैं तो बिगड़ ही गया हूँ। (मेरे साथ) कोई दूसरा न बिगड़े। मैं स्वयं पागल नहीं हुआ हूँ, राम ने मुझे पागल कर दिया है और मेरे सतगुरु ने मेरा सारा भ्रम जला दिया है। मैं अपनी बुद्धि खोकर बिगड़ गया हूँ। मेरे भ्रम से कहीं कोई दूसरा भुलावे में न पड़ जाय। असली पागल तो वह है जो अपने को न पहिचाने। जो अपने को पहिचानता है वही केवल एक (ब्रह्म) को जानता है। जो इस अवसर पर (ईश्वर की अनुभूति से) मतवाला नहीं हुआ, वह कभी मतवाला नहीं हो सकता। कबीर कहता है, मैं तो राम ही के रंग में रँग गया हूँ।

३

घर छोड़ कर वन-खंड में चले जाओ और चुन-चुन कर सात्विक कंद-मूल खाओ। किंतु मूर्ख मन बहुत पापी है जो अपना विकार अभी तक नहीं छोड़ता। मैं इस संसार से कैसे छूटूँ और इस बड़े भव-सागर से कैसे पार पाऊँ! हे मेरे विट्ठल, मेरी रक्षा करो, यह सेवक तुम्हारी शरण में है। भिन्न-भिन्न विषयों की वासना छोड़ी नहीं जाती। अनेक यत्नों से अलग हटाता हूँ फिर भी यह बार-बार लिपट ही जाती है। यौवन व्यतीत हो गया, अब बुढ़ापा है, मैंने कुछ भी भला नहीं किया। मैंने इस अमूल्य जीव को कौड़ी मोल फेक दिया। कबीर कहता है, हे मेरे माधव, तुम सर्वव्यापी हो, तुम्हारे सदृश कोई दयालु नहीं है और मेरे सदृश कोई पापी नहीं है।

४

[इस पद में कबीर की माँ का मनस्ताप वर्णित है।]

प्रति दिन जुलाहा (कबीर) जल भर कर घड़ा लाता है। भूमि को लीपते हुए इसका जीवन व्यतीत होता है। इसे ताना बाना आदि कुछ नहीं सूझता, यह तो एक-मात्र हरि के प्रेम में लिपट गया है। हमारे कुल में किसने 'राम' नाम कहा है? जब से इस निपूते ने माला ली है तब से कुछ भी सुख प्राप्त नहीं हुआ। हे जिठानी, हे देवरानी, एक अचरज जो हुआ वह तो सुनो। इन मुंडियों (साधुओं) ने सात सूत (अपने शरीर की सप्त धातुएँ) तो नष्ट कर दीं किंतु इस मुंडिया (साधू बने हुए मन) को किसी ने नहीं मारा। (सुनते हैं कि) गुरु ने सब सुखों के एक-मात्र स्वामी हरि का नाम इसे दिया है। उसी हरि ने संत प्रह्लाद की प्रतिज्ञा रक्खी और हिरण्याक्ष को नख से विदीर्ण किया। इसने घर के देवताओं और पितरों की पूजा छोड़ दी है और गुरु का शब्द-मात्र अंगीकार किया है। कबीर कहता है, यह सब पापों के नाश करने वाले संतों को लेकर अपना उद्धार कर रहा है।

५

हरि के समान कोई राजा नहीं है। संसार के ये सभी राजे तो चार दिन के हैं जो झूठ-मूठ ही शासन करते हैं। तेरा सेवक भर हो, वह कहीं भी घूमें, वह तीनों लोकों में मान्य है। उस सेवक की ओर कौन हाथ उठा सकता है? उसके गौरव का तो कोई अनुमान भी नहीं कर सकता! हे मेरे अचेत मूढ़ मन, तू अब भी चेत जा, उस (ब्रह्म का) अनाहत संगीत बज रहा है। कबीर कहता है, संशय और भ्रम से रहित ध्रुव और प्रह्लाद पर उसी ने कृपा की थी।

६

(हे प्रभु) तुम्हीं मेरी लज्जा रक्खो, मुझ से तो वह बिगड़ ही गई। शील, धर्म, जप और भक्ति—मैंने कुछ भी नहीं किया। मेरी तो अभिमान से टेढ़ी पगड़ी हो रही है। मैंने इस शरीर को अमर मान कर सुरक्षित रक्खा किंतु यह तो अंत में झूठा और कच्चा घड़ा निकला। जिन (पुत्र और स्त्री) को हमने अनुग्रह पूर्वक (जीवन में) सँवारा, उन्होंने ही हमें भुला कर दूसरा मार्ग पकड़ा। संधिक (सन्निपात) रोग में पड़े हुए के समान बकने-झकने वाले को साधु नहीं कहा जा सकता। इस लिए मैं (साधु बन कर) तुम्हारी ड्योढ़ी की शरण में पड़ा हुआ हूँ। कबीर कहता है, मेरी यह विनय सुन लो कि हम पर यम-यातना मत डालो।

७

(हम) थके हुए तुम्हारे दरबार में खड़े हुए हैं। तुम्हारे बिना हमारा ध्यान कौन रक्खे? किवाड़ खोल कर कृपा पूर्वक दर्शन दो। तुम्हीं धन हो, तुम्हीं धनी हो, उदार हो, त्यागी हो, कानों से तुम्हारा सुयश सुनता हूँ। मैं किससे माँगू? मुझे तो सभी निर्धन दिखाई देते हैं। मेरा निस्तार तो तुम्हीं से है। जयदेव, नामदेव और ब्राह्मण

सुदामा इन पर तुमने अपार कृपा की है। कबीर कहता है, तुम समर्थ दानी हो। चारों पदार्थ (अर्थ, धर्म, काम और मोक्ष) देते हुए तुम्हें देर नहीं लगती।

८

डंडा, मुद्रा, खिंथा (गुदड़ी) और आधारी (बाँह टेकने की लकड़ी) लिए हुए ऐ वेशधारी जोगी, तू भ्रम के भावों ही में घूम रहा है। ऐ पागल, तू आसन और प्राणायाम को दूर कर और कपट छोड़ कर हरि का भजन कर। जिससे तू याचना करेगा वह तीनों भवनों का स्वामी है। कबीर कहता है, वही केशव संसार में सच्चा जोगी है।

९

हे जगदीश गुसाईं, यह माया तुम्हारे चरणों को (हमारे मन से) भुला देती है। फिर यदि मनुष्य के हृदय में तुम्हारे प्रति प्रीति उत्पन्न नहीं होती तो वे बेचारे क्या करें? इस तन, धन और माया को धिक्कार है। मति और धूर्त बुद्धि को भी बार-बार धिक्कार है। यदि इस माया को दृढ़तापूर्वक बाँध कर रखोगे तभी इससे बच सकोगे। क्या खेती और क्या लेना-देना (व्यापार)! यह सब झूठे अभिमान का प्रपंच है। कबीर कहता है, ये (झूठा उद्यम करने वाले) अंत में किंकर्तव्य-विमूढ़ हो जायँगे और उनका मृत्यु-समय आ जायगा।

१०

इस शरीर- सरोवर के भीतर एक अनुपम कमल (सहस्रदल कमल) है। उसमें परम ज्योति पुरुषोत्तम (का निवास) है जिसके न कोई रूप है, न रेखा। इसलिये रे मन, भ्रम छोड़ कर जगजीवन राम और हरि का भजन कर। न तो इस संसार में कुछ आता हुआ दिखलाई देता है, न जाता हुआ। यह संसार पुरइन के पत्ते की तरह जहाँ उत्पन्न होता है वहीं विनष्ट हो जाता है। कबीर कहता है, मैंने सुख से 'सहज' का विचार करते हुए माया को मिथ्या जान कर छोड़ दिया। तुम भी अपने मन के मध्य में निवास करते हुए मुरारी की सेवा करो।

११

मेरे जन्म और मरण का भ्रम चला गया और गोविंद से मेरी लौ लग गई। गुरु के उपदेश की जागृति से मैं जीते-जी शून्य में लीन हो गया। हे पंडित, (तुम कहते हो कि) काशी से ही ब्रह्म-नाद उत्पन्न होता है और काशी ही में लीन हो जाता है। (मैं पूछता हूँ) जब काशी का ही विनाश हो जायगा तब यह ब्रह्म-नाद कहाँ समायगा? मैंने तो इस ब्रह्म-नाद को त्रिकुटी के संधि-भाग में देखा है और उसी की ध्वनि संसार के अणु-अणु में जाग रही है। अतः मुझमें ऐसी बुद्धि का संचार हो गया कि मैं अपने शरीर में ही त्यागी हो गया हूँ। मैंने अपने आप (में खोज कर) उस ब्रह्म को जान लिया है और मेरी आत्मा का तेज उस महातेज में लीन हो गया है। कबीर कहता है, अब मैंने गोविंद को जान लिया है और मेरा मन संतुष्ट हो गया है।

१२

हे देव ! जिसके हृदय में तुम्हारे चरण-कमल निवास करते हैं वह यहाँ, वहाँ क्यों घूमता फिरे ? उसके पास तो जैसे सभी सुख और नवों निधियाँ हैं। वह सरलता से तुम्हारे यश का गान करता है। हे देव, जब तुम उसके हृदय से कुटिलता की गाँठ खोल देते हो तब उसकी ऐसी मति हो जाती है कि वह सब जीवों में तुम्हीं को देखने लगता है। और जब बारंबार माया उसे बाधक प्रतीत होती है तो वह अप्रसन्नता से अपने मन ही को तोलता है। इस प्रकार जहाँ जहाँ वह जाता है, वहीं से उसे सुख मिलता है। तब माया उसे झटका नहीं दे सकती। कबीर कहता है, राम के प्रति प्रीत की ओट में मेरा मन पूर्ण संतुष्ट हो गया।

रागु गौंड

१

संत के मिलने पर उससे कुछ सुनना-कहना चाहिए। यदि असंत मिले तो चुप हो रहना चाहिए। बाबा, उससे क्या बोलना और क्या कहना ! चुप होकर जैसे राम नाम में ही लीन हो जाना चाहिए। संतों से बोलने में तो उपकार होता है किंतु मूर्ख से बोलना मानो झख मारना है। बोलते बोलते ही तो बुराई बढ़ती है। न बोलने से वह बेचारा क्या कर सकता है ! कबीर कहता है, ख़ाली घड़ा ही आवाज़ करता है; जो भरा होता है उसका पानी हिलता भी नहीं है (और वह शब्द भी नहीं करता।)

२

मनुष्य मर कर मनुष्य के भी काम नहीं आता। पशु मर कर दस काम सँवारता है। फिर मैं अपने कर्मों की क्या गति समझूँ ! हे बाबा, मैं क्या समझूँ ! हड्डियाँ इस तरह जल जाती हैं जैसे काठ और केश इस तरह जल जाते हैं जैसे घास का पूला। कबीर कहता है, मनुष्य तो (अपनी मोह-निद्रा से) तभी जागेगा जब यम का दण्ड उसके सिर पर लगेगा।

३

आकाश में गगन है, पाताल में भी गगन है, चारों दिशाओं में गगन रहता है। वही आनंद-मूल चिरंतन पुरुषोत्तम है। इसलिए शरीर के विनष्ट होने पर गगन विनष्ट नहीं होता। यही देख कर मुझे वैराग्य हो गया। यही जीवात्मा यहाँ आकर कहाँ चला जाता है ? (पुरुषोत्तम ने) पंच तत्वों को मिला कर शरीर का निर्माण किया, इसमें जीवात्मा जो तत्व है उसका निर्माण किस वस्तु से किया ? तुम जीव को कर्म-बद्ध कहते हो तो कर्म को किसने जीवन प्रदान किया ? हरि में ही पिंड है और पिंड ही में हरि है, वही हरि सर्वमय और निरंतर है। कबीर कहता है, मैं राम-नाम को नहीं छोड़ूँगा। जो कुछ स्वाभाविक रीति से हो रहा है, उसे होने दो।

४

[कहा जाता है कि सिकंदर लोदी ने कबीर को दंड देने के लिए उन्हें बाँध कर

हाथी के सामने फेक दिया था। किंतु हाथी चिंघाड़ मार कर दूर भाग गया था। उसी अवसर का यह पद ज्ञात होता है।] मेरी भुजाएँ बाँध कर, मुझे पिंड बनाकर (हाथी के सामने) डाल दिया किंतु हाथी ने क्रुद्ध होकर अपना सिर पृथ्वी पर दे मारा। फिर भाग कर चीत्कार करने लगा। मैं प्रभु के रूप की बलिहारी जाता हूँ। तू मेरा स्वामी है और यह तेरी ही शक्ति है (कि हाथी चीत्कार करता हुआ भाग गया। दूसरी ओर क़ाज़ी क्रुद्ध होकर बक रहा है कि 'हाथी चलाओ।) रे महावत, मैं तुझे काट डालूँगा, इस हाथी को मार कर जल्दी आगे बढ़ा।' हाथी आगे नहीं बढ़ता। वह (प्रभु का) ध्यान धरता है क्योंकि उसके हृदय में भी भगवान निवास करते हैं। भला, (संत ने क्या) अपराध किया है कि उसकी पोटली (गठरी) बनाकर हाथी के सामने रख दी। हाथी उस पोटली को ले लेकर नमस्कार करता है। क़ाज़ी अज्ञानांधकार में है अतः वह इस रहस्य को नहीं समझ सकता। तीन बार उस क़ाज़ी ने अपनी प्रतिज्ञा भरी (और हाथी के सामने संत को डाला) मन कठोर होने के कारण उसे फिर भी (ईश्वर की शक्ति में) विश्वास नहीं हुआ। कबीर कहता है, हमारा (स्वामी) गोविंद है। भक्त की आत्मा का निवास तो सदैव चौथे पद (मुक्ति) में है।

५

(इस शरीर में जो आत्मा है) यह न तो मनुष्य है, न देव। न यह यति कहलाती है, न शिव। न यह योगी है, न अवधूत। न इसके कोई माता है, न पुत्र। इस महल (शरीर) में कौन निवास करता है, उसका अंत किसी ने भी नहीं पाया। न यह गृही है, न उदासी। न यह राजा है, न भीख माँगने वाला। न इसके पिंड है, न लाल रक्त। न यह ब्राह्मण है, न बढ़ई। न यह तपस्वी कहलाता है, न शेख़। न इसे कभी जीते देखा है, न मरते। इसके 'मरने' पर जो कोई रोता है वह अपनी मर्यादा ही खोता है। गुरु के प्रसाद से मैंने रास्ता पा लिया है और मैंने जीवन-मरण दोनों को नष्ट करा लिया है। कबीर कहता है, यह जीवात्मा राम (परमात्मा) का अंश है और यह उसी प्रकार नहीं मिट सकता जिस प्रकार कागज़ पर स्याही का चिह्न नहीं मिट सकता।

६

(कबीर की भक्ति पर व्यंग्य करते हुए उनकी स्त्री लोई कहती है :) पानी के कम हो जाने से करघे का धागा टूट-टूट जाता है और वह दूसरी ओर बाहर होकर मानों अपने कान हिलाता हुआ निकल पड़ता है। बेचारा कूच फूल गया है और उस पर फफूँदी चढ़ गई है और मंडीआ (हत्था जो राछ के ऊपर रहता है) के सिर काल चढ़ने वाला है अर्थात् शीघ्र ही नष्ट होने वाला है। इसी मंडिया (हत्था) के खरीदने में सारा पैसा लग गया था। और इसके आने-जाने के प्रयोग में कभी कसर नहीं होती थी (अर्थात् सदैव करघा चलता रहता था।) किंतु अब तुरी (तोड़िया) और नरी की बात ही छोड़ दी गई है क्योंकि उनका (कबीर का) मन राम-नाम ही में रँग गया है। लड़की और लड़कों के खाने के लिए कुछ भी नहीं है। हाँ, ये मुँडिया (साधु संन्यासी)

प्रति दिन संतुष्ट किये जाते हैं। एक दो (मुँडिया) घर में हैं, एक दो रास्ते में हैं (जो घर की ओर आ रहे हैं।) हम लोग तो ज़मीन पर बिस्तर डाल कर सोते हैं और इन लोगों के लिए खाट का प्रबंध किया जाता है। ये लोग सिर धोकर कमर में पोथी बाँध लेते हैं, बस इसी बात पर ये तो मेरे घर में रोटी खाते हैं और हमें चबैना ही मिलता है। ये मंडिया (संन्यासी) और मुँडिया (संन्यासी—हमारे पति) एक हो गए हैं। इन संन्यासियों ने हमें डुबाने ही की ठानी है। (यह सुन कर कबीर ने कहा :) ऐ अंधी और निर्दयी लोई, इन्हीं मुँडियों के भजन करने से तो कबीर को (भगवान) की शरण मिली है।

७

स्वामी (मनुष्य) मर जाय, फिर भी स्त्री (माया) नहीं रोती क्योंकि उस स्त्री (माया) को रखने वाला फिर दूसरा (मनुष्य) हो जाता है। जो-जो उस स्त्री को रखता है उसका विनाश तो हो ही जाता है। उसके लिए आगे तो नरक है, यहाँ भले ही भोग-विलास हो। यही स्त्री एक अमर सुहागिनी है, क्योंकि यह सारे संसार की प्रियतमा है और समस्त जीव जंतुओं की नारी है। इस सुहागिनी (माया) के गले में सदैव हार (सौंदर्य) सुशोभित होता है किंतु यही हार संत के लिये संसार में विष उत्पन्न करता है। यही पखियारी (झगड़ालू औरत) शृंगार करती रहती है यद्यपि यह बेचारी संत के सामने हमेशा ठिठक रहती है। संत भागता है तो यह उसके पीछे पड़ जाती है (हाँ, एक बात अवश्य है कि) गुरु के प्रसाद से यह (संत की) मार को डरती रहती है। यह नारी शाक्त की शरीर-रक्षिका है। किंतु हमें तो यह भूखी-प्यासी डायन ही दृष्टि पड़ती है। हमने इसका भेद (रहस्य) अनेक प्रकार से जान लिया जब गुरुदेव कृपालु होकर हमसे मिले। कबीर कहता है, अब तो यह मुझसे दूर बाहर निकल गई है किंतु यह संसार के अंचल में (मोती की) लड़ी की भाँति शोभित हो रही है।

८

जिस घर में शोभा (वास्तविक वैभव) नहीं है, उस घर से अतिथि भूखे चले जाते हैं। ऐसे व्यक्ति के हृदय में संतोष नहीं होता। उसे तो जैसे बिना सुहागिनी (माया) के दोष लगता है। ऐसी महा पवित्र (!) सुहागिनी को धन्य है! जिसे देख कर तपस्वी और तपस्वीश्वरों का चित्त भी चंचल हो जाता है। यह सुहागिनी (माया) तो कृपणों की पुत्री है (वही इसको सुरक्षित रखते हैं) यह सुहागिनी (ईश्वर के) सेवकों को तो छोड़ देती है और (विलासी) संसार के साथ शयन करती है। वह साधुओं के दरबार में खड़ी रहती है और प्रार्थना करती है कि 'मैं तुम्हारी शरण में हूँ, मेरा निस्तार करो।' यह सुहागिनी बहुत सुंदरी है, उसके पगों में नूपुर है और वह मधुर ध्वनि करके नृत्य करती है। जब तक शरीर में प्राण हैं तभी तक वह साथ रहती है नहीं तो वह नंगे के सामने से शीघ्र ही उठ कर चली जाती है। इस सुहागिनी ने तीनों भुवन (लोक) अपने अधिकार में कर लिए हैं। इसने अठारहों पुराण और तीर्थों में

बड़ा विलास किया है। इसने ब्रह्मा, विष्णु और महेश को (अपने रूप में) आबद्ध कर लिया है और बड़े बड़े राजाओं का हृदय विदीर्ण कर दिया है। इस सुहागिनी का वार-पार नहीं है। पहले तो नायक नारद के सामने विधवा सदृश रही बाद में उसी नारद के (संयम के) घड़े को इसने फोड़ डाला। कबीर कहता है, मैं तो गुरु की कृपा से ही (इसके जाल से) छूट सका हूँ।

६

जिस प्रकार बलहर (परोपकारी व्यक्ति) घर में स्थिर नहीं बैठ सकता उसी प्रकार प्रभु के नाम के बिना तू (संसार-सागर से) कैसे पार उतर सकता है? बिना घड़े के जल ठहर नहीं सकता इसी तरह बिना साधु के अविगत (ब्रह्म) मनुष्य के पास से यों ही चला जाता है। जो राम की ओर सचेत नहीं होता उसे मैं जला देना चाहता हूँ। (मनुष्य को तो) तन और मन से राम में रमण करते हुए कर्म-क्षेत्र ही में रहना चाहिए। जिस भाँति बैल के बिना ज़मीन नहीं बोई जा सकती, उसी भाँति बिना सूत के मणि कैसे पिरोई जा सकती है? बिना घुंडी के वस्त्र में क्या संग्रह किया जाय उसी भाँति बिना साधु के अविगत (ब्रह्म) मनुष्य के पास से यों ही चला जाता है। जिस प्रकार माता पिता के बिना बालक नहीं होता उसी प्रकार बिना बिंब (रीठा) के कपड़े कैसे धोये जा सकते हैं? जिस प्रकार बिना घोड़े के सवार नहीं हो सकता उसी प्रकार बिना साधू के प्रभु के दरबार में प्रवेश नहीं हो सकता। जैसे बिना बाजे के विवाह की फेरी नहीं ली जाती उसी भाँति अवहेलना करके स्वामी अभागिनी स्त्री को छोड़ भी देता है। कबीर कहता है, मुझे तो (अपने को और प्रभु को) एक ही करना है और गुरु से दीक्षित होकर मुझे फिर नहीं मरना है।

१०

कूटना वही है जो मन को कूटा जाय। यदि मन को कूटा जाय तो यम से छुटकारा मिल सकता है। मन को कूट कूट कर यदि कसौटी पर कसा जाय तो उस कूटने पर शीघ्र ही मुक्ति प्राप्त हो सकती है। इस संसार में 'कूटना' किसे कहते हो? अपने कथोपकथन में सब लोग इस पर विचार करो। नाचना वही है जो मन से नाचा जाय। झूठमूठ ही विश्वास न कर सच्चा परिचय प्राप्त करना चाहिए। इस मन के आगे ही ताल का 'सम' आना चाहिए तभी मन इस नाचने का रक्षक हो सकता है। बाज़ारी (व्यापारी) वही है जो बाज़ार (संसार) में खोज करता है और पाँच धूर्तों (इंद्रियों) को समझा सकता है। वह नौ स्वामियों (पाँच प्राण और चार अंतःकरण) की भक्ति पहिचान सकता है। ऐसे ही व्यापारी को हम गुरु मानते हैं। चोर वही है जो बात नहीं करता, इंद्रियों को यत्न पूर्वक चुराता है और (प्रभु के) नाम का उच्चारण करता है। कबीर कहता है कि हममें इन्हीं (कूटने वाले, नाचने वाले व्यापारी और चोर) के लक्षण थे। श्री गुरुदेव को धन्य है कि उन्होंने इन्हीं रूपों को विचक्षण बना दिया।

११

श्री गोपाल को धन्य है, श्री गुरुदेव को धन्य है, श्री अनादि को धन्य है जो

भूखे को (ग्रास) सरकाते (देते) हैं। वे संत भी धन्य हैं जिन्होंने इस बात को जान लिया है, उन्हीं को सारंगपाणि (प्रभु) मिलेंगे। जो आदि पुरुष हैं, वे ही अनादि हैं। उनका नाम भोजन के स्वाद की भाँति जपना चाहिए। नाम का जाप करना चाहिए और अन्न का जाप करना चाहिए जो जल के साथ अच्छा बन जाता है। जो मनुष्य अन्न का बहिष्कार करते हैं वे तीनों लोकों में अपनी मर्यादा खोते हैं। वे अन्न छोड़ कर पाखंड करते हैं। न वे सुहागिनी की भाँति हैं और न अभागिनी की भाँति। वे लोग अपने को संसार में दूधाधारी (दूध के आधार पर रहने वाले) घोषित करते हैं किंतु गुप्त रूप से आपस में बाँट कर कसार (भुना हुआ आटा जिसमें शकर और मेवे मिले रहते हैं) खाते हैं। (ये लोग यह नहीं जानते कि) बिना अन्न के सु-काल नहीं हो सकता, अन्न को छोड़ देने से गोपाल (प्रभु) भी नहीं मिलते हैं। कबीर कहता है, हमने तो इसी प्रकार समझा है और उस अनादि स्वामी को धन्य है जिससे मेरा मन संतुष्ट हो सका है।

रागु रामकली

१

काया रूपी मद्य बेचने वाली ने (आत्मा के) लाभ के लिए गुरु का शब्द ही गुड़ किया और उसमें तृष्णा, काम, क्रोध, मद और मत्सर को काट-काट कर उसका खिंचा हुआ अर्क़ मिला दिया। क्या कोई ऐसा संत है जिसके हृदय में 'सहज' का सुख है? उसे मैं अपना समस्त जप दलाली के रूप में दे सकता हूँ। वह मेरे मन और शरीर को (उस मद की) एक बूँद भर ही दे दे। हाँ, वह संत उस मद्य बेचने वाली से वह मद प्राप्त भर कर सके। उस मद्य बेचने वाली ने चौदहों भुवनों को तो भट्ठी बनाया और उसमें ब्रह्माग्नि किंचित् मात्र ही जलाई। उसमें मुद्रा रूपी मदक मिलाई गई और 'सहज' की ध्वनि से ओत-प्रोत सुषुम्णा नाड़ी उस मद को पोंछने वाली (या निचोड़ने वाली) बनी। उसके मूल्य में तीर्थ, व्रत, नेम और पवित्र संयम तथा (शरीर के अंतर्गत) सूर्य और चंद्र रूपी आभूषण भी दे दो और आत्मा रूपी प्याले में इस अमृत का मीठा रस, जो महारस है, उसे पियो। उसकी बहती हुई धारा अत्यंत निर्मल होकर चू रही है, इसी रस में मेरा मन अनुरक्त हो गया है। कबीर कहता है, अन्य सभी रस सार-हीन हैं, एक यही महारस सच्चा है।

२

ज्ञान को गुड़ करो और ध्यान को महुवा बनाओ, संसार को भट्ठी बना कर मन में धारण करो। उसमें 'सहज' भाव में रमी हुई सुषुम्णा को नैली बनाओ, तब पीने वाला (संत) उस महारस को पी सकेगा। हे अवधूत, मेरा मन मतवाला हो गया है। इन मदों के रस को चख कर वह उन्माद पर चढ़ गया है और उसे समस्त त्रिभुवन मेंप्रकाश दीख पड़ता है। दोनों पुरों (लोक और परलोक) को जोड़ कर मैंने अपनी

भट्टी में रस उत्पन्न किया और तब इस भारी महा रस का पान किया। काम-क्रोध इन दोनों को मैंने जलने वाली लकड़ी बनाया जिससे मुझ से सांसारिकता छूट गई। गुरु के द्वारा अनुभूत ज्ञान का स्पष्ट प्रकाश फैल गया और सतगुरु से मैंने स्मृति प्राप्त की (कि मुझ में और उसमें कोई अंतर नहीं है।) दास कबीर तो उसी मद से मतवाला है जो कभी उछल (उतर) नहीं जाता।

३

हे स्वामी, तू मेरे लिए मेरु पर्वत के समान है। मैंने तेरी ही ओट (शरण) ली है। न तो तुम अस्थिर होते हो और न मेरा पतन होता है। इस भाँति हे हरि, तुमने हमारी (लज्जा) रख ली है। अब, तब, जब और कब (सभी समय) तुम ही तुम हो। और तुम्हारे प्रसाद से हम सदैव ही सुखी हैं। तुम्हारे ही भरोसे पर मैं मगहर बसा और मेरे शरीर की सारी जलन बुझ गई। पहले मैंने मगहर के दर्शन पाये, इसके बाद मैं काशी में आकर बस गया। मेरे लिए जैसा मगहर, वैसी ही काशी! हमने तो दोनों को एक ही समझा है। हम तो निर्धन जीव हैं पर हमने (ज्ञान का) यह ऐसा धन पा लिया है जिसको पाकर अभिमानी लोग अपने गुमान में फूल कर मर जाते। यदि मैं अभिमान करूँ तो मुझे ऐसा शूल चुभता है जिसके निकालने के लिए कोई (व्यक्ति) नहीं है। अभी तक (पूर्व जन्म के शूल की) तीखी चुभन से मैं बिलबिला रहा हूँ और घोर नारकीय यंत्रण में पड़ा हुआ सड़ रहा हूँ। क्या नर्क है और क्या बेचारा स्वर्ग है, संतों ने दोनों ही को देख डाला (नर्क संसार में और स्वर्ग ईश्वरा-राधन में)। हम भी अपने गुरु की कृपा से दोनों में से किसी की मर्यादा नहीं रखते। अब तो हम (भक्ति के) सिंहासन पर जा चढ़े हैं और हमें सारंगपाणि (प्रभु) मिल गए हैं। राम और कबीर दोनों मिल कर इस प्रकार एक हो गए हैं कि (भिन्नता को) कोई पहिचान ही नहीं सकता।

४

हे संतो, तुम मुझे अपना सेवक मानो और मेरी सेवा की यही सीमा है कि रात दिन मैं तुम्हारे चरण धोऊँगा और केशों (सिर) पर चँवर फेरूँगा। हम तो तुम्हारे दरबार के कुत्ते हैं। तुम्हारे आगे हम मुँह फाड़ कर भौंकते हैं। पूर्व जन्म से ही हम तुम्हारे सेवक हैं, अब इस जन्म में तो (पूर्व जन्म के अंक) मिट नहीं सकते। तुम्हारे दरवाज़े पर 'सहज' की ध्वनि से मेरा माथा दाग़ दिया गया है (उसका चिह्न मेरे मस्तक पर है) जो इस प्रकार का चिह्न मस्तक पर रखते हैं वही (संसार) संग्राम में जूझ सकते हैं और जिनके मस्तक पर यह चिह्न नहीं है, वे भाग जाते हैं। जो साधु होता है वही भक्ति को पहिचान सकता है और हरि रूपी ख़ज़ाने को प्राप्त कर सकता है। कोठे (शरीर) में एक कोठी (सहस्र दल कमल) है और उस कोठी (सहस्र दल कमल) में भी एक सूक्ष्म कोठी (ब्रह्म-रंध्र है) उस पर विचार करो। उसी स्थान की वस्तु (ब्रह्म) गुरु ने कबीर को दी है और कबीर ने उस वस्तु को सँभाल कर ग्रहण की है। फिर

कबीर ने वही वस्तु संसार को दी किंतु वह उसी ने ली जो भाग्यवान है। यह (ब्रह्मानंद रूपी) अमृत का रस जिसने पाया उसी का सौभाग्य स्थिर है।

५

जिस ब्राह्मण के मुख से वेद और गायत्री उच्चरित होती है वह ब्राह्मण (प्रभु को) क्यों भूल जाय ? सारा संसार जिस ब्राह्मण के चरण-स्पर्श करता है, वह हरि-स्मरण क्यों न करे ? मेरे ब्राह्मण, तू हरि-नाम क्यों नहीं कहता ? तू राम-नाम क्यों नहीं लेता ? पंडित तू व्यर्थ (अपने से) नर्क को (और) भरता है ! जब तू स्वयं उच्च है तो नीच (अ-ब्राह्मण) के घर भोजन क्यों करता है ? तू निकृष्ट कर्म करके अपना पेट भर रहा है। तू चौदस और अमावम (का ढोंग) रच रच कर दान माँगा करता है। हाथ में दीपक लेकर तू कुँए में गिर रहा है। तू ब्राह्मण है, मैं काशी का जुलाहा हूँ। मेरी और तेरी बराबरी कैसे बन सकती है ? हमारे (साथ वाले) तो राम-नाम कह कर उद्धार पा गए और पंडित वेद के भरोसे डूब कर मर गए !

६

एक तरुवर (शरीर) है जिसके अगणित डालियाँ और शाखें (नाड़ियाँ) और रस से भरे हुए पुष्प-पत्र (चक्र) हैं। यह तो अमृत (रस) से भरा हुआ एक बाग़ है और इसे पूर्ण करने वाला (इसका रक्षक) हरि है। अब तो मैंने राजा राम की कहानी जान ली है। राम ने मेरी अंतर्ज्योति प्रकाशित कर दी है जिसे बिरला शिष्य ही जान सकता है। पुष्प (चक्र) के रस में अनुरक्त एक भ्रमर (जीवात्मा) है जिसने (हृदय स्थल में स्थित) अनाहत चक्र[१] (जिसमें बारह दल होते हैं) को हृदय में धारण कर लिया है। इससे विशुद्ध चक्र[२] (जिसमें सोलह दल होते हैं) में पवन (प्राणायाम) संचरित होने लगा है और आकाश में फल (सहस्र दल कमल) विकसित होने लगा है। 'सहज' शक्ति से संपन्न शून्य में एक छोटा-सा पौदा (कुंडलिनी)[३] उत्पन्न (दृष्टिगत)

---

[१] इस चक्र पर जो चिंतन करता है, वह अपरिमित ज्ञान प्राप्त करता है। भूत, भविष्य और वर्तमान जानता है। वह वायु पर चल सकता है अर्थात् उसे खेचरी शक्ति (आकाश में उड़ने की शक्ति) प्राप्त हो जाती है।

[२] जो इस चक्र पर चिंतन करता है वह योगीश्वर हो जाता है। वह चारों वेदों को उनके रहस्यों सहित समझ सकता है। इस चक्र पर ध्यान करते ही साधक का संबंध बाह्य जगत से छूट कर आंतरिक जगत से हो जाता है। उसका शरीर कभी निर्बल नहीं होता और वह १००० वर्ष तक शक्ति-संपन्न जीवन व्यतीत करता है।

[३] मूलाधार चक्र में स्थित कुंडलिनी नाड़ी जो हठयोग की बड़ी महत्वपूर्ण शक्ति है और जो सर्प के समान सोती हुई अपनी ही ज्योति से आलोकित है, सुषुम्णा नाड़ी के सहारे छः चक्रों को पार करती हुई सहस्रदल कमल के मध्य ब्रह्म-रंध्र में पहुँचती है।

हो गया। इसने पृथ्वी (मूलाधार चक्र) और सागर (सहस्र दल कमल) का शोषण कर उन्हें एक कर दिया। कबीर कहता है, मैं उसका सेवक हूँ जिसने इस बिरवे (कुंडलिनी) को देख लिया है।

७

मुद्रा (हठयोग में अंग-विन्यास जैसे खेचरी, भूचरी आदि) को ही मोनि (पिटारी) बनाओ, दया को झोली बनाओ, विचार ही को पत्रका (हाथ में पहिनने का आभूषण) बनाओ, इस शरीर को सींते (संयम करते) हुए खिंथा (कंबल या गुदड़ी) बनाओ और नाम ही को आधार (आधारी लकड़ी जिसकी टेक देकर गोरख-पंथी साधु पृथ्वी पर बैठते हैं) बनाओ। हे जोगी, तुम ऐसे योग की सिद्धि करो और गुरमुख (सच्चे शिष्य) होकर जप, तप और संयम का उपभोग करो। बुद्धि को ही भस्म बना कर अपने शरीर पर चढ़ाओ और अपनी सुरति (आत्मा) को ही सिंगी (मुँह से बजाने का बाजा) के स्वर में मिलाओ तथा वैराग्य लेकर मन की सारंगी बजाते हुए शरीर रूपी नगरी में ही परिभ्रमण करो। पंच तत्वों (आकाश, पवन, तेज, जल और पृथ्वी) को लेकर हृदय में अधिष्ठित करो जिससे तुम्हारी योग-दृष्टि निरालम्ब होकर स्वतंत्र बनी रहे। कबीर कहता है, ऐ संतो सुनो, इस योग में धर्म और दया को ही (अपने चारों ओर का सुख शांतिदायक) उपवन बना लो। (कहने का तात्पर्य यह है कि योगी बाह्य आडंबरों को छोड़ कर आंतरिक भाव से योग-साधन करे।)

८

हमारा निर्माण संसार में किस उद्देश्य से हुआ और हमने इस जन्म का कौन-सा फल पाया इसका मैंने मन में कभी विचार नहीं किया तथा संसार-सागर के तरण-तारण प्रभु (जो चिंतामणि के समान इच्छाओं की पूर्ति करने वाले हैं) उन्हें भी क्षण भर के लिए मन में स्थान नहीं दिया। हे गोविंद, हम ऐसे अपराधी हैं कि जिस प्रभु ने शरीर में प्राण दिए उसकी शुद्ध भावना से भक्ति-साधना नहीं की। पराये धन, पराये शरीर, परायी स्त्री की निंदा तथा परायी अपकीर्ति मुझसे नहीं छूटी। फलस्वरूप बार बार (संसार में) मेरा आवागमन होता है और (जन्म-मरण का) यह प्रसंग कभी नहीं टूटता। जिस घर में हरि और संतों की कथा होती है, उसकी ओर मैंने एक क्षण भर भी गमन नहीं किया। मैंने सदैव लंपट, चोर और मस्त सेवकों का ही साथ किया। मेरे पास काम, क्रोध, माया, मद और मत्सर हैं और यही मेरी संपत्ति है। दया, धर्म और गुरु की सेवा ये मेरे निकट स्वप्न में भी नहीं हैं। हे दीनों पर दया करने वाले, कृपालु, भक्तवत्सल और भय हरण करने वाले दामोदर, इस सेवक को आपत्ति और संकट से सुरक्षित रक्खो। हे हरि, मैं तुम्हारी सेवा करूँगा।

इसी रंध्र में प्राण-शक्ति संचित की जाती है। यहीं आत्मा शरीर से स्वतंत्र होकर सोऽहं अनुभव करती है।

९

जिस 'स्मरण' से मुक्ति-द्वार से होकर तू संसार की उपेक्षा करते हुए बैकुंठ जाता है, तथा निर्भयता से अपने घर में तूर्य (एक प्रकार का मंगलमय बाजा) बजाता है, जिसके साथ अनाहत संगीत होता रहता है, उस 'स्मरण' को तू अपने मन में कर क्योंकि बिना'स्मरण' के कहीं भी मुक्ति नहीं है। जिस 'स्मरण' में किसी प्रकार का निषेध नहीं है, जो संसार से मुक्त कर देती है, जिससे तेरे (सुख-दुःख का) बहुत बड़ा भार उतर जाता है, उस 'स्मरण' को तू हृदय में नमस्कार कर। ऐसा करने से तू बार बार संसार में आने से बच जायगा। जिस 'स्मरण' से तू (अलौकिक) क्रीड़ाएँ कर सकता है, वह स्मरण बिना तेल का सुसज्जित किया हुआ दीपक है। वह दीपक इस संसार में अमर है। वह शरीर से काम, क्रोध का विषय निकाल कर नष्ट कर देता है। जिस स्मरण से तेरी गति हो सकती है उस स्मरण को तू अपने कंठ में पिरोकर रख। उसी स्मरण को तू करता रह, उसे (गले से) उतार कर मत रख। गुरु के प्रसाद से तू अवश्य पार उतर जायगा। जिस स्मरण के करने में तेरे लिए कोई मर्यादा नहीं है और जिससे तू चद्दर तान कर अपने घर में निर्भय सो सकता है; सुख देने वाली सेज पर तेरे जीवन का विकास हो सकता है, ऐसे स्मरण का तू प्रतिदिन ही पान करता रह। जिस स्मरण से तेरी सारी बलाएँ नष्ट होती है, जिस स्मरण से तुझे माया बिद्ध नहीं कर सकती, उस स्मरण से तू बार बार हरि का गुण-गान कर; और यह स्मरण तुझे सतगुरु से प्राप्त होगा। दिन रात तू सदैव स्मरण कर, उठते बैठते चन्द्रग्रहण की भाँति तू उसे ग्रहण कर। जागते सोते तू उसी स्मरण-रस का भोग कर। हरि के स्मरण से ही उनसे मिलने का तुझे संयोग प्राप्त होगा। जिस स्मरण से तुझ पर (कुछ) भार भी नहीं पड़ता वही स्मरण राम-नाम का सहारा है। कबीर कहता है, जिस (स्मरण) का कोई अंत नहीं है, उसके आगे तंत्र मंत्र कुछ भी नहीं हैं।

१०

जब गुरु ने (वासनाओं की) अग्नि बुझा दी तो बंधन में पड़ते पड़ते ही मुक्ति मिल गई। जब मैंने मन को नख-शिख से पहिचान लिया तब मैंने अंतरंग होकर स्नान किया। और जब मैं उन्मन मुद्रा में रह कर विशुद्ध हुआ तब मैंने पवन (प्राणायाम) पर आधिपत्य प्राप्त किया तथा मृत्यु, जन्म और वृद्धावस्था से रहित हो गया। जब मैंने शक्ति के सहारे (अपनी प्रवृत्तियों को) उलट लिया (अन्तमुंखी कर लिया) तब गगन (ब्रह्म-रंध्र) में प्रवेश पा सका। जब मैंने कुंडलिनी (सर्प) से (षट्) चक्र बेध लिए तब मैं एकाकी स्वामी (ब्रह्म) से भेट कर सका। जब मैं मोहमयी आशा से रहित हो गया तब मेरे (सहस्रदल स्थित) चंद्र ने (मूलाधार स्थित) सूर्यका ग्रास कर लिया। जब मैंने भरपूर कुंभक (प्राणायाम में साँस-रोकना साध) लिया तब वहाँ (शून्य गगन में) अनाहत वीणा बज सकी। मैं बकते-बकते (आध्यात्मिक ज्ञान

का) शब्द सुना ही गया और मैंने सुनते-सुनते उसे अपने मन में बसा ही लिया। तू भी कर्म करते-करते (भवसागर से) पार उतर ही जायगा। कबीर यह सार (शब्द) कहता है।

११

चंद्र और सूर्य ये दोनों ज्योति के स्वरूप हैं। उस ज्योति के भीतर ही अनुपम ब्रह्म है। ऐ ज्ञानी, तू ब्रह्म का विचार कर। ज्योति के भीतर ही उसने अपना विस्तार किया है। निरंजन और अलख रूपी हीरे (पवित्र और ज्योतिपुंज ईश्वर) को देख कर ऐ हीरे (संत), तू प्रणाम कर। यही कबीर कहता है।

१२

हे भाई, यह संसार होशियार और बेदार (जागता) है किंतु यह जागने वाले पर ही डाका डालता है और वेद रूपी होशियार पहरा देने वाले के सामने ही यम (मृत्यु) जीव को ले जाता है। नींबू बड़ा होकर आम के बराबर हो गया और आम (सड़ कर) नींम के समान (कड़ुवा) हो गया, केला पक कर झड़ गया, नारियल और सेमल के फल भी पक गये (अर्थात् इतना अधिक काल व्यतीत हो गया) किंतु ऐ मूर्ख, तू अब भी मूढ़ और गँवार बना हुआ है। हरि शक्कर होकर रेत में बिखर गया है, हाथी (रूपी अहंकार) से वह चुना नहीं जा सकता। कबीर कहता है, कुल और जाति-पाँति को छोड़ कर चींटी होकर उस (हरि) को चुन लिया जा सकता है।

रागु मारू

१

हे पंडित, तुम किस कुमति में लगे हुए हो ? ऐ अभागे, यदि तुम राम का जाप न करोगे तो अपने समस्त परिवार के साथ डूब जाओगे। वेद-पुराण पढ़ने से तुमने क्या लाभ उठाया, वह जो जैसे गधे पर चंदन के भार की भाँति ही ज्ञात होता है। जब तुमने राम-नाम का रहस्य नहीं समझा तो पार कैसे उतरोगे ? जीव का वध कर तुम उसे धर्म कह कर सम्मानित करते हो तो भाई, तुम अधर्म क्या कहोगे ? जब तुम परस्पर एक दूसरे को 'मुनि' कह कर प्रतिष्ठित करते हो तो कसाई किसे कहते हो ? तुम तो मन से ही अंधे हो, स्वयं कुछ समझते नहीं, फिर तुम समझाते किसे हो ? माया (रुपये पैसे) के लिए तुम अपनी विद्या बेचते हो। तुम्हारा जन्म तो व्यर्थ ही जा रहा है। नारद के वचनों को कहने वाले व्यास और शुकदेव से जाकर पूछो (तब तुम जानोगे कि) राम में रम कर ही तुम (संसार के जंजाल से) छूटोगे। नहीं तो, कबीर कहता है, हे भाई, तुम निश्चय ही डूब जाओगे।

२

जब तक तू मन से विकार न छोड़ देगा तब तक वन में निवास करने से भी तुझे

क्या मिलेगा ? संसार में उन्हीं का कार्य पूरा होता है जिन्होंने घर ही को वन के समान कर लिया है। राम से ही वास्तविक सुख की प्राप्ति हो सकती है इसलिए अपनी अंतरात्मा के रंग में रँग कर ही रमण करना चाहिए। (सिर पर) जटा रख कर और (शरीर पर) भस्म रमा कर गुफा में वास करने से क्या होता है ? मन के जीतने से ही संसार जीता जा सकता है जिससे विषय-वासनाओं के प्रति उदासीनता होती है। (संसार के) सब लोग आँखों में अंजन लगा कर किंचित् देखने में ही पथ-भ्रष्ट हो गए किंतु जिन लोगों ने ज्ञानांजन प्राप्त किया है, वही आँखें वास्तविक और आदर्श आँखें हैं। कबीर कहता है, अब मैंने (सब रहस्य) जान लिया क्योंकि गुरु ने मुझे ज्ञान समझा दिया है। और जब मैंने आंतरिक रूप से हरि से भेट कर ली है तब मेरा मन अन्यत्र नहीं जावेगा।

३

जिसको ऋद्धि-सिद्धि स्फुरित हो गई उसको अन्य किसी से क्या काम ? फिर तेरे कहने की बात मैं क्या कहूँ ! मुझे बोलते ही बड़ी लज्जा मालूम होती है। जिस आत्मा ने राम की प्राप्ति कर ली है वह बार बार संसार में नहीं आती। यह झूठा संसार बहुत ठगता है वह भी दो दिन के सुखोपयोग के लिए। किंतु जिस भक्त ने राम रूपी जल का पान कर लिया उसे फिर कभी प्यास नहीं लगी। गुरु के प्रसाद से जिसने (इस संसार को) समझा उसकी सांसारिक आशा निराशा में परिणत हो गई। जब आत्मा (संसार से) उदास हो जाती है तब सभी सुख निर्भय होकर उसके पास चले आते हैं। कबीर कहता है, मैंने राम-नाम का रस चख लिया है और हरि का नाम लेने से ही हरि ने मुझे (संसार-सागर से) तार दिया है। अब तो मैं शुद्ध स्वर्ण के समान हो गया और मेरा भ्रम समुद्र के पार (दूर) चला गया।

४

समुद्र के जल में जल की भाँति और नदी में तरंग की भाँति (हम ब्रह्म में) समा जावेंगे और समदर्शी होते हुए शून्य (ब्रह्म में) शून्य (अवस्था रहित आत्मा) को मिला कर हम पवन के सदृश्य सूक्ष्म और अदृश्य हो जावेंगे। फिर हम (इस संसार में) क्यों आवेंगे ? आवागमन तो उसी (ब्रह्म के) आदेश से होता है। उस आदेश को समझ कर हम (ब्रह्म में ही) लीन हो जावेंगे। जिस प्रकार हम पंच धातु की रचना (मनुष्य-शरीर) से रहित होंगे उसी प्रकार हम भ्रम से भी रहित हो जावेंगे। जब हम 'दर्शन' का परित्याग कर समदर्शी हो जावेंगे तब हम एक ही नाम की आराधना करेंगे। हम जिस कार्य के लिए प्रेरित किए जावेंगे, उस ओर ही प्रवृत्त हो जावेंगे। हम इसी भाँति कर्मार्जन करेंगे और यदि हम पर हरि अपनी कृपा करेंगे तो हम गुरु के शब्द में लीन हो जावेंगे। यदि जीवन ही में तुम में मरण (इंद्रियों की शक्ति नष्ट) हो जावे और फिर उस मरण ही में फिर जीवन (आध्यात्मिकता की जागृति) हो

जावे[1] तो फिर तुम्हारा जन्म न होगा (तुम्हें मुक्ति मिल जायगी।) कबीर कहता है, जो नाम में लीन हो गए हैं उनकी लौ शून्य (ब्रह्म) ही में शयन करती है।

५

(हे राम) जो तुम मुझे (अपने से) दूर करते हो तो फिर मेरी मुक्ति कहाँ है, यह बतलाओ? तुम एक होकर अनेक रूपों में सर्वत्र व्याप्त हो, अब मुझे कैसे भ्रम में डालते हो? हे राम, तुम मुझे तार कर कहाँ ले जाओगे? तुम मुझे शुद्ध मुक्ति क्या देते हो? किसी भाँति मैं तुम्हारा प्रसाद (अनुग्रह) पा सकूँ! तुम्हें तारण-तरण तभी तक कहा जा सकता है जब तक कि (ईश्वरीय) तत्त्व का ज्ञान नहीं होता। कबीर कहता है, अब तो मैं अपने शरीर ही में पवित्र हो गया और पूर्ण संतुष्ट हो गया हूँ।

६

जिस रावण ने अपना दुर्ग और प्राचीर स्वर्ण से बनवाया, वह भी उन्हें छोड़ गया फिर तुम अपना मनचाहा क्यों करते हो? जब यमराज तुम्हें केशों के बल पकड़ेगा उस समय केवल हरि का नाम ही तुम्हें मुक्त करा सकेगा। समय कु-समय तुमने इस बाँधने वाले प्रपंच (संसार) को अपना स्वामी क्यों बनाया? कबीर कहता है, अंत में उन्हीं को मुक्ति मिलती है जिनके हृदय में राम-रसायन है।

७

इस शरीर रूपी गाँव में आत्मा महतो (मुखिया) है। उस गाँव में पाँच किसान (इंद्रियाँ) निवास करती हैं। उनके नाम हैं नैनू (नेत्र) नकटू (नाक) स्रवनू (कान) रसपति (जिह्वा) और इंद्री (स्पर्श)। ये सब महतो (आत्मा) का कहना नहीं मानते। इसलिए हे बाबा (गुरु), अब मैं इस (शरीर रूपी) गाँव में नहीं बसूँगा। चेतू (चैतन्य मन) नाम का जो कायस्थ (पटवारी) है, वह मुझसे क्षण क्षण का लेखा माँगता है। और जब धर्मराज मेरा लेखा माँगता है तब (कर्मों का) काफ़ी बक़ाया निकलता है। पाँच किसान तो भाग ही गए और यह बेचारा जीव बाँध कर (धर्मराज के) दरबार में ले जाया जाता है। कबीर कहता है, हे संतो, सुनो। खेत ही से मुझे अलग कर दो। इस बार तो इस सेवक को क्षमा करो, फिर मैं इस संसार-सागर में नहीं आऊँगा।

८

हे बैरागी, अनुभव को किसी ने नहीं देखा। वह अनुभव तो भय के बिना ही

---

[1] इस मारिफ़त (सूफ़ीमत की साधना की अंतिम अवस्था) में जाकर आत्मा और परमात्मा का सम्मिलन होता है। वहाँ आत्मा स्वयं 'फ़ना' होकर 'बक़ा' के लिए प्रस्तुत होती है। इस प्रकार आत्मा में परमात्मा का अनुभव होने लगता है और 'अनल हक़' सार्थक हो जाता है। प्रेम में चूर होकर आत्मा यह आध्यात्मिक यात्रा पार कर ईश्वर में मिलती है और तब दोनों शराब-पानी की तरह मिल जाते हैं।

कबीर का रहस्यवाद, पृ० २२

होता है। मनुष्य अपनी भूल-चूक को दूर ही से देख कर भय पाता है। हे बैरागी, यदि वह (प्रभु का) आदेश समझ ले तो अवश्य निर्भय हो जावेगा। हे बैरागी, हरि से पाखंड नहीं करना चाहिये, पाखंड में तो सारा संसार ही रत हैं। हे बैरागी, तू तृष्णा के पाश को नहीं छोड़ता, माया के जाल में तो सभी मनुष्य हैं। हे बैरागी, चिंता की ज्वाला ने शरीर को जला दिया है इसलिये मन को मृतक हो जाना चाहिए। हे बैरागी, सतगुरु के बिना वैराग्य नहीं होता जिसकी अभिलाषा सभी लोग करते हैं। हे बैरागी, सत्कर्म होने से ही सतगुरु मिलते हैं और उन्हीं से 'सहज' प्राप्त किया जा सकता है। कबीर कहता है, हे बैरागी, एक बिनती है कि मुझे भव-भागर से पार उतार दो। [टिप्पणी—'वरण हंबै' का तात्पर्य है 'ठीक है'। इस शब्द का प्रयोग गीत के अंत में टेक की तरह किया जाता है जिससे आलाप लिया जा सके।]

९

हे राजन्, तुम्हारे घर कौन आवेगा ? मैंने विदुर का ऐसा भाव देखा है, जिससे वह अकिंचन मुझे बहुत अच्छा लगता है। तुम हाथी (आदि की समृद्धि) से ऐसे (मद में) भूल गए हो कि तुमने श्रीभगवान् को नहीं जाना। तुम्हारे दूध से अधिक मैंने विदुर के पानी को अमृत करके माना है। तुम्हारी खीर की तुलना में मैंने उनकी साग पाई जिसका गुण गाते गाते मैंने सारी रात्रि व्यतीत कर दी। कबीर का स्वामी आनंद-मय विनोद करने वाला है जिसने किसी के जाति (बंधन) को नहीं माना।

सलोक—(ब्रह्म-रंध्र के) आकाश में (अनाहत नाद का) नगाड़ा बजा और निशाने (धौंसे-अजपा जाप) पर चोट पड़ी। इस संकेत पर शूरवीर (साधक) रणक्षेत्र (संसार) में सन्नद्ध हुआ कि संघर्ष लेने का यही अवसर है। शूरवीर (सच्चे संत) की पहिचान यही है कि वह दीन के हितार्थ (संसार से) युद्ध करे और अंग-प्रत्यंग के टुकड़े टुकड़े कट जाने पर भी संसार रूपी युद्ध-क्षेत्र से पराङ्मुख न हो।

१०

हे पागल, तूने दीन-दुखियों को भुला दिया है। तू अपना पेट भरता रहा और पशु की भाँति सोया। इस प्रकार हे मूर्ख, तूने अपना जन्म खो दिया। तूने साधु-संगति कभी नहीं की और झूठा प्रपंच ही रचा। कुत्ता, सुअर और कौवे की तरह तू उठ कर (संसार में) भटकता हुआ चला। अपने ही (बंधु बांधवों को) तू महान करके मानता है और दूसरों को लघु-मात्र। मनसा, वाचा, कर्मणा मैंने (तेरे बंधु बांधवों को स्वर्ग के धोखे में) नर्क जाते हुए देखा है। वे लोग कामी, क्रोधी, चालाक, धोखेबाज़ और बेकाम हैं जिनका जन्म निंदा करते ही व्यतीत हुआ और उन्होंने राम का स्मरण कभी नहीं किया। कबीर कहता है, ऐ मूर्ख, तू मूढ़ और गँवार है जो अभी भी नहीं चेतता। जब तूने राम-नाम ही नहीं जाना तो तू (भव-सागर के) पार कैसे उतरेगा ?

११

रे मन, राम का स्मरण कर, नहीं तो पछतायगा। तू पापी (धन-संपत्ति का) लोभ करता है (किंतु तू यह नहीं जानता कि) वह आज-कल ही में (संसार से) उठ जायगा। तूने लालच के लिए अपना जन्म खोया, अब तू माया और भ्रम में भूलेगा। धन और यौवन का गर्व मत कर, यह कागज़ की तरह गल जायगा। जब यमराज आकर तुझे बाल पकड़ कर पछाड़ेगा, तब उस दिन तेरा कुछ भी वश नहीं चलेगा। यदि तूने स्मरण, भजन और दया नहीं की तो तू अपने मुख पर ही चोट खायगा। जब धर्मराज तुझ से तेरे जीवन का लेखा माँगेंगे तब उनके सामने तू क्या मुख लेकर जायगा? कबीर कहता है, रे संतो (यह मन) साधु-संगति के सहारे (संसार-सागर से) अवश्य तर जायगा।

रागु केदारा

१

स्तुति और निंदा इन दोनों से रहित होकर मान और अभिमान दोनों को छोड़ दो। जो लोहे और सोने को समान रूप से जानते हैं, वे भगवान के प्रतिरूप हैं। (हे हरि) कोई एकाध ही तेरा सेवक है जो काम, क्रोध, लोभ और मोह को छोड़ कर तेरा पद पहिचानता है। रजोगुण, तमोगुण और सतोगुण इन्हें तेरी माया (के रूप) ही कहना चाहिये। जो मनुष्य (इनसे परे) चौथे पद (अर्थात् मुक्ति) को पहिचानता है उसी ने परमपद प्राप्त किया है। तीर्थ, व्रत, नियम और पवित्र संयम से वह सदैव निष्काम रहता है। तृष्णा और माया के भ्रम से जो रहित हो जाता है वही आत्माराम (हृदय के अंतर्गत ईश्वरीय) बोध की ओर देख सकता है। जिस (घर) शरीर में (ज्ञान का) दीपक प्रकाशित हुआ, वहाँ (माया और मोह का) अंधकार नष्ट हो गया। कबीर कहता है, वह दास निर्भय होकर परिपूर्ण हो जाता है, उसका भ्रम भाग जाता है।

२

किन्हीं ने काँसे और ताँबे में व्यापार किया और किन्हीं ने लौंग और सुपारी में। संतों ने गोविंद के नाम से व्यापार किया। (और संतों के इस व्यापार में) हमारी भी खेप है। इस प्रकार हम हरि के नाम के व्यापारी हैं। (इस व्यापार में) हमारे हाथ अमूल्य हीरा (भक्ति-भाव) लग गया है जिससे हमारी सांसारिकता छूट गई है। जब हम सच्ची वस्तु (व्यापार में) लाए हैं तो (उसका मूल्य भी) सच ही लगा क्योंकि हम सच्ची वस्तु ही के व्यवहारी हैं। सच्ची वस्तु की खेप ढोने से ही हम सीधे सत्य का भांडार रखने वाले के समीप पहुँच गए हैं। (वास्तव में बात तो यह है कि) ईश्वर ही स्वयं रत्न, जवाहर और माणिक है तथा स्वयं रत्नक (फ़ा०—पासदार) है। स्वयं ही दशों दिशा रूप है और स्वयं ही (उन दिशाओं में) चलाने वाला है। व्यापारी बेचारा

तो निश्चल (अशक्त) है। तुम मन को तो बैल बनाओ और आत्मा (सुरति को) मार्ग तथा ज्ञान से अपनी गोनि (शरीर) भर लो। कबीर कहता है, हे संतो! इसी भाँति हमारी खेप को सफलता मिली है।

३

अरी मूर्ख गँवार कलवारिनि (आत्मा), तू पवन को उलट ले (अर्थात् प्राणायाम कर) और मतवाले मन के द्वारा मेरु-दंड की चोटी पर रक्खी हुई भट्ठी से अमृत की धार को चूने दे। हे भाई, राम की दुहाई बोलो। सदा मति (निरंतर बुद्धिमान) संत होकर इस दुर्लभ (रस) का पान करो जिससे सरलतापूर्वक प्यास बुझाई जा सकती है। इस (संसार के) भय में कोई बिरला ही भक्ति-भाव समझ सकता है और वही ईश्वर रूपी रस प्राप्त कर सकता है। यों तो जितने शरीर हैं, सभी में अमृत है किंतु जिसे तू पसंद करे, उसी को रस-पान करा। (उसी को अनुभव करा कि तुझ में ही ब्रह्म-द्रव है।) एक नगरी (शरीर) है, उसके नौ दरवाज़े हैं। उसमें दौड़ते हुए जो अपने को रोक सकता है और त्रिकुटी को छोड़ कर जो अपना दसवाँ द्वार (ब्रह्म-रंध्र) खोल सकता है, हे भाई, वही सच्चा मनुष्य (मनखीवा) है अथवा उसीमें सच्चा मतवाला-पन (खीवा) है। कबीर विचार कर कहता है, ऐसे मनुष्य को पूर्ण अभय-पद प्राप्त होता है और उसका संपूर्ण ताप नष्ट हो जाता है। वह इस (ब्रह्म-रस रूपी) मद का पान कर उसी नशे में ऊँची नीची (अटपट) चाल से जाता है जैसे नींद में खूँद करता हुआ (पैर अस्त-व्यस्त रखता हुआ) कोई मनुष्य चलता है।

४

काम, क्रोध और तृष्णा से ग्रसित होकर तुमने (प्रभु की) एक गति न समझी। तुम्हें फूटी आँखों से कुछ भी नहीं सूझ पड़ता। (ज्ञात होता है) तुम बिना पानी के ही डूब कर मर गए। तुम टेढ़े टेढ़े क्यों चलते हो? तुम अस्थि, चर्म और विष्ठा से ढके हुए हो और दुर्गंधि ही के आवरण-मात्र हो। तुम किस भ्रम में भूल कर राम का जाप नहीं करते? तुमसे काल (मृत्यु) अधिक दूर नहीं है। तुम अनेक यत्नों से इस शरीर की रक्षा करते हो कि यह पूरी अवस्था (वृद्धावस्था) तक रहे। अपनी शक्ति से किया हुआ कुछ भी नहीं होता। (बेचारा) प्राणी कर ही क्या सकता है? यदि उस (ब्रह्म) की ही इच्छा हो तो एक नाम की व्याख्या करने वाले सतगुरु से भेट हो सकती है। ऐ मूर्ख, तुम बालू के घर में रहते हुए अपने शरीर को फुला रहे हो? कबीर कहता है, जिन्होंने राम को नहीं पहिचाना वे बहुत चतुर होते हुए भी अंत में (भव-सागर में) डूब ही गए।

५

(तुम) टेढ़ी पाग बाँध कर टेढ़े चले और (पान के) बीड़े खाने लगे! भक्ति-भाव से कुछ भी सरोकार न रख कर कहने लगे कि काम ही मेरा दीवान (मंत्री) है। तुमने

अपने अभिमान में राम को भुला दिया ! स्वर्ण और महा सुंदरी स्त्री को देख-देख कर तुम सुख मानने लगे ? लालच, झूठ और विकारों के महा मद में (तुम पड़े रहे) और इस प्रकार तुम्हारी अवधि (आयु) ही व्यतीत हो गई ! कबीर कहता है, अंत के समय में (समझ लो कि) यमराज सामने आकर खड़ा हो गया !

६

जीवन के चार दिनों में तुम अपनी नौबत (वैभव और मंगल सूचक वाद्य) बजा कर चले। किंतु खाट, गठरी, घड़े आदि में से इतना भी (ज़रा सा भी) तुम अपने साथ नहीं ले जा सके। देहरी पर बैठ कर स्त्री रोती है, दरवाज़े तक माँ (रोते हुए) साथ जाती है। श्मशान भूमि तक सब कुटुंब के लोग मिल कर जाते हैं। (बाद में) जीवात्मा अकेला ही जाता है। फिर लौट कर वे (जीवन काल के) पुत्र, संपत्ति, पुर और नगर देखने को नहीं मिलते। कबीर कहता है, तुम राम का स्मरण क्यों नहीं करते ? यह तुम्हारा जीवन व्यर्थ जा रहा है !

रागु भैरउ

१

हरि का नाम रूपी यही धन मेरे पास है। उसे मैं न तो गाँठ में बाँध कर रखता हूँ (कि कोई देख न ले) और न बेच कर खाता हूँ (कि नष्ट न हो जावे।) न मेरे यहाँ खेती है, न बाड़ी। (हे प्रभु) मैं सेवक तो केवल भक्ति करता हूँ और तुम्हारी शरण में हूँ। न मेरे पास माया (संपदा) है, न पूँजी। तुम्हें छोड़ कर और किसी को मैं जानता भी नहीं। न मेरे बंधु-बाँधव हैं, न मेरे भाई हैं। न मेरे संगी-साथी हैं जो अंत तक मेरे मित्र बनें रहें। जो (अपने मन को) माया से उदास रखता है, कबीर कहता है, मैं उसका सेवक हूँ।

२

इस संसार में नग्न रूप से आना है और नग्न रूप से ही जाना है। (यहाँ) कोई नहीं रहेगा, चाहे वह राजा हो या राणा। मेरी नव निधि तो राजा राम ही है। संपत्ति के नाम से तुम्हारे पास स्त्री और धन है। साथी तुम्हारे साथ न आते हैं न जाते हैं, क्या हुआ यदि तुमने अपने द्वार पर हाथी बाँध लिया ! लंका गढ़ सोने से बनाया गया था किंतु मूर्ख रावण अपने साथ क्या ले गया ? कबीर कहता है, (प्रभु के) गुणों का कुछ चिंतन करो, नहीं तो जुआड़ी की तरह तुम दोनों हाथ झाड़ कर (इस संसार से) चले जाओगे।

३

ब्रह्मा मैला है, इंद्र मैला है, सूर्य मैला है और चंद्र भी मैला है। यह सारा संसार मैला और मलीन है। एक हरि ही निर्मल है जिसका न अंत है, न पार है। ब्रह्मांडों के स्वामी भी मैले हैं, रात्रि और (महीने के) तीस दिन भी मैले हैं। मोती मैला है,

हीरा भी मैला है। पवन, अग्नि और पानी भी मैला है। शिव शंकर महेश भी मैले हैं। सिद्ध, साधक और वेष-धारी भी मैले हैं। जोगी और जटाधारी जंगम भी मैले हैं और जीवात्मा सहित शरीर भी मैला है। कबीर कहता है, वही सच्चा सेवक है जो राम को जानता है।

४

मन को तो मक्का कर और शरीर को क़िबला (पश्चिम दिशा—जिस ओर मुँह करके नमाज़ पढ़ी जाती है।) कर। (तुझमें) जो बोलने वाला है यही तेरा सब से बड़ा गुरु है। ऐ मुल्ला, तू इस (शरीर रूपी) मसजिद के दसों दरवाज़ों से बाँग दे और नमाज़ पढ़। तामसी वृत्ति, भ्रम और मैलेपन (कदूरी) को तोड़-फोड़ (मिसमिल कर) दे। यदि तू पाँचों इंद्रियों से ईश्वर का नाम कहेगा तो तुझ में धैर्य उत्पन्न होगा। हिंदू और मुसलमान का स्वामी एक ही है, इसके लिये मुल्ला क्या करे और शेख़ क्या करे! कबीर कहता है, मैं तो दीवाना हो गया हूँ। मेरा मन चोरी चोरी से 'सहज' में लीन हो गया है।

५

(तुम कहते हो) गंगा के साथ (मिलकर) नदी बिगड़ गई। (मैं कहता हूँ) वह नदी गंगा ही होकर प्रवाहित हो गई। (उसी भाँति) मैं राम की शपथ लेकर कहता हूँ कि कबीर भी बिगड़ गया, किंतु वह अब सच्चा हो गया और अन्यत्र कहीं नहीं जाता। (तुम कहते हो) चंदन के साथ वृक्ष ख़राब हो गया, (मैं कहता हूँ) वह वृक्ष चंदन ही होकर शुद्ध हो गया। (तुम कहते हो) पारस पत्थर के साथ ताँबा ख़राब हो गया; (मैं कहता हूँ) वह ताँबा स्वर्ण होकर शुद्ध हो गया। इसी भाँति (तुम कहते हो) संतों के साथ कबीर बिगड़ गया (मैं कहता हूँ) वह कबीर राम ही होकर अपना उद्धार पा गया।

६

माथे पर तिलक और हाथ में माला—यह वेष बना कर लोगों ने राम को खिलौना समझ लिया। जो मैं पागल हूँ तो हे राम, तेरा ही हूँ। संसार के लोग मेरा रहस्य क्या जानें! मैं न पत्ती तोड़ता हूँ, न देवताओं की पूजा करता हूँ। मैं समझता हूँ कि राम की भक्ति के बिना सभी सेवा-कार्य निष्फल है। मैं सत्गुरु की पूजा करता हूँ और उन्हें सदैव मनाता रहता हूँ। ऐसी सेवा से मैं दरगाह (सिद्ध पुरुष की समाधि-पूजा) का सुख प्राप्त करता हूँ। लोग कहते हैं, कबीर पागल हो गया है किंतु कबीर (के मन) का रहस्य केवल राम पहिचानता है।

७

हमारी जाति और कुल दोनों ही उलटे हैं। इन दोनों को भुलाकर हमने शून्य में ('सहज' रूप से) बुनने का कार्य किया है। अब हमारे जीवन का एक भी झगड़ा शेष

नहीं रहा और हमने पंडित और मुल्ला दोनों छोड़ दिए हैं। मैं स्वयं ही ('सहज' रूप से) बुन बुन कर अपने को ही (वस्त्र) पहिनाता हूँ और जिस मनोभाव में अहंकार नहीं है उस मनोभाव से (ईश्वर का गुण) गाता हूँ। पंडित और मुल्ला ने मेरे जीवन (की गति-विधि) के लिए जो लिख दिया है उसे मैंने छोड़ दिया, उसमें से मैंने कुछ भी नहीं लिया। ऐ सैय्यद! तू अपने हृदय के वास्तविक प्रेम (इखलास) को पहिचान ले। यदि तू स्वयं निज रूप में खोजे तो तुझे उस खोज में वह महान (कबीर) मिल जावेगा।

८

निर्धन को कोई आदर नहीं देता। वह लाख यत्न करे, उसकी ओर कोई ध्यान ही नहीं देता। यदि निर्धन धनवान के पास जाता है तो निर्धन को आगे बैठा देख कर धनवान पीठ फेर कर बैठ जाता है। यदि धनवान निर्धन के यहाँ जाता है तो वह निर्धन धनवान को आदर देता है और अपने समीप बुला लेता है। (लोग यह नहीं समझते कि) निर्धन और धनवान दोनों ही भाई भाई हैं। (दोनों में जो अंतर है) वह तो प्रभु का कौतुक है जो मिटाया नहीं जा सकता। कबीर कहता है, वास्तव में निर्धन तो वही है जिसके हृदय में राम-नाम रूपी धन नहीं है।

९

जब मैंने गुरु की सेवा से भक्ति अर्जित की तब कहीं जाकर मैंने यह मनुष्य का शरीर प्राप्त किया है। इस मनुष्य-शरीर की अभिलाषा देवता तक करते हैं। इसलिए इस मनुष्य-शरीर से हरि का भजन कर उनकी सेवा करो। गोविन्द का भजन करो, उन्हें कभी भूल मत जाओ। मनुष्य-शरीर का यही तो बड़ा लाभ है। जिस समय तक तेरे शरीर में वृद्धावस्था और रोग नहीं आया, जिस समय तक तेरे शरीर को मृत्यु ने आकर नहीं पकड़ा, जिस समय तक तेरी वाणी वृद्धावस्था की शिथिलता से व्याकुल नहीं हुई उस समय तक हे मन, तू सारंगपाणि (प्रभु) का भजन कर ले। हे भाई, यदि तू अभी (भगवान का) भजन नहीं करता, तो कब करेगा? जब तेरा अंत समय आवेगा तब तुझ से भजन करते न बन पड़ेगा। जो कुछ भी तू इस समय करेगा वही सार है, बाद में तू पछतावेगा और भव-सागर से पार नहीं जा सकेगा। वस्तुतः सेवक वही है जो परिसेवना करता है, उसी ने निरंजन देव को प्राप्त किया है। गुरु से मिल कर उसके (हृदय-मंदिर के) कपाट खुल गए हैं और वह फिर चौरासी लाख योनियों के मार्ग में आने वाला नहीं है। यही तेरा अवसर है, यही तेरी बारी है। तू अपने हृदय के भीतर विचार करके देख। कबीर कहता है, इस अवसर पर चाहे तू विजय प्राप्त कर ले या पराजित हो जा, मैंने अनेक प्रकार से पुकार-पुकार कर यही कहा है।

१०

(शिव की पुरी) बनारस में बुद्धि का सार रूप (गुरु) निवास करता है। वहाँ तुम उससे मिल कर (धर्म) विचार करो। बुरे (ईत) और निकम्मे (ऊत) की साधारण बातों में पड़ कर मेरा जुलाहे का कार्य कर करके अपना जीवन कौन नष्ट करे?

मेरा ध्यान तो अपने वास्तविक पद के ऊपर ही लगा हुआ है और विश्व के स्वामी राम का नाम ही मेरा ब्रह्म-ज्ञान है। मूलाधार चक्र के द्वार को मैंने बंधन में बाँध लिया है और उसके अंतर्गत सूर्य के ऊपर मैंने सहस्रदल कमल के चंद्र को स्थिर कर रक्खा है। पश्चिम के द्वार (इडा नाड़ी की मुख पर) मूलाधार चक्र का सूर्य तप रहा है, किंतु मुझे उसकी चिंता नहीं है क्योंकि उसके ऊपर मेरु-दंड की स्थिति है। पश्चिम द्वार (इडा नाड़ी) के सिरे पर एक ओट (आज्ञा चक्र) है। उस ओट (आज्ञा चक्र) के ऊपर एक दूसरी खिड़की (ब्रह्म-रंध्र) है। उस खिड़की के ऊपर दशम द्वार है। कबीर कहता है, न तो अंत उसका ही है और न उसका पार ही पाया जा सकता है।

११

वही (सच्चा) मुल्ला (बहुत बड़ा विद्वान्) है जो मन से लड़ता है और गुरु के उपदेश से काल से द्वन्द्व युद्ध करता है। वह काल-पुरुष (यमराज) का मान-मर्दन करता है। उस मुल्ला का (मैं) सदैव अभिनंदन करता हूँ। अंतर्यामी ब्रह्म तो सदैव समीप है उसे (तुम) दूर क्यों बतलाते हो ? यदि तुम (इस संसार के) संघर्ष (दुंदर) को वश में कर लोगे तो सदैव ही मंगल होगा। वह सच्चा क़ाज़ी (न्याय की व्यवस्था करने वाला) है जो अपनी काया पर विचार करता है और काया में अग्नि प्रज्वलित कर ब्रह्म को उद्भासित करता है। वह स्वप्न में भी बिंदु का स्राव नहीं होने देता। ऐसे ही क़ाज़ी को न तो वृद्धावस्था आती है, न मृत्यु। वही सच्चा सुल्तान (बादशाह) है जो दो शरों का संधान करता है। (एक से वह समस्त विकारों को अपने शरीर से) बाहर निकाल देता है, (दूसरे से वह समस्त अनुभूतियों को) भीतर ले आता है। वह आकाश-मंडल (ब्रह्म-रंध्र) में अपना समस्त लश्कर (फ़ौज) अर्थात् विचार-समूह केंद्रीभूत करता है। ऐसा ही सुल्तान अपने सिर पर छत्र धारण करता है। जोगी 'गोरख' 'गोरख' की पुकार करता है, हिंदू राम-नाम का उच्चारण करता है, मुसलमान एक 'ख़ुदा' की ही बाँग देता है किंतु कबीर का स्वामी तो (कबीर में ही) लीन हो कर रहता है।

१२

जो पत्थर को अपना देवता कहते हैं, उनकी सेवा व्यर्थ ही होती है। जो पत्थर के पैर पड़ते हैं उनके समीप अज़ाब (अजांई-संकट या विपत्ति) ही जाती है। हमारा स्वामी तो सदा ही बोलने वाला है, (पत्थर की तरह मौन नहीं है।) वह प्रभु सब जीवों को (जीवन) दान देने वाला है। ए अंधे, तू अपनी अंतरात्मा में बसे हुए प्रभु को नहीं पहिचानता, तू भ्रम में मोहित होने के कारण बंधन में पड़ता है। न तो पत्थर कुछ बोलता है, न देता ही है अतः समस्त (सेवा) कार्य व्यर्थ है और सेवा निष्फल है। जो (मृतक) मूर्ति को चंदन चढ़ाता है, उससे कहो किस फल की प्राप्ति होती है ? जो उसे विष्ठा में घसीटता है, उससे उस मृतक (मूर्ति) का क्या घट जाता है ? कबीर कहता है, मैं पुकार कर कहता हूँ कि ऐ गँवार शाक्त, तू (अपने हृदय में) समझ देख ! द्विविधा भाव ने बहुत से कुलों को नष्ट कर दिया है, केवल राम-भक्त ही सदैव सुखी हैं।

१३

पानी में मछली को माया ने आबद्ध कर लिया है। दीपक की ओर उड़ने वाला पतंग भी माया से छेदा गया है। हाथी को भी काम की माया व्यापती है। सर्प और भृंग भी माया में नष्ट हो रहे हैं। हे भाई, माया इस प्रकार मोहित करने वाली है कि (संसार में) जितने ही जीव हैं, वे सभी (उसके द्वारा) ठगे गए हैं। पक्षी और मृग माया ही में अनुरक्त हैं। शक्कर मक्खी को (लोभ और तृष्णा के द्वारा) अधिक संतप्त करती है। घोड़े और ऊँट माया में भिड़े हुए हैं। चौरासी सिद्ध भी माया में ही क्रीड़ा कर रहे हैं। छः यती माया के सेवक हैं। नव नाथ, सूर्य और चंद्र, तपस्वी, ऋषीश्वर आदि सभी माया में शयन करते हैं। (वे यह नहीं जानते कि) माया में ही मृत्यु और पंच (इंद्रियों के रूप में उसके पंच) दूत हैं। कुत्ते और सियार माया में ही रँगे हुए हैं, साथ ही बंदर, चीते और सिंह भी (उसी रंग में हैं।) बिल्ली, भेड़, लोमड़ी और वृक्ष-मूल (जड़ें) भी माया में पड़ी हुई हैं। देवगण भी माया के भीतर भीगे हुए हैं, सागर, इंद्र (बादल) और पृथ्वी भी (माया ही में हैं।) कबीर कहता है, जिसके पास उदर है (अर्थात् जिसे क्षुधा लगती है और जिसे भोज्य पदार्थों की आवश्यकता ज्ञात होती है) उसी को माया संतप्त करती है। वह (माया) तभी छूट सकती है जब (सच्चे) साधु (की संगति) प्राप्त हो।

१४

(हे मन), जब तक तू 'मेरी' 'मेरी' करता है, तब तक एक भी कार्य सिद्ध नहीं हो सकता। जब तेरा यह 'अहं भाव' नष्ट हो जायगा तब प्रभु आकर तेरा कार्य संपूर्ण करेंगे। तू ऐसे ज्ञान का विचार कर। दुःख को नष्ट करने वाले हरि का स्मरण तू क्यों नहीं करता ? जब तक सिंह (यह बलशाली मन) इस वन (शरीर) में रहता है तब तक वह वन (शरीर) प्रफुल्लित ही नहीं होता। (अर्थात् उसकी आध्यात्मिक शक्तियों का विकास नहीं होता।) जब सियार (गुरु का शब्द) उस सिंह (मन) को खा लेता है तो समस्त वन-राजि (शरीर के चक्र और कमल) प्रफुल्लित हो उठते हैं। जो (इस संसार में) जयी (समझा जाता) है वह (वास्तव में इस भव-सागर में) डूब जाता है और जो (इस संसार के सुखों से) हारा (हुआ समझा जाता है) उसका (इस भव-सागर से) उद्धार हो जाता है। वह गुरु के प्रसाद से पार उतर जाता है। दास कबीर यह समझा कर कहता है, केवल राम से ही लौ लगा कर (इस संसार में) रहो।

१५

सत्तर सौ जिसके सालार (सेनापति) हैं, सवा लाख पैग़ंबर (संदेश-वाहक) हैं, अट्ठासी करोड़ जिसके शेख़ (पैग़ंबर के वंशज) हैं और छप्पन करोड़ जिसके अपने निजी कार्य-कर्ता हैं, उसके समीप मुझ ग़रीब की प्रार्थना कौन पहुँचा देगा! उसकी मजलिस (सभा) में पहुँचना तो दूर, उसके महल के समीप ही कौन जा सकता है ? (छप्पन करोड़ कार्य-कर्त्ताओं के अतिरिक्त) उसके तेतीस करोड़ सेवक और भी हैं। साथ ही

उसके (गुणों पर ही रीझे हुए) चौरासी लाख मतवाले और भी घूमते फिरते हैं। (उस रहमान ने) बाबा आदम को कुछ निर्भयता दिखलाई तो (उसी के बल पर उन्होंने भी) बहुत दिनों तक स्वर्ग-भोग प्राप्त किया। जिसके दिल में ख़लल हो जाता है (अर्थात् जिसका हृदय ईश्वर को छोड़ कर सांसारिक बातों में लग जाता है—पागल हो जाता है) और जिसका रंग पीला पड़ कर, वाणी लज्जित हो जाती है, वह क़ुरान छोड़ कर शैतान के वश में होकर कार्य करने लगता है। हे लोई, यह संसार दोष और रोष से भरा हुआ है और इसलिए वह अपने किए का फल पाता है। (हे रहमान), तुम दाता हो, हम सदैव भिखारी हैं। यदि मैं तुम्हें उत्तर देता हूँ तो बजगारी—जिस पर वज्र गिर पड़ा हो—(एक गाली) होती है। इसलिए दास कबीर तो तेरी शरण में ही लीन हो रहा है। हे रहमान (कृपा करने वाले), मुझे स्वर्ग के (अर्थात् अपने) समीप रख।

१६

सभी कोई वहाँ (बैकुंठ में) चलने की बात कहते हैं लेकिन मैं नहीं जानता कि बैकुंठ कहाँ है। ये (बातें करने वाले) स्वयं अपना तो रहस्य जानते नहीं और बातों ही में बैकुंठ का बखान करते हैं। (मैं कहता हूँ कि) जब तक मन में बैकुंठ की आशा है तब तक (प्रभु के) चरणों में निवास नहीं हो सकता। न मैं बैकुंठ की खाई, दुर्ग और प्राचीर का पत्थर जानता हूँ, न उसका द्वार। कबीर कहता है, अब क्या कहा जाय! (सच बात तो यह है कि) साधु-संगति में ही बैकुंठ है। (वह अन्यत्र नहीं है।)

१७

हे भाई, यह कठिन दुर्ग (शरीर) किस प्रकार विजित किया जा सकता है? इसमें दुहरे प्राचीर और तिहरी खाइयाँ हैं। (इस प्रकार इसके पाँच आवरण हैं—ये पाँच आवरण पाँच कोषों का संकेत करते हैं। वे पाँच कोष हैं—अन्नमय, प्राणमय, मनोमय, ज्ञानमय और विज्ञानमय। इनमें अन्नमय और प्राणमय तो प्राचीर हैं और मनोमय, ज्ञानमय और विज्ञानमय खाइयाँ हैं।) (इनके रक्षक) पाँच (तत्व) और पच्चीस (प्रकृतियाँ) हैं। इनके साथ मोह, मद, मत्सर और सामने अड़ी हुई प्रबल माया है। यदि (इनके समक्ष) मुझ दीन सेवक की शक्ति नहीं चलती तो हे रघुराई, मैं क्या करूँ? (मेरा क्या दोष?) इस (कठिन दुर्ग में) काम के किवाड़ लगे हुए हैं, सुख और दुःख दरवानी कर रहे हैं और पाप और पुण्य दो दरवाज़े हैं। महा द्वंद्व करनेवाला क्रोध वहाँ का प्रधान (सेनापति) है और मन ही दुर्गपति है। (उस दुर्गपति के आयुध इस प्रकार हैं—) स्वाद ही उसका कवच है, ममता ही उसका शिरस्त्राण है, कुबुद्धि ही उसकी कमान है जिसका वह आकर्षण किए हुए है। घट के भीतर जो तृष्णा है वही उसके तीर हैं। (इन शस्त्रों के सामने) इस गढ़ पर अधिकार नहीं किया जा सकता। (किंतु कबीर ने इस गढ़ पर विजय प्राप्त करने की युक्ति जान ली है।) (उसने) प्रेम ही को पलीता (वह बत्ती जिससे तोप के रंजक में आग लगाई जाती है) बना कर आत्मा की हवाई (तोप) से ज्ञान का गोला चलाया और ब्रह्म-ज्ञान की अग्नि को 'सहज' से

जला कर एक ही आक्रमण में (उस दुर्ग को) आँच से गला दिया। सत्य और संतोष (का शस्त्र) लेकर मैं लड़ने लगा और मैंने (पाप और पुण्य के) दोनों दरवाज़े तोड़ दिए। साधु-संगति और गुरु की कृपा से मैंने गढ़ के राजा (मन) को पकड़ लिया। ईश्वर के डर और स्मरण की शक्ति से मृत्यु के भय की फाँसी कट गई। दास कबीर (शरीर रूपी) गढ़ के ऊपर चढ़ गया और उसने (अनंत जीवन का) अविनाशी राज्य प्राप्त कर लिया।

१८

पवित्र गंगा गहरी और गंभीर हैं। (उन्हीं के किनारे) कबीर ज़ंजीर में बाँध कर खड़े किए गए। जब हमारा मन चलायमान नहीं है तो शरीर किस प्रकार डर सकता है? (फिर) चित्त तो (प्रभु के) चरण-कमलों में लीन हो रहा है। गंगा की लहर से हमारी ज़ंजीर टूट गई और (हम) कबीर, मृगछाला पर बैठे हुए दीख पड़े। कबीर कहते हैं, हमारे संगी-साथी कोई नहीं हैं। एक मात्र रघुनाथ (प्रभु) ही जल और थल में रक्षा करने वाले हैं। (यह पद भी सिकंदर लोदी के अत्याचार का संकेत करता है।)

१९

(प्रभु ने अपने) निवास के लिए अगम और दुर्गम गढ़ (सहस्रदल कमल) की रचना की है जिसमें (ब्रह्म) ज्योति का ही प्रकाश होता है। वहाँ (कुंडलिनी रूपी) विद्युल्लता ही चमकती है और (नित्य) आनंद होता रहता है। वहीं पर प्रभु बाल-गोविंद शयन करते हैं। यदि इस जीवात्मा की लौ राम-नाम से लग जाय तो वृद्धावस्था और मरण से मुक्ति हो जाय और भ्रम दूर हट जाय। मन की प्रीति तो (प्रकृति जनित) रंग और अ-रंग ही में है। (यह वस्तु रंग सहित है और यह रंग-रहित है इसी में मन की प्रवृत्ति चलायमान होती है।) तथा वह मन 'मैं हूँ' 'मैं हूँ' की रटन का ही गीत गाता रहता है। किंतु जहाँ (सहस्रदल कमल में) प्रभु श्री गोपाल शयन करते हैं, वहाँ सदैव अनाहत शब्द की झनकार होती रहती है। वहाँ तो खंड धारण करने वाले अनेक मंडल मंडित (शोभित) हैं। (प्रत्येक में) तीन तीन स्थान हैं और उन तीनों में प्रत्येक के तीन तीन खंड हैं। उनके भीतर (अभअंत-अभ्यंतर) अगम अगोचर ब्रह्म निवास करता है जिसके किसी रहस्य का पार शेषनाग भी नहीं पा सकते। द्वादश दल (हृदय के समीप स्थित अनाहत चक्र जिसके दल कदली पुष्प की भाँति होते हैं) के भीतर कदली पुष्पवत् कमल के पराग में धूप के प्रकाश की भाँति श्री कमला-कंत ने अपना निवास लेकर शयन किया है। जिस शून्य-मंडल के नीचे और ऊपर के मुख से आकाश लगा हुआ है, उसी में वह (ब्रह्म) प्रकाश कर रहा है। वहाँ न सूर्य है, न चंद्रमा किंतु (अपने ही प्रकाश में) वह आदि निरंजन वहाँ आनंद (की सृष्टि) कर रहा है। उसी शून्य-मंडल को ब्रह्मांड और उसी को पिंड समझो। तुम उसी मान-सरोवर में स्नान करो और 'सोऽहं' का जाप करो जिस जाप में पाप और पुण्य लिप्त नहीं हैं (अर्थात् 'सोऽहं' जाप पाप और पुण्य से परे है।) उस शून्य-मंडल में न वर्ण

(रंग) है न अ-वर्ण (अ-रंग); न वहाँ धूप है, न छाया। वह गुरु के स्नेह के अतिरिक्त और किसी भाँति भी प्राप्त नहीं किया जा सकता। फिर (मन की 'सहज' शक्ति) न टालने से टल सकती है और न 'किसी अन्य वस्तु में' आ-जा सकती है। वह केवल शून्य में लीन होकर रहती है। जो कोई इस 'शून्य' को अपने मन के भीतर जानता है, वह जो कुछ भी उच्चारण करता है वह आप ही (सच्चे अंतःकरण) का रूप हो जाता है। इस ज्योति के रहस्य में जो व्यक्ति अपना मन स्थिर करता है, कबीर कहता है, वह प्राणी (इस संसार से) तर जाता है।

२०

[जिस राम (ब्रह्म) के समीप] करोड़ों सूर्य प्रकाश करते हैं, करोड़ों महादेव अपने कैलाश पर्वत के सहित हैं, करोड़ों दुर्गाएँ सेवा करती हैं, करोड़ों ब्रह्मा वेद का उच्चारण करते हैं, उसी राम से मैं याचना करूँगा, यदि मुझे कभी याचना करनी पड़ी। किसी अन्य देवता से मेरा कोई काम नहीं है। करोड़ों चंद्रमा वहाँ दीपक की भाँति प्रकाश करते हैं, तेतीसों (करोड़) देवता भोजन करते हैं। नवग्रह के करोड़ों समूह जिसकी सभा में खड़े हुए हैं; करोड़ों धर्मराज जिसके प्रतिहारी हैं; करोड़ों पवन जिसके चौबारों (चारों ओर के द्वारों से संयुक्त कमरों) में प्रवाहित होते हैं; करोड़ों वासुकि सर्प जिसकी सेज का विस्तार करते हैं; करोड़ों समुद्र जिसके यहाँ पानी भरते हैं और अट्ठारह करोड़ पर्वत ही जिसकी रोमावली हैं। करोड़ों कुबेर जिसका भंडार भरते हैं; जिसके लिए करोड़ों लक्ष्मी शृंगार करती हैं, करोड़ों पाप पुण्य का हरण करने वाले करोड़ों इंद्र जिसकी सेवा करते हैं; जिसके प्रतिहारियों की संख्या छप्पन करोड़ है, नगरी-नगरी में जिसकी ख़िल्कत (सृष्टि) है; जिस गोपाल की सेवा में करोड़ों कलाएँ मुक्तकेशी होकर अव्यवस्थित रूप से कार्य में जुटी हुई हैं; जिसके दरबार में करोड़ों संसार (स्थित) हैं और करोड़ों गंधर्व जयजयकार करते हैं; करोड़ों विद्याएँ जिसके समस्त गुणों का गान कर रही हैं फिर भी उस परब्रह्म का अंत नहीं पाती हैं, बावन करोड़ जिसकी रोमावली है, जिसके द्वारा रावण की सेना छली गई थी; जिसका गुण-गान सहस्र करोड़ भाँति से पुराण कहते हैं और जिसने दुर्योधन का मान मर्दन किया; करोड़ों कामदेव जिसके अणु-मात्र के बराबर भी नहीं हैं और (जिसके ध्यान-मात्र से) हृदय के भीतर भावनाएँ खो जाती हैं उस सारंगपाणि (प्रभु) से कबीर कहता है, (हे प्रभु), मैं तुमसे यह दान माँगता हूँ कि मुझे अभय-पद दीजिए।

रागु बसंतु

१

पृथ्वी मरती है, आकाश मरता है और घट-घट (प्रत्येक शरीर) में आत्मा का प्रकाश मृत्यु को प्राप्त होता है। हे राजा राम, अनंत भाव भी नष्ट होते हैं और जहाँ वे (उत्पन्न होते हुए) देखे जाते हैं, वहीं लीन हो जाते हैं। फिर चार वेद

भी मरते हैं, स्मृतियाँ क़ुरान के साथ मरती हैं, योग ध्यान करते हुए शिव भी मरते हैं। केवल कबीर का स्वामी (एक ब्रह्म) सर्वदा समान रूप से रहता है।

२

पंडित गण पुराण पढ़कर (अहंकार में) उन्मत्त हो गए। योगी योग-ध्यान में मद से चूर हो गए। संन्यासी अपने अहंकार से ही मतवाले हो गए और तपस्वी अपने तप के भेदों ही में मदोन्मत्त हो गए। इस प्रकार संसार के सभी (साधु-संत) अहंकार के मद में भर कर (मोह के अंधकार में सो गए।) कोई भी न जाग सका। (इनकी इस नींद के) साथ ही साथ (मन रूपी) चोर उनके (शरीर रूपी) घर को लूटने लगा। (आत्मा के सात्विक और 'सहज' भाव को चुराने लगा।) किंतु इस नींद में श्री शुकदेव और अक्रूर जागे। हनुमान भी अपनी पूँछ चैतन्य कर जागे। शंकर (प्रभु के) चरणों की सेवा कर जागे और इस कलियुग में भी श्री नामदेव और श्री जयदेव जागे। इस प्रकार संसार में (भिन्न-भिन्न) मनुष्य अनेक प्रकार से जागते और सोते हैं। गुरु से दीक्षा लेकर जो (शिष्य) जागता है, वही वास्तविक जागना है। कबीर कहता है, इस शरीर में काम (इंद्रिय जनित आसक्ति) बहुत अधिक है, इसलिए राम-नाम का भजन करो।

३

स्त्री (माया) ने अपने स्वामी (ईश्वर अर्थात् देवताओं के अनेक रूपों) को उत्पन्न किया है। पुत्र (अज्ञान) ने अपने पिता (मन) को अनेक प्रकार से (खेल) खिलाया है और बिना तरलता का दूध (थोथा ज्ञान) उसे पिलाया है। हे लोगो, कलियुग की इस परिस्थिति को देखो कि पुत्र (अज्ञान) अपनी माता (माया) को बंधन-मुक्त करा लाया है (या संसार में वापस ले आया है।) (यह अज्ञान) बिना पैर के लात मारता है, बिना मुख के 'खिलखिला' कर हँसता है। बिना निद्रा के मनुष्य पर शयन करता है और बिना बर्तन (सत्य) के दूध (ज्ञान की बातों) का मंथन करता है। बिना स्तन (वास्तविकता) के गाय (मोह-ममता) दूध पिलाती है। बिना पथ (ज्ञान) के बहुत से मार्ग (संप्रदाय) हैं। कबीर समझा कर कहता है, बिना सत्गुरु के सच्चा मार्ग नहीं पाया जा सकता।

४

प्रह्लाद को (पिता ने पढ़ने के लिए) शाला में भेजा। वह अपने साथ बहुत से बाल-मित्रों को लिए हुए था। (उसने अपने शिक्षक से कहा :) "मुझे तुम क्या उल्टा-सीधा पढ़ा रहे हो? तुम तो मेरी पट्टी पर 'श्री गोपाल' लिख दो। बाबा, मैं राम-नाम नहीं छोड़ने का। इसके अतिरिक्त और कुछ पढ़ने से मेरा कोई काम भी नहीं (सिद्ध होता।)" उस भीरु (गुरु) ने प्रह्लाद को दंड दे (कर उसके पिता के पास) जाकर कहा। उसने प्रह्लाद को शीघ्रता से बुलाया और कहा—"तू 'राम' कहने की आदत छोड़ दे। यदि तू मेरा कहना मान ले तो मैं तुझे शीघ्र बंधन-मुक्त कर दूँ।" प्रह्लाद ने कहा—"मुझे बार बार क्या सताते हो? प्रभु ने ही तो जल, थल, पर्वत और पहाड़ों का

निर्माण किया है। मैं उस एक 'राम' को नहीं छोड़ूँगा चाहे इससे गुरु का अपमान भले ही हो और चाहे तुम मुझे बंधन में डाल दो, या जला दो या चाहे मार डालो।" पिता (हिरण्यकश्यप ने) तलवार खींच ली और वह क्रोध से उन्मत्त होकर बोला—"मुझे बतला, तेरी रक्षा करने वाला कौन है?" उसी समय (पास के) खंभे से प्रभु अपना विस्तार कर (प्रकट होकर) निकल पड़े और उन्होंने हिरण्यकश्यप को अपने नखों से विदीर्ण कर डाला। वही देवाधिदेव परम पुरुष हैं जो भक्ति के लिए नृसिंह रूप हो गए। कबीर कहता है, उनका पार कोई नहीं देख सकता। उन्होंने अनेक बार प्रह्लाद (सदृश भक्तों) का उद्धार किया है।

५

इस शरीर और मन के भीतर कामदेव रूपी चोर है जिसने मेरा ज्ञान-रत्न चुरा लिया है। मैं अनाथ हूँ, प्रभु से क्या जाकर कहूँ? फिर (यह भी तो बतलाओ कि इस कामदेव रूपी चोर के द्वारा) कौन कौन नहीं छला गया? मैं (बेचारा) क्या हूँ! हे माधव, यह दारुण दुःख सहन नहीं होता। इस चपल बुद्धि से मेरा क्या वश चलता है! सनक, सनंदन, शिव और शुकदेव आदि तथा नाभि-कमल से उत्पन्न अनेक ब्रह्मा, कवि गण, योगी, जटाधारी—ये सभी अपने अपने (जीवन का) अवसर समाप्त कर चले गए! (हे प्रभु,) तू अथाह है, मुझे तेरी थाह नहीं मिलती। हे प्रभु, दीनानाथ, मैं अपना दुःख किससे कहूँ! मेरे जन्म और मरण का दुःख बहुत भारी है। अतः हे सुख-सागर, कबीर तेरे ही गुणों में स्थिर हो गया है।

६

नायक (शरीर) तो एक है, उसके साथ पाँच बनजारे (पंच तत्व) हैं जिनके साथ पच्चीस बैल (प्रकृतियाँ) हैं किंतु इन सब का साथ कच्चा ही है। उन बैलों पर नव बहियाँ (नव द्वार) और दस गोन (दस इंद्रियाँ) हैं और (उन दस गोनों में) बहत्तर (कोष्ठ) कसाव हैं। मुझे ऐसे व्यापार से कोई काम नहीं है जिसका मूल (आत्म-तत्व) तो घटता रहता है और नित्य व्याज (तृष्णा और वासना-भाव) बढ़ता रहता है। मैंने सात सूत की गाँठों (सप्त धातुओं) से व्यापार किया और कर्म रूपी भावनी (स्त्री) को साथ लिया। पुनः कर (पाप और पुण्य) वसूल करने के लिए तीन जगाती (सतोगुण, रजोगुण और तमोगुण) झगड़ा करते हैं। (फल स्वरूप) वह बनजारा हाथ झाड़कर (खाली हाथ) चल खड़ा होता है। (आत्म-तत्व की) पूँजी खो जाने से सारा व्यापार ही नष्ट हो जाता है और दसों दिशाओं (इंद्रियों) से यह टांडा टूट जाता है। कबीर कहता है, यदि 'सहज' में (वह नायक) लीन हो जाय तो कार्य पूर्ण हो जाता है। सच्चा ग्राहक मिल जाता है (और भ्रम के विचार भाग जाते हैं।)

बसंतु (हिंडोलु)

७

माता जूठी (अपवित्र) है, पिता भी जूठा है और उनसे जो पुत्र उत्पन्न होते हैं, वे

भी जूठे ही हैं। (संसार में) आते हुए भी वे जूठे (अपवित्र) होते हैं और (संसार से) जाते हुए भी जूठे होते हैं। इस प्रकार ये अभागे (मनुष्य) अपवित्र रूप ही में मरते हैं। हे पंडित, बतला कि कौन सा सूचा (शुचि) पवित्र स्थान है जहाँ बैठ कर मैं अपना भोजन खाऊँ? (झूठ बोलने से) जीभ भी जूठी है। कान, नेत्र आदि सभी जूठे हैं और ब्रह्माग्नि में जलने पर भी (अर्थात् विकारों के जलने के उपरांत सात्विक भाव होने पर भी) इंद्रियों का जूठापन नहीं उतरता। (वे अनेक वस्तुओं के संपर्क में क्रम से आती ही रहती हैं।) आग भी जूठी है (क्योंकि वह अनंत वर्षों से उपयोग में आ रही है), पानी भी जूठा है (क्योंकि वह अनंत वर्षों से पिया जाता है) और जिस तरह बैठ कर तूने भोजन पकाया है उस तरह बैठना भी जूठा है (क्योंकि इस भाँति तू अनेक बार बैठ चुका है।) जूठी करछुल से तू परोसता है (क्योंकि उस करछुल से अनेक बार परोसा गया है।) और जूठे लोगों ने ही उस भोजन को बैठ कर खाया है। गोबर जूठा है, चौका जूठा है और कारा (चौके की रेखा) भी जूठी है। कबीर कहता है, वे ही मनुष्य शुचि (पवित्र) हैं जिन्होंने इस बात को सत्यता से विचार लिया है।

८

सुरही (गाय) की भाँति ही तेरी आदत है। तेरी पूँछ (वासना) के ऊपर बहुत घने बालों का गुच्छा (अनेक इच्छा-समूह) है। (किंतु मैं तुझे समझाता हूँ कि) इस घर (शरीर) में ही जो (आनंद) है उसकी खोज कर तू उपभोग कर। किसी अन्य के आश्रय से तू (सुख) प्राप्त करने के लिए मत जा। तू चक्की (विषयों) को चाट कर आटा (इंद्रिय-सुख) तो खाता है फिर चक्की से आटा साफ़ करने का चीथड़ा (व्याधियाँ) किसके सिर छोड़ता है? (अर्थात् यदि तू विषय-सुख का भोग करना चाहता है तो उसका परिणाम भोगने के लिए भी तू तैयार रह।) छीके (भोग पदार्थों) पर तेरी दृष्टि बहुत रहती है। कहीं लकड़ी-सोंटा (दंड) तेरी पीठ पर न पड़े! कबीर कहता है, मैंने ऐसे अच्छे आनंद का उपभोग किया है कि मुझे कोई ईंट या पत्थर मार ही नहीं सकता।

रागु सारंग

१

अरे मनुष्य, तू थोड़ी सी बात पर क्या गर्व करता है? तेरे पास दस मन अनाज है, गाँठ में चार टके हैं। (इतने पर ही) तू गर्व से इतरा कर चलता है? यदि तेरा बहुत प्रताप बढ़ा तो तुझे सौ गाँव मिल गए और तेरे पास दो लाख टके औरों से अधिक हो गए! (किंतु इतना सब होते हुए) तुझे चार दिन ही प्रभुत्व करना है जैसे वन के वृक्षों के पत्ते (जो चार दिन हरे रहते हैं, फिर सूख कर गिर जाते हैं।) न तो कोई इस धन को लेकर आया है और न कोई (अपने साथ) ले जाता है। रावण के समान विशाल छत्रपति भी एक क्षण में अदृश्य हो गए! (यदि कोई स्थिर हैं) तो

यही जो 'हरि हरि' नाम का जाप करते हैं, ये हरि के संत ही सदैव स्थिर रहते हैं। और गोविंद जिन पर कृपा करते हैं उन्हीं को इन (संतों की) संगति प्राप्त होती है। माता, पिता, स्त्री, पुत्र और धन ये अंत में साथ नहीं चलते। कबीर कहता है, ऐ पागल, तू राम-नाम का भजन कर, नहीं तो तेरा जन्म व्यर्थ ही व्यतीत होता जा रहा है।

२

(यह आत्मा का कथन है।) हे प्रभु, तेरी राज्य-मर्यादा की सीमा मैंने नहीं जानी। मैं तो तेरे (सेवक) संतों की दासी-मात्र हूँ। (इस मर्यादा की यह शक्ति है कि संसार में) जो हँसता हुआ जाता है, वह रोता हुआ लौटता है और जो संसार के प्रति रोता हुआ जाता है, वह हँसने लगता है। जो वासस्थ है, वह उजड़ जाता है और जो उजड़ा हुआ है, वह वासस्थ हो जाता है। (तेरी राज्य-मर्यादा) जल से थल कर देती है, फिर थल से कूप बना देती है और उस कूप से फिर मेरु पर्वत का निर्माण करती है। (वह किसी को) पृथ्वी से आकाश पर चढ़ा देती है और आकाश पर चढ़े हुए को पृथ्वी पर गिरा देती है। वह भिखारी से राजा और राजा से भिखारी बना सकती है। वह दुष्ट और मूर्ख से पंडित और पंडित से मूर्ख बना सकती है। जो नारी से पुरुष बनाती है और पुरुष से नारी, कबीर कहता है, उस साधु के प्रियतम (प्रभु) की मूर्ति की मैं बलि जाता हूँ।

३

हरि के बिना मन की सहायता करने वाला कौन है? माता, पिता, भाई, पुत्र, स्त्री और हितचिंतक सभी सर्प की भाँति साथ लगे हुए हैं। आगे के लिए कुछ तो संचय कर लो, इस (सांसारिक) धन का क्या भरोसा? इस शरीर रूपी बर्तन का क्या विश्वास? थोड़ी-सी भी ठोकर लग जायगी (तो फूट जायगा।) अपने लिए तो सभी धर्म और पुण्य का फल पाना चाहते हो और अन्य सभी मनुष्यों के लिए निस्सार धूल की वांछा रखते हो? कबीर कहता है, रे संतो, सुनो, यह मन तो वन का उड़ने वाला पक्षी है। (कभी भी उड़ जायगा। इसका क्या भरोसा!)

रागु बिभास प्रभाती

१

मेरे मरण और जीवन की शंका नष्ट हो गई और 'सहज' शक्ति अपने वास्तविक रूप में प्रकट हुई। ज्योति के प्रकट होने से अंधकार तिरोहित हो गया और विचार करते हुए मैंने राम रूपी रत्न प्राप्त कर लिया। जब आनंद उत्पन्न हुआ तो दुःख दूर चला गया और मैंने मन रूपी माणिक लव के तत्व में (लव के भीतर) छिपा दिया। जो कुछ भी (इस संसार में) हुआ, वह तेरे ही कहने से (तेरे ही आदेश से) हुआ, जो यह समझता है, वह 'सहज' में लीन हो जाता है। कबीर कहता है, संसार के

समस्त झंझट (किलबिख) क्षीण हो गए और मेरा मन जग-जीवन (राम) में लीन हो गया।

२

यदि अल्लाह (ईश्वर) एक मसजिद ही में निवास करता है तो शेष पृथ्वी (मुल्क) पर किसका अधिकार है ? हिंदू कहते हैं कि मूर्ति के नाम में ही उस ब्रह्म का निवास है। अतः इन दोनों में तत्व (वास्तविकता) नहीं देखी गई। हे अल्लाह, हे राम, मैं केवल तेरे लिए ही संसार में जीवित हूँ। हे स्वामी, तू मुझ पर कृपा कर। कहा जाता है कि दक्षिण में हरि का निवास है और पश्चिम में अल्लाह का स्थान है किंतु तू अपने हृदय में खोज, प्रत्येक हृदय में खोज। तुझे इसी स्थान पर उसका निवास मिलेगा। ब्राह्मण चौबीस एकादशी रखते हैं और काज़ी रमज़ान का महीना (व्रत में व्यतीत करते हैं।) किंतु इस प्रभु कृपानिधान ने ग्यारस और रमज़ान मास दोनों को एक में मिलाकर अपने समीप कर रक्खा है। उड़ीसा (जगन्नाथपुरी) में स्नान करने से क्या लाभ हुआ, मसजिद में सिजदा करने से क्या लाभ हुआ ? जब तू अपने हृदय में कपट रखता हुआ नमाज़ गुज़ारता (पढ़ता) है तो काबे में हज के लिए जाने से क्या लाभ हुआ ? हे प्रभु, तुमने इतने स्त्री पुरुषों की सृष्टि की है, ये सब तुम्हारे ही रूप हैं। निकम्मा कबीर भी राम और अल्लाह का है और सभी गुरु और पीर हमारे (लिए मान्य) हैं। कबीर कहता है, हे विविध (धर्मों के) मनुष्य, तुम केवल एक ईश्वर की शरण में पड़ो। रे प्राणी, तुम केवल नाम ही का जाप करो। तभी (इस भव-सागर से) तुम्हारा तरना निश्चय समझा जायगा।

३

प्रथम अल्लाह ने प्रकाश की सृष्टि की। बाद में प्रकृति से (उत्पन्न हीं) ये सब मनुष्य हुए। जब एक ही प्रकाश से समस्त संसार की उत्पत्ति की गई तब कौन अच्छा और कौन बुरा है ? ऐ भाई, तुम लोग भ्रम में मत भूलो। सृष्टि-कर्ता में सृष्टि है और सृष्टि में सृष्टिकर्त्ता है जो सब स्थानों में व्याप्त हो रहा है। मिट्टी तो एक ही है, उसे सँवारने वाले (कुम्हार) ने अनेक भाँति से सँवारा है। न तो मिट्टी के पात्र में कोई बुराई (ख़राबी) है न कुम्हार में। सभी (प्राणियों) में एक वही (ब्रह्म) सच्चा है, उसी का किया हुआ सब कुछ होता है। जो उसका आदेश पहिचान कर (संसार में) एक उसी को जानता है, उसी को सच्चा सेवक कहना चाहिए। अल्लाह तो अदृश्य (अलख) है, वह देखा नहीं जा सकता किंतु मेरे गुरु ने मुझे मीठा गुड़ (उपदेश) दिया है जिससे कबीर कहता है, मेरी समस्त शंकाएँ नष्ट हो गईं और मुझे सभी (प्राणियों) में एक निरंजन (ब्रह्म) ही दृष्टिगत हुआ।

४

वेद और क़ुरान को झूठा मत कहो, झूठा वह है जो उस (वेद और क़ुरान) पर विचार नहीं करता। जब तुम सभी (प्राणियों) में एक ईश्वर का निवास बतलाते हो

तो मुरग़ी क्यों मारते हो ? (उसमें भी तो ईश्वर का निवास है !) हे मुल्ला, तुम सचमुच ईश्वरीय न्याय का कथन करो (किंतु तुम्हारे मन का भ्रम तो जाता ही नहीं है !) तुम (बेचारे) जीव को पकड़ कर ले आए, उसकी देह नष्ट कर दी, इस प्रकार तुमने मिट्टी को ही बिस्मिल किया (उस पर शस्त्राघात किया) किंतु (उसके भीतर) जो ज्योतिस्वरूप है, वह तो अनाहत रूप से (बिना कटे हुए) स्थिर है। फिर बतलाओ, तुमने किसे हलाल (वध) किया ? वज़ू करके तुमने अपने को क्या पवित्र किया ! और क्या मुख धोया और क्या मसजिद में सिर नवाया ! जब तुम्हारे हृदय में कपट है तो तुमने क्या नमाज़ पढ़ी और क्या तुम हज के लिए काबे गए ? तू (बिल्कुल) अपवित्र है क्योंकि तुझे परम पवित्र (अल्लाह) नहीं दीख पड़ा और न उसका रहस्य ही ज्ञात हो सका। कबीर कहता है, बहिश्त (स्वर्ग) से रहित होकर तू तो दोज़ख़ (नर्क) से ही संतुष्ट है।

५

शून्य (की आराधना ही) तेरी संध्या है। हे देव, देवों के अधिपति, तुझमें ही आदि (सृष्टि) लीन है। तेरा अंत सिद्धों ने अपनी समाधि में (भी) नहीं पाया, इसलिए वे तेरी शरण में लगे हुए हैं। हे भाई, तुम ऐसे पुरुष निरंजन की आरती लो और सतगुरु का पूजन करो। ब्रह्मा भी खड़ा होकर वेद का विचार कर रहा है किंतु उसे अदृश्य (ब्रह्म) नहीं दीख पड़ता। (मैंने आरती द्वारा ब्रह्म-दर्शन की विधि जान ली है।) मैंने अपनी (आरती में) तेल (या घृत) तो (पंच) तत्वों का किया और बत्ती नाम की बनाई। इस प्रकार (आत्म) ज्योति की लौ लगा कर मैंने इस दीपक को प्रज्वलित किया और जगदीश (ब्रह्म) की ओर प्रकाश फेंका। इसे (वास्तव में) समझने वाले ही समझ सकते हैं। सारंगपाणि (ब्रह्म-नाद) के साथ जो (मेरी आत्मा का) अनाहत नाद ध्वनित हो रहा है वही आरती के साथ कहे जाने वाले 'पंच-शब्द' हैं। इस प्रकार हे निरंकार (आकार-रहित) और वाणी से न कहे जा सकने वाले निरबानी (ब्रह्म), कबीरदास ने तेरी आरती की है।

परिशिष्ट (ख)

सलोकों के अर्थ

१

कबीर कहता है, (स्मरण करने की) माला तो (मेरे हाथ में है) और राम का नाम मेरी जिह्वा पर है। आदि युगों में जितने भक्त हो गए हैं उनके लिए (यही माला) सुख और विश्राम (प्रदान करने वाली) है।

२

कबीर कहता है, सभी लोग मेरी जाति का उपहास करने वाले हैं। मैं तो इस जाति की बलि जाता है जिससे मैंने सृष्टि-कर्त्ता के नाम का जाप किया है।

३

कबीर कहता है, तू अस्थिरता के वश में क्या होता है और अपने मन में लालच क्या ला रहा है? तू सभी सुखों के नायक राम के नाम का रस पान कर।

४

कबीर कहता है, (कान में) स्वर्ण निर्मित कुंडल जिन पर लाल जड़े हुए हैं, अत्यंत सुंदर हैं किंतु वे कान विदग्ध (जले हुए) हैं जिनमें नाम रूपी मणि नहीं है।

५

कबीर कहता है, ऐसा कोई एक-आध ही (व्यक्ति) है जो जीते हुए भी (अपनी इंद्रियों को नष्ट कर संसार के प्रति) मृतक-रूप होता है तथा जो निर्भय होकर (प्रभु के) गुणों में रमण करता है और जहाँ देखता है वहाँ उसी (ब्रह्म) का रूप देखता है।

६

कबीर कहता है, जिस दिन मैं (संसार के प्रति) मृतक होता हूँ, (उस दिन के) बाद ही आनंद की सृष्टि होती है। मुझे अपना प्रभु मिल जाता है और मेरे अन्य साथी गोविंद का भजन ही करते रहते हैं। (उन्हें उस ब्रह्म की प्राप्ति नहीं होती।)

७

कबीर कहता है, 'हम सभों से बुरे हैं, हमें छोड़कर अन्य सभी अच्छे हैं'। जो ऐसा समझता है, वही हमारा मित्र हो सकता है।

८

कबीर कहता है, (माया) अनेक वेश रख रख कर मेरे समीप आई किंतु जब गुरु ने मेरी रक्षा कर ली तो उसी (माया) ने मुझे प्रणाम किया।

९

कबीर कहता है, उसी को मारना चाहिए जिसके मारने से सुख (प्राप्ति) होती है। तभी सब लोग 'अच्छा' 'अच्छा' कहते हैं और कोई बुरा नहीं मानता।

१०

कबीर कहता है, अरुण (माया ब्रह्म से उत्पन्न होकर संसार में) काली (पापमयी) हो जाती है और उसी (पापमयी) काली (माया) से जीव जंतुओं की उत्पत्ति होती है।

इन (जीव जंतुओं) को ईश्वर से दंडित हुआ जान कर (साधु संत) शांति का फाहा लेकर उनकी ओर दौड़ पड़ते हैं।

११

कबीर कहता है, चंदन का वृक्ष (संत) अच्छा है जिसे ढाक और पलाश (नीच मनुष्यों) ने घेर लिया है। चंदन के पास निवास करने से वे भी चंदन हो जायँगे। (उनमें भी चंदन की सुगंधि बस जायगी।)

१२

कबीर कहता है, बाँस अपनी विशालता में ही डूब गया है। इस प्रकार की विशालता में (ईश्वर करे) कोई न डूबे। बाँस (बड़ा होते हुए भी इतना गया-बीता है कि) चंदन के समीप बसते हुए भी उसमें किसी प्रकार की सुगंधि नहीं आती।

१३

कबीर कहता है, मैंने संसार के लिए अपना धर्म खो दिया किंतु वह मेरे साथ (मरते समय भी) न चल सका। असावधानी में पड़ कर मैंने अपने हाथ से (अपने पैर पर) कुल्हाड़ी मार ली।

१४

कबीर कहता है, मैं हज के संबंध में कितने स्थानों में फिरता रहा हूँ। (अंत में मुझे यही अनुभव हुआ कि) राम-स्नेह से रहित व्यक्ति मेरे विचार से उजड़ा हुआ ही है। (उसमें कोई भी सरस भावना नहीं हो सकती।)

१५

कबीर कहता है, संतों की झोपड़ी अच्छी है, और कुसती के गांव की भट्ठी अच्छी है। उस महल को आग लग जाय जिसमें हरि का नाम नहीं है।

१६

कबीर कहता है, संत के मरने पर रोने की क्या आवश्यकता ? वह तो अपने घर (आदि निवास को) जा रहा है। रोना तो बेचारे शाक्त के लिए चाहिए जो बाज़ार बाज़ार बिकता है। (अनेक योनियों में आता-जाता है।)

१७

कबीर कहता है, शाक्त ऐसा है जैसे लहसुन (मिला हुआ भोजन) खाना। यदि कोने में भी बैठ कर वह खाया जाय, (तो उसकी दुर्गंधि सब ओर फैल जाती है और) अंत में वह सब पर प्रकट हो ही जाता है।

१८

कबीर कहता है, माया तो एक मटकी है जिसमें पवन (प्राणायाम) मथानी के सदृश है। (उसके सहारे) संतों ने तो (तत्व रूपी) मक्खन (निकाल कर) खाया, शेष (मोह-ममता रूपी) जो तक्र रह गया, उसे संसार पीता है।

१९

कबीर कहता है, माया तो मटकी है जिसमें पवन (प्राणायाम) घृत की धारा है।

जिसने मंथन किया उसने प्राप्त किया यद्यपि मंथन करने वाला कोई दूसरा (ब्रह्म) ही है।

२०

कबीर कहता है, माया एक चोर की तरह है जो (लोगों को) चुरा चुरा कर बाज़ार में बेचती है। एक कबीर ही को वह नहीं चुरा सकी जिसने उसे (माया को) बारह-बाट (नष्ट-भ्रष्ट) कर दिया।

२१

कबीर कहता है, इस युग में उन्हें सुख नहीं है जो अनेक मित्र बनाते हैं। नित्य सुख तो वही पाते हैं जो अपना चित्त केवल एक (ब्रह्म) से लगाते हैं।

२२

कबीर कहता है, जिस मरने से संसार डरता है, उस (मरने) से मेरे हृदय में बड़ा आनंद होता है, क्योंकि मरने ही से पूर्ण परमानंद की प्राप्ति होती है।

२३

राम रूपी अमूल्य रत्न प्राप्त कर ऐ कबीर, तू अपनी गाँठ मत खोल। न तो इस रत्न के उपयुक्त कोई नगर है, न पारखी है, न ग्राहक है और न इसकी कोई क़ीमत है।

२४

कबीर कहता है, तू उस (संत) से प्रेम कर जिसका आराध्य राम है। पंडित, राजा और पृथ्वी के स्वामी ये किस काम आते हैं?

२५

कबीर कहता है, एक (प्रभु) से प्रेम करने से अन्य सभी बातों की द्विविधा चली जाती है। फिर तेरी इच्छा हो तो लंबे केश रख ले, नहीं तो बिल्कुल ही सिर मुँडा डाल।

२६

कबीर कहता है, यह संसार एक काजल की कोठरी है और उसमें रहने वाले भी अंधे हैं (वे उसमें से निकल नहीं सकते।) मैं तो उनकी बलिहारी जाता हूँ जो उसमें प्रवेश कर बाहर निकल आते हैं।

२७

कबीर कहता है, यह शरीर नष्ट हो जायगा। यदि तुममें शक्ति हो तो इसे बचा लो। जिनके पास लाखों और करोड़ों (का धन) था, वे भी (संसार से) नंगे पैर ही गए।

२८

कबीर कहता है, यह शरीर नष्ट हो जायगा। तू किसी मार्ग पर तो अपने को लगा। या तो तू साधुओं की संगति कर, या हरि का गुण-गान गा।

२९

कबीर कहता है, मरते मरते तो यह सारा संसार मर गया किंतु (वास्तविक) मरना

कोई नहीं जान सका। मरना तो वही है कि एक बार मर कर पुनर्मरण न हो। (आवा-गमन से मुक्ति मिल जाय।)

३०

कबीर कहता है, यह मनुष्य-जन्म दुर्लभ है, यह बार बार नहीं होता। जिस प्रकार वन के वृक्षों से पके हुए फल पृथ्वी पर गिर कर फिर डाल से नहीं लगते।

३१

ऐ कबीर, तू ही कबीर (सर्वोपरि ब्रह्म) है और तेरा नाम ही कबीर (महान्) है। किंतु राम रूपी रत्न तो तुझे तब प्राप्त होगा जब पहले तू शरीर से मुक्त होगा।

३२

कबीर कहता है, तुम व्यर्थ ही ग्लानि से क्यों झींकते हो? तुम्हारा कहा हुआ (इच्छित कार्य) तो होगा नहीं। उस करीम (कृपालु) ने तुम्हारे लिए जो कर्म निर्धारित कर दिए हैं, उन्हें कोई मिटा नहीं सकता।

३३

कबीर कहता है, राम एक ऐसी कसौटी की तरह हैं जिस पर झूठा (मनुष्य) टिक ही नहीं सकता। (उसके दोष शीघ्र ही प्रकट हो जाते हैं।) राम रूपी कसौटी तो वही सहन कर सकता है (उस पर वही खरा उतर सकता है) जो जीवन्मृत (जीते जी संसार के प्रति मृतकवत्) होता है।

३४

कबीर कहता है, (संसार के लोग) उज्ज्वल कपड़े पहनते हैं और तांबूलादि खाते हैं किंतु एक उस हरि के नाम के बिना वे बँध कर यमपुरी चले जाते हैं।

३५

कबीर कहता है, यह (शरीर रूपी) बेड़ा अत्यंत जर्जर है, इसमें हजारों छिद्र हैं। जो हलके हलके (पवित्रात्मा) थे वे तो (संसार-सागर से) तर गए किंतु जिनके सिर पर (अपराधों का) भार था, वे डूब गए।

३६

कबीर कहता है, (मरने पर) हड्डियाँ तो लकड़ी की तरह जलती हैं और केश घास की तरह। इस संसार को (इस तरह) जलता देखकर कबीर उदास हो गया।

३७

कबीर कहता है, चमड़े से आच्छादित हड्डियों पर गर्व नहीं करना चाहिए क्योंकि जो श्रेष्ठ घोड़ों पर छत्र से मंडित थे, वे बाद में पृथ्वी ही में गाड़े गए।

३८

कबीर कहता है, ऊँचा भवन देख कर गर्व नहीं करना चाहिए क्योंकि आज या कल पृथ्वी में लेटना ही पड़ेगा और ऊपर घास जम आयगी।

३९

कबीर कहता है, (किसी प्रकार का) गर्व नहीं करना चाहिए और न किसी निर्धन

पर हँसना ही चाहिए। तेरी नाव (जीवन) अभी भी (संसार-) सागर में है। कौन जाने आगे क्या हो !

४०

कबीर कहता है, अपने सुंदर शरीर को देखकर गर्व नहीं करना चाहिए। तुम उसे आज या कल छोड़ कर वैसे ही चले जाओगे जैसे सर्प अपना केचुल छोड़ता है।

४१

कबीर कहता है, (इस जीवन में) राम नाम की लूट (सरलता से हो सकती है।) यदि तुझे लूटना है तो (शीघ्र ही) लूट ले। नहीं तो जब प्राण छूट जायँगे तो फिर पीछे पछताना ही होगा।

४२

कबीर कहता है, ऐसा कोई (मनुष्य) उत्पन्न नहीं हुआ जो अपने घर (शरीर) में आग लगा दे (अर्थात् वासनाओं का विनाश कर दे) और पांचों लड़कों (इंद्रियों) को जला कर (केवल) राम में अपनी लौ लगा कर रहे।

४३

कोई तो अपना लड़का बेचता है, कोई लड़की। यदि वह कबीर से साझा कर ले तो वह हरि के साथ व्यापार करने लगे। (अर्थात् ईश्वर की ओर प्रवृत्त हो जाय।)

४४

कबीर कहता है, मेरी यह चेतावनी कहने से न रह जाय कि जो पीछे (जीवन के अनंतर) सुख भोगने वाले हैं, उन्हें गुड़ लेकर ही खाना चाहिए। (अत्यंत रूखी-सूखी वस्तु से ही निर्वाह करना चाहिये।)

४५

कबीर कहता है, मैंने समझा है कि पढ़ना अच्छा है, किंतु पढ़ने से भी अच्छा योग है। (और योग से भी अच्छी) राम की भक्ति है जो मैं नहीं छोड़ूँगा चाहे लोग मेरी निंदा भले ही करें।

४६

कबीर कहता है, जिनके हृदय में ज्ञान नहीं है वे बेचारे मेरी निंदा क्या करते हैं ? यहाँ तो कबीर अन्य सभी कामों को छोड़कर राम में ही रमण कर रहे हैं।

४७

कबीर कहता है, परदेसी (अन्य देश—ब्रह्म-क्षेत्र में निवास करने वाले—गुरु) के वस्त्र (शरीर) में चारों दिशाओं से आग (ब्रह्म-ज्योति) लग रही है। उसका खिंथा (शारीरिक इंद्रियाँ) तो जलकर कोयला हो गई हैं किंतु उसके तागे (आत्मा जिसका संसर्ग परमात्मा से लगा हुआ है) को आँच भी नहीं लगी।

४८

कबीर कहता है, खिंथा (वस्त्र-शरीर) जलकर कोयला हो गया और खप्पर (कपाल) भी फूट गया। (कहा जाता है कि ब्रह्म-रंध्र से प्राण निकलते समय योगियों का कपाल

विदीर्ण हो जाता है।) बेचारा योगी ब्रह्म के साथ खेल गया (उसी में लीन हो गया।) अब उसके आसन पर (उसके बाद) भस्म-मात्र रह गई है।

४९

कबीर कहता है, इस थोड़े जल (संसार) की मछली (आत्मा) को मारने के लिए धीवर (मृत्यु) ने जाल डाल दिया है। इस विपत्ति से छूटना संभव नहीं है, अतः लौट कर समुद्र (ब्रह्म या गुरु) में तू अपनी सँम्हाल कर, अपने को सुरक्षित कर।

५०

कबीर कहता है, समुद्र (गुरु) नहीं छोड़ना चाहिए, चाहे वह अत्यंत खारा (क्रोधी) ही क्यों न हो। छोटी छोटी पोखरों (साधारण और तुच्छ गुरुओं) को खोजते हुए देखकर तुझे कोई अच्छा नहीं कहेगा।

५१

कबीर कहता है, बड़े बड़े क्रोधी (इस भव-सागर में) बह गए। उनकी रक्षा करने वाला कोई नहीं हुआ। अपनी दीनता और ग़रीबी में ही जीवन व्यतीत करते हुए ही कुछ हो सकता है।

५२

कबीर कहता है, किसी वैष्णव की कुत्ती अच्छी है किंतु किसी शाक्त की माँ बुरी है। क्योंकि कुत्ती तो (वैष्णव के संसर्ग से) हरि-नाम का यश श्रवण करती है और शाक्त की माँ (अपने पुत्र के साथ) पाप कमाने जाती है।

५३

कबीर कहता है, यह हरिण (मनुष्य) तो दुबला-पतला (निर्बल) है (उसमें आध्यात्मिक शक्तियों का बल नहीं है) और यह सरोवर (चारों ओर से लताओं और वृक्षों की) हरियाली लिए हुए है (अर्थात् यह संसार विषय वासनाओं के आकर्षण से अत्यंत मोहक है।) इस एक जीव हरिण का वध करने के लिए लाखों शिकारी (व्याधियाँ) हैं। वह काल से कहाँ तक बच सकता है?

५४

कबीर कहता है, गंगा के किनारे जो अपना घर बनाता है, वह सदैव उसका निर्मल जल पीता रहता है। (अन्यथा उसकी प्यास नहीं बुझती।) इसी तरह बिना हरि-भक्ति के मुक्ति नहीं हो सकती। यह कह कर कबीर (हरि-भक्ति में) लीन हो गए।

५५

कबीर कहता है, (जब मैंने भक्ति की तो) मेरा मन गंगा-जल की भाँति निर्मल हो गया। (मेरी पवित्रता के कारण मुझे पाने के लिए) मेरे पीछे स्वयं हरि मेरा नाम 'कबीर' 'कबीर' पुकारते हुए, फिरते रहते हैं।

५६

कबीर कहता है, हल्दी पीले रंग की है और चूना उज्ज्वल रंग का है इसे देख कर सच्चा राम का स्नेही तो (प्रभु) से इस प्रकार मिलता है कि दोनों रंग नष्ट ही हो

जाते हैं। (पीली हल्दी और सफ़ेद चूने के मिलने से अरुण रंग हो जाता है और यह अरुणता अनुराग की सूचिका है। इसी अरुणता की ओर कबीर का संकेत है।)

५७

कबीर कहता है, (घाव पर हल्दी और चूना मिला कर लगाने से) हल्दी तो शरीर की पीड़ा हरण कर लेती है और चूने (घाव का) चिह्न भी नहीं रहने देता। (हल्दी और चूने की) इस परस्पर प्रीति पर (कि एक पीड़ा और दूसरा घाव के चिह्न को मिटाने के लिए परस्पर संयोग करते हैं) जिसमें अपना जाति, वर्ण और कुल खो जाता है (क्योंकि हल्दी और चूना मिलने पर अपना व्यक्तिगत रंग, गुण, स्वभाव आदि सब खो देते हैं) कबीर बलि जाता है।

५८

कबीर कहता है, मुक्ति का द्वार राई के दशमांश की भांति संकीर्ण और सूक्ष्म है। यहाँ मेरा मन तो मतवाला हाथी हो रहा है। वह उसमें से किस प्रकार निकल सकता है!

५९

कबीर कहता है, यदि मुझे ऐसा सतुगुरु मिले जो संतुष्ट होकर मुझ पर अनुग्रह करे और मुक्ति का द्वार खोल दे तो मैं सरलता से उस द्वार में से आ-जा सकता हूँ।

६०

कबीर कहता है, न मेरे लिए छानी है न छप्पर, न मेरे घर है न गाँव। मेरे हरि (प्रभु) मुझ से यह कभी न पूछें कि मैं कौन हूँ। न मेरी कोई जाति है, न मेरा कोई नाम है।

६१

कबीर कहता है, मुझे तो मरने की उमंग है। यदि मर जाऊँ तो हरि के दरवाज़े पहुँच जाऊँ। हाँ, प्रभु यह भर न पूछें कि यह कौन है जो हमारे दरवाज़े पड़ा हुआ है।

६२

कबीर कहता है, न हमने कुछ किया, न करेंगे और न हमारा यह शरीर ही कुछ कर सकता है। मैं क्या जानूँ हरि ने क्या कुछ कर दिया जिससे (मैं) कबीर, कबीर (महान्) हो गया!

६३

कबीर कहता है, स्वप्न में भी बर्राते हुए जिसके मुख से राम का नाम निकल जाता है; उसके पैर के जूतों के लिए मेरे शरीर का चर्म (प्रस्तुत) है।

६४

कबीर कहता है, हम मिट्टी के पुतले हैं और हमारा नाम मनुष्य रक्खा गया है। हम हैं तो चार दिन के मेहमान किंतु (अपने लिए) बड़ी-बड़ी भूमि को सँवारते और सुरक्षित करते हैं।

६५

कबीर कहता है, मैंने अपने को मेंहदी की भाँति (संयम और साधना) से पिसा-पिसा कर तेरे सम्मुख डाल दिया किंतु (ऐ मेरे प्रभु), तूने मेरी बात भी नहीं पूछी और कभी मुझे अपने चरणों से नहीं लगाया।

६६

कबीर कहता है, जिस (भक्ति) के द्वार से आते-जाते मुझे कोई नहीं रोकता उस द्वार के इस रूप में होने पर मैं उसे किस प्रकार छोड़ सकता हूँ?

६७

कबीर कहता है, मैं (इस संसार-सागर में) डूब गया था किंतु (गुरु के) गुणों की लहर की हिलोर से उद्धार पा गया। जब मैंने अपना बेड़ा (शरीर) जर्जर देखा, तब मैं उससे उछल कर उतर गया।

६८

कबीर कहता है, पापी को न तो भक्ति अच्छी लगती है न हरि की पूजा ही प्रसन्न कर सकती है जिस प्रकार मक्खी चंदन को छोड़ वहीं जाती है जहाँ दुर्गंधि होती है।

६९

कबीर कहता है, वैद्य मर गया, रोगी मर गया और सारा संसार मर गया। एक कबीर ही नहीं मरा जिसके लिए रोनेवाला कोई नहीं है।

७०

कबीर कहता है, तूने 'नाम' का ध्यान नहीं किया, यह तुझे बड़ा भारी दोष लगा। यह शरीर तो काठ की हाँडी है। यह बार-बार (आग पर) नहीं चढ़ सकती। (अर्थात् बार बार मनुष्य-शरीर नहीं मिल सकता।)

७१

कबीर कहता है, अब तो मुझ से ऐसा ही हो पड़ा है और मैंने मन-भाया काम कर लिया है (अर्थात् संसार की चिंता न करते हुए प्रभु के सामने आत्मार्पण कर दिया है।) अब मरने से क्या डरना जब मैंने अपने हाथ में सिंधौरा ले लिया है? (प्राचीन प्रथा ऐसी थी कि सती नारियाँ पति की चिता पर जलते समय हाथ में सिंदूर की डिब्बी ले लेती थीं। यह कार्य उनके अचल सुहाग का सूचक था।)

७२

कबीर कहता है, (हरि) रस का गन्ना ही चूसना चाहिए और गुणों की प्राप्ति के लिए ही रो रो कर मरना चाहिए, (अत्यंत प्रयत्नशील होना चाहिए।) क्योंकि (इस संसार में) अवगुणी मनुष्य को कभी कोई भला न कहेगा।

७३

कबीर कहता है, यह जल भरी गागरी (शरीर) आज-कल ही में फूट जायगी और यदि तुम किसी गुरु को अपना रक्षक न बनाओगे तो बीच रास्ते ही में (आयु समाप्त होने के पूर्व ही विषय-वासनाएँ इस घड़े को) लूट लेगीं।

७४

कबीर कहता है, मैं तो राम का कुत्ता हूँ और मेरा नाम 'मोती' है। हमारे गले में उसी की रस्सी पड़ी हुई है, वह जहाँ खींचता है, वहीं जाता हूँ।

७५

कबीर कहता है, ऐ मनुष्य, तू अपनी काठ की जपनी (माला) मुझे क्या दिखलाता है! यदि तू अपने हृदय में राम की अनुभूति उत्पन्न नहीं करता तो इस जपनी से क्या होता है?

७६

कबीर कहता है, विरह रूपी सर्प मन में निवास करता है और यह किसी मंत्र (युक्ति) से वशीभूत नहीं होता। फिर नाम का वियोगी या तो जीवित ही नहीं रहेगा और यदि जीवित रहेगा तो पागल हो जायगा।

७७

कबीर कहता है, पारस (पत्थर) और चंदन—इनमें एक सुगंधि रहती है। लोहा और काठ जिनमें कोई गंध नहीं है, वे भी (क्रमशः) पारस और चंदन से मिल कर उत्तम हो गए।

७८

कबीर कहता है, यम का डंडा बहुत बुरा है, वह सहन नहीं किया जाता। मुझे जो एक साधू मिल गया उसी ने मेरे ऊपर रक्षा का आवरण देकर मुझे बचा लिया।

७९

कबीर कहता है, वैद्य अपने को श्रेष्ठ मानता है और कहता है कि दवा मेरे वश में है। (किंतु वह यह नहीं जानता कि) यह (आत्मा) तो गोपाल की वस्तु है, वह जब चाहे मार कर ले सकता है।

८०

कबीर कहता है, तुम अपनी नौबत (आनंद की रागिनी) दस दिन बजा लो। नदी नाव के संयोग की भाँति फिर यह (योनि) तुम्हें नहीं मिलेगी।

८१

कबीर कहता है, यदि मैं सात समुद्रों को स्याही, समस्त वनराजि को अपनी लेखनी, और सारी पृथ्वी को काग़ज़ बना लूँ, फिर भी हरि का यश नहीं लिखा जायगा।

८२

कबीर कहता है, यदि हृदय में गोपाल निवास करते हैं तो जुलाहे की जाति होने से क्या हानि हो सकती है? हे राम, यदि तू कबीर के कंठ से मिल जाय तो वह संसार के सभी जंजालों से रहित हो जाय।

८३

कबीर कहता है, (संसार में) ऐसा कोई मनुष्य नहीं है जो अपना मंदिर (शरीर)

जला दे और पाँचों लड़कों (इंद्रियों) को मार कर राम में अपनी लौ लगा दे।

८४

कबीर कहता है, (संसार में) ऐसा कोई नहीं है जो इस शरीर (की वासनाओं) को जला दे। कबीर बार बार पुकार कर रह गया किंतु संसार के अंधे मनुष्यों ने (इस रहस्य को) नहीं जाना।

८५

कबीर कहता है, सती (विशुद्ध आत्मा) चिता (संयम की आग) पर चढ़ कर पुकार रही है—ऐ भाई श्मशान, संसार के सभी लोग तो लौट गए! अब अंत में हमारा काम तुम्हीं से है।

८६

कबीर कहता है, मन पक्षी बन कर दशों दिशाओं में उड़ उड़ कर जाता है। जिसे जैसी संगति मिलती है, वह वैसा ही फल पाता है।

८७

कबीर कहता है, मैं जिस (ब्रह्म) की खोज कर रहा था, मैंने वही स्थान प्राप्त कर लिया किंतु तू तो उस योनि में जाकर पड़ गया जिसे तू 'दूसरा' (बुरा) कहता था।

८८

कबीर कहता है, केले के समीप जो बेर है, उसके कुसंग से केले का मरण हो रहा है। केला तो अपने (उल्लास में) झूलता है और बेर अपने काँटों से उस (के पत्तों) को चीरती है। इसी प्रकार शाक्त की संगति की ओर आँख भी न उठाना चाहिए। (बेर की भाँति शाक्त का भी यह स्वभाव है कि वह उल्लास में झूमने वाले साथियों के अंगों को चीर डालता है।)

८९

कबीर कहता है, दूसरे के भार को तू अपने सिर पर रख कर (जीवन का) रास्ता चलना चाहता है किंतु तू स्वयं अपने भार से आशंकित नहीं होता जब कि आगे अत्यंत विषम मार्ग है।

९०

कबीर कहता है, बन की जली हुई लकड़ी (संसार के पापों से जली हुई जीवात्मा) खड़ी खड़ी पुकार कर कह रही है कि अब मैं लुहार (काल) के वश में न पड़ जाऊँ जो मुझे फिर दूसरी बार जलायेगा! (पुनर्जन्म में फिर कष्टों का सामना करना पड़ेगा!)

९१

कबीर कहता है, एक (मन) के मरने से दो (आंखों के विषय-विकार) मर जाते हैं। दो (आंखों के विषय-विकार) के मरने से चार (अंतःकरण) मर जाते हैं। चार (अंतःकरण के मरने से छः दर्शन मर जाते हैं। जिनमें चार पुरुष (सांख्य, योग, वैशेषिक और न्याय) और दो स्त्रियाँ (पूर्व मीमांसा और उत्तर मीमांसा) हैं। अर्थात्

एक मन को नष्ट करने से ही शरीर का समस्त विकार और ज्ञान का अहंकार नष्ट हो जाता है।

६२

कबीर कहता है, मैंने संसार को अनेक प्रकार से देख देख कर खोजा किंतु कहीं भी मुझे विश्राम का स्थान नहीं मिला। अतः जो हरि के नाम के प्रति सचेत नहीं हुए यदि वे किसी दूसरे (देवता) की ओर अनुरक्त हुए और अपने को भूल गए तो उससे क्या?

६३

कबीर कहता है, संगति तो साधु ही की करनी चाहिये जो अंत तक (जीवन का) निर्वाह करती है। शाक्त की संगति कभी न करना चाहिये जिससे संकट और कष्ट होता है।

६४

कबीर कहता है, तू संसार को ठीक तरह समझते हुए भी, संसार में चैतन्य होते हुए भी, उसी में समा कर रह गया। जो हरि के नाम के प्रति जागरूक नहीं हुए उन्होंने व्यर्थ ही जन्म लिया।

६५

कबीर कहता है, केवल राम की ही आशा करनी चाहिये। अन्य की आशा तो निराशा मात्र है। जो मनुष्य हरि के नाम के प्रति उदासीन हैं वे अवश्य ही नर्क में पड़ेंगे।

६६

कबीर कहता है, मैंने अनेक शिष्य और अनेक संप्रदाय बनाये किंतु केशव (ब्रह्म) को अपना मित्र नहीं बनाया। हम चले तो थे हरि से मिलने के लिये किंतु बीच संसार ही में हमारा चित्त अटक गया।

६७

कबीर कहता है, रहस्य का जानने वाला बेचारा क्या करे जब तक स्वयं ईश्वर सहायता न करे! (बिना ईश्वर की सहायता के) जिस जिस डाली पर पैर रखोगे वही डाली मुड़ जावेगी।

६८

कबीर कहता है, दूसरों को ही उपदेश करते रहने से तुम्हारे मुँह में धूल पड़ेगी (तुम्हारे हाथ कुछ न आवेगा) क्योंकि दूसरों की (अन्न) राशि की रक्षा करते करते तुम स्वयं अपने घर का खेत खा डालोगे। (अर्थात् तुम्हें अपनी आत्मोन्नति का अवसर ही न मिलेगा।)

६९

कबीर कहता है, जब की भूसी खाते हुए भी तुम साधु की संगति में रहो। जो होनहार (भावी) है वह तो होवेगी ही किंतु कभी किसी शाक्त की संगति में मत जाओ।

१००

कबीर कहता है, साधु की संगति में दिनोंदिन प्रेम दूना होता जाता है। किंतु शाक्त तो काली कामरी की तरह है जो धोने से कभी सफ़ेद नहीं हो सकती (अर्थात् उसे कितना ही उपदेश क्यों न करो उसके हृदय में ज्ञान का प्रकाश न होगा।)

१०१

कबीर कहता है, जब तुमने अपने मन को ही नहीं मूँड़ा तो केश मुड़ाने से क्या होता है? क्योंकि जो कुछ भी (पाप-कर्म) किया वह मन ने किया, बेचारे सिर को व्यर्थ ही मूड़ा गया!

१०२

कबीर कहता है, राम को नहीं छोड़ना चाहिए चाहे शरीर और संपत्ति चली जावे। (राम के) चरण-कमलों में चित्त लगा कर राम-नाम में ही लीन हो जाना चाहिए।

१०३

कबीर कहता है, जिस यंत्र (शरीर) को हम बजाते थे उसके सभी तार (इंद्रिय समूह) टूट गए। बेचारा यंत्र (शरीर) क्या करे जब उसका बजाने वाला ही (जीवात्मा इस संसार को छोड़ कर) चलने लगा!

१०४

कबीर कहता है, मैं उस गुरु की माँ का सिर मूँडना चाहता हूँ जिस गुरु के वचनों से भ्रम दूर नहीं होता। वह (गुरु) स्वयं तो चारों वेदों में डूबा रहता है, अपने चेलों को भी (संसार-सागर में) बहा देता है।

१०५

कबीर कहता है, तूने जितने पाप किए हैं उन्हें तूने नीचे छिपा कर रख लिया है लेकिन अंत में जब धर्मराज ने पूछा तो सबके सब प्रकट हो गए।

१०६

कबीर कहता है, तूने हरि का स्मरण छोड़ कर कुटुंब का बहुत पालन-पोषण किया। किंतु तू यह धंधा करता ही रह गया, अंत में न तेरा कोई भाई रहा, न बंधु।

१०७

कबीर कहता है, तू हरि का स्मरण छोड़ कर रात्रि में (मंत्रों को) जगाने के लिये (स्मशान भूमि में) जाता है। (स्मरण रख) तू ऐसी सर्पणी होकर फिर संसार में आवेगा जो अपने बच्चों को स्वयं खा लेती है।

१०८

कबीर कहता है, तू हरि का स्मरण छोड़ कर सदैव स्त्री को अपने सिर पर रखे रहता है। (स्मरण रख) तू संसार में ऐसी गधी होकर जन्म लेगा जो चार चार मन का बोझ सहन करती है।

१०९

कबीर कहता है, यदि तुझ में बहुत अधिक चातुर्य है तो अपने हृदय में हरि का

जाप कर। (समझ ले कि हरि का जाप करना) सूली के ऊपर खेलने की भाँति है। यदि वहाँ से तू गिरा तो फिर तेरे लिए कोई स्थान नहीं है।

११०

कबीर कहता है, वही मुख धन्य है जिस से 'राम' कहा जाता है। (उस राम-नाम से) बेचारे शरीर की क्या बात, ग्राम का ग्राम पवित्र हो जायगा।

१११

कबीर कहता है, वही कुल अच्छा है जिस कुल में हरि का दास उत्पन्न होता है। जिस कुल में हरि का दास नहीं होता, वह कुल तो ढाक और पलास की भाँति है।

११२

कबीर कहता है, घोड़े, हाथी और अत्यंत घने रूप में लाखों ध्वजा भले ही फह-राएँ किंतु समस्त सुख से भिक्षा अच्छी है यदि उसमें राम का स्मरण करते हुए दिन व्यतीत होता है।

११३

कबीर कहता है, मैं सारे संसार में ढोल कंधे पर चढ़ाकर घूमा। सब को ठोक बजा कर देखते हुए (मैं इसी निष्कर्ष पर पहुँचा कि) कोई किसी का नहीं है।

११४

मार्ग में मोती बिखरे हुए हैं, वहीं पर एक अंधा आ निकला। (किंतु उसके सामने उन मोतियों का क्या मूल्य है?) उसी भाँति ज्ञान-ज्योति के बिना यह सारा संसार जगदीश (के महत्व) का उल्लंघन करता जा रहा है।

११५

कबीर का वंश डूब गया क्योंकि उसमें कमाल जैसा पुत्र उत्पन्न हुआ। वह हरि का स्मरण करना छोड़ कर घर में धन-संपत्ति ले आया!

११६

कबीर कहता है, साधू से मिलने के लिए जाते समय किसी को अपने साथ न लेना चाहिए। (एक बार माया मोह छोड़कर) फिर पीछे पैर नहीं रखना चाहिए। आगे जो कुछ होना हो, हो।

११७

कबीर कहता है, जिस रस्सी से सारा संसार बँधा हुआ है उससे ऐ कबीर, तू मत बँध! नहीं तो सोने के समान तेरा शरीर वैसे ही अदृश्य हो जायगा जैसे आटे में नमक।

११८

कबीर कहता है, जब आत्मा चली जाती है तो सीधे सेना की सेना को (अथवा इशारे मात्र से) पृथ्वी में गाड़ देते हैं। फिर भी यह जीव अपने नेत्रों का ढुचापन नहीं छोड़ता।

११९

कबीर कहता है, (हे प्रभु) मैं नेत्रों से तुझे देखता रहूँ, कानों से तेरा नाम सुनता

रहूँ, वाणी से तेरे नाम का उच्चारण करता रहूँ और तेरे चरण कमलों को हृदय में स्थान देता रहूँ।

१२०

कबीर कहता है, मैं गुरु के प्रसाद से स्वर्ग और नर्क (दोनों) से परे ही रहा। मैं आदि और अंत में भी (प्रभु या गुरु) के चरण-कमलों की मौज (लहर) में निरंतर रहा।

१२१

कबीर कहता है, मैं चरण-कमलों की मौज (लहर में रहने के उल्लास) का कहो कैसे अनुमान करूँ ? वाणी के द्वारा उसका सौंदर्य नहीं देखा जा सकता। वह तो देखने से ही संबंध रखता है।

१२२

कबीर कहता है, मैं (अपने प्रभु को) देखकर क्या कहूँ ! यदि कहूँ भी तो विश्वास कौन करेगा ? अतः हरि जैसा है, वह वैसा ही रहे और मैं हर्षित होकर उसके गुणों का गान करूँ। (न मेरे कहने की आवश्यकता है, न किसी के सुनने की।)

१२३

कबीर कहता है, मनुष्य सुखोपभोग करते हुए उपदेश भी देता है, और खाते-पीते हुए भी चिंता करता रहता है जैसे कुंज पक्षी विचरण करते हुए भी मन को (अपने घोंसले और बच्चों आदि के) ममता-मोह में उलझा रखता है।

१२४

कबीर कहता है, आकाश में बादल छाते हैं और बरस कर सरोवरों को पानी से भर देते हैं (अर्थात् ईश्वरीय विभूति प्रत्येक क्षण बरस कर संसार के कण कण में दिव्य ज्योति भर रही है।) यदि फिर भी मनुष्य चातक की तरह जल के लिए तरसता रहे तो उसका क्या हाल होगा ?

१२५

कबीर कहता है, यदि चक्रवाकी रात्रि के समय बिछुड़ जाती है तो वह प्रातःकाल आकर चक्रवाक से मिल जाती है। किंतु जो व्यक्ति राम से बिछुड़ जाते हैं, वे न राम से प्रातःकाल में और न रात्रिकाल में मिल सकते हैं। (अर्थात् राम से एक बार बिछुड़ने से वे सदैव के लिए राम से विलग ही हो जाते हैं।)

१२६

कबीर कहता है, रात्रि (जीवन) में (ईश्वर से) वियोगी होकर ऐ संखम (चक्रवाक पक्षी—यहाँ मनुष्य) तू कृश और दुखी ही रह। तू मंदिर मंदिर (देवी देवताओं की खोज में) भले ही रोता रहे किंतु सूर्य (ज्ञान) के उदय होने पर ही तू अपने देश (परम-पद) को प्राप्त होगा।

१२७

कबीर कहता है, (ऐ मनुष्य) तू सोकर क्या करेगा ? तू जाग। रोने से तो तुझे

दुःख ही हुआ। (यह तो समझ कि) जिसका (अंतिम) स्थान क़ब्र (समाधि) में है, क्या वह (संसार में) सुख से सो सकेगा ?

१२८

कबीर कहता है, (ऐ मनुष्य) तू सोकर क्या करेगा ? उठ कर मुरारी (ब्रह्म) का जाप क्यों नहीं करता ? एक दिन तो तुझे लंबे पैर पसार कर सोना ही है।

१२९

कबीर कहता है, (ऐ मनुष्य) तू सोकर क्या करेगा ? तू उठ कर बैठ जा और जागरण कर। जिस (प्रभु) के साहचर्य से तू बिछुड़ गया है, फिर उसी के साथ लग।

१३०

कबीर कहता है, जिस मार्ग पर संत चलता है उस मार्ग को तू मत छोड़। तू तो उसी पर जा। उस मार्ग को देखते ही तू पवित्र हो जायगा और संत से भेट होने पर तू नाम का जाप करने लगेगा।

१३१

कबीर कहता है, शाक्त का साथ कभी न करना चाहिए, उससे दूर ही भाग जाना चाहिए। काले बर्तन को स्पर्श करने से कुछ न कुछ कालिमा का धब्बा तो लगेगा ही।

१३२

कबीर कहता है, तू राम की ओर से जागरूक नहीं हुआ और तेरी वृद्धावस्था आ पहुँची। जब घर में आग लग गई तब दरवाज़े से क्या क्या निकाला जा सकता है ?

१३३

कबीर कहता है, वही कार्य हुआ जो करतार ने किया। उसके बिना कोई दूसरा नहीं है। एक वही सृष्टिकर्त्ता है।

१३४

कबीर कहता है, फल फलने लगे और आम पकने लगे (अर्थात् शुभ कर्मों के परिणाम स्पष्ट होने लगे।) यदि तुमने (भूख से व्याकुल होकर) बीच ही (संसार) में इनका उपभोग न कर लिया तो अपने स्वामी की सेवा में (इन फलों को) पहुँचा दो।

१३५

कबीर कहता है, (लोग) भगवान को ख़रीद कर पूजते हैं और मन के हठ से तीर्थों में (स्नान करने के लिए) जाते हैं। वे लोग दूसरों को देख देख कर (अनुकरण करते हुए) स्वाँग बनाते हैं और भूल कर भटकते फिरते हैं।

१३६

कबीर कहता है, (लोगों ने) पत्थर को परमेश्वर बना लिया है और सारा संसार उसकी पूजा करता है। जो इस भुलावे में पड़ा रहता है वह (मृत्यु की) काली धार में डूब जाता है।

१३७

कबीर कहता है, काग़ज़ की तो कोठरी (पुस्तक) बनाई और स्याही रूपी कर्म के

उस पर कपाट लगा दिए। पत्थर (मूर्ति) के साथ सारी पृथ्वी डुबा दी। पंडितों ने अपना यही मार्ग बनाया है।

१३८

कबीर कहता है, जो कुछ तू कल करने वाला है, उसे अभी कर ले और जो अभी करना है उसे इसी क्षण कर ले। पीछे जब काल सिर पर आ जावेगा तब कुछ न हो सकेगा।

१३९

कबीर कहता है, मैंने एक ऐसा जंतु (आडंबरी साधु) देखा है जो धोई हुई लाख के समान दीख पड़ता है। वह देखने में तो कई गुना चंचल ज्ञात होता है किंतु वस्तुतः वह है मतिहीन और अपवित्र।

१४०

कबीर कहता है, यम भी मेरी बुद्धि का तिरस्कार नहीं कर सकता। क्योंकि मैंने उस परविरदिगार (प्रभु) का जाप किया है जिसने स्वयं यम की सृष्टि की है।

१४१

कबीर कहता है, मैं तो कस्तूरी की भाँति (आध्यात्मिक सुगंधि से परिपूर्ण) हो गया और अन्य सभी सेवक भ्रमर की भाँति (केवल उपदेश का शब्द करने वाले) हो गए। कबीर ने जैसे जैसे अपनी भक्ति बढ़ाई वैसे वैसे उसमें राम का निवास होता ही गया।

१४२

कबीर कहता है, परिवार की उलझनों में राम एक किनारे ही पड़े रह गए। इसी बीच में धर्मराज के दूत धूमधाम से आ पहुँचे।

१४३

कबीर कहता है, शाक्त से तो सुअर अच्छा है जो गाँव की गंदगी को साफ़ तो करता रहता है। बेचारा शाक्त तो यों ही मर गया और किसी ने उसका नाम भी नहीं लिया।

१४४

कबीर कहता है, तूने कौड़ी कौड़ी जोड़ कर लाख और करोड़ (रुपये) जोड़ लिए। किंतु (इतना होने पर भी) संसार से चलते समय तुझे कुछ भी नहीं मिला। (यहाँ तक कि चिता पर) तेरी लँगोटी (की गाँठ भी) तोड़ दी गई!

१४५

कबीर कहता है, यदि तूने वैष्णव होकर चार मालाएँ फेर लीं तो क्या हुआ! बाहर से भले ही स्वर्ण की द्वादश दीप्तियाँ तुझे प्राप्त हो गईं किंतु भीतर तो तुझ में (वासनाओं का) नशा भरा ही हुआ है।

१४६

कबीर कहता है, तू अपने मन का अभिमान छोड़ कर रास्ते का रोड़ा (पत्थर)

बन कर रह जा। कोई विरला ही इस प्रकार सेवक होता है और उसी को भगवान की प्राप्ति होती है।

१४७

कबीर कहता है, यदि तू रास्ते का रोड़ा ही बन गया तो क्या हुआ? (ठोकर लगने से) पथिक को वह कष्ट कारक होता है। वस्तुतः (हे प्रभु) तेरा सच्चा दास तो ऐसा है जैसे पृथ्वी में धूल (जिससे किसी को ठोकर नहीं लग सकती।)

१४८

कबीर कहता है, यदि तू धूल ही हो गया तो क्या हुआ। वह उड़ उड़ कर शरीर में लगती है (और उसे गंदा करती है।) हरि का सेवक तो संपूर्ण रूप से ऐसा होना चाहिए जैसा पानी (जो उड़ कर किसी को न लग सके।)

१४६

कबीर कहता है, यदि तू पानी भी हो गया तो क्या हुआ? वह भी कभी गरम और ठंडा होता रहता है (अपना स्वभाव बदलता रहता है।) हरि का सेवक तो ऐसा होना चाहिए जैसा कि स्वयं हरि है (जो न कभी गरम होता है, न शीतल। सदैव एक रस रहता है।)

१५०

ऊँचा भवन है, स्वर्ण है, सुंदर युवती स्त्री है, और भवन के शिखरों पर ध्वजाएँ फहरा रही हैं। किंतु इन सब से अच्छी मधुकरी (भिक्षा) है (जिसके लिए) संतों के साथ प्रभु का गुण-गान होता है।

१५१

कबीर कहता है, जिस स्थान पर राम की भक्ति होती है, वह स्थान एक बड़े नगर से भी उज्ज्वल है और जिस स्थान पर राम से स्नेह करने वाला नहीं है, वह मेरे विचार से तो यमपुर के समान ही है।

१५२

कबीर कहता है, गंगा (इडा) और यमुना (पिंगला) के बीच स्थान में 'सहज' शक्ति से संपन्न शून्य का एक घाट है। कबीर ने तो उसी घाट पर अपना मठ बना लिया है। अन्य साधू गण संसार में रास्ता खोज ही रहे हैं, (यहाँ कबीर ने अपना स्थान पा लिया।)

१५३

कबीर कहता है, आत्मा जिस प्रकार अपने आदि स्थान से उत्पन्न हुई है, यदि वैसी ही अंत तक निबह जाय, तो बेचारा हीरा क्या, करोड़ों रत्न भी उसकी बराबरी नहीं कर सकते।

१५४

कबीर कहता है, मैंने एक आश्चर्य देखा है कि (हरि रूपी) हीरा (संसार रूपी) बाज़ार में बिक रहा है! सच्चे व्यापारी (संत) के न होने से वह कौड़ी के बदले

जा रहा है ! (रुपये और साधारण लोभ से ही राम-नाम की दीक्षा दी जा रही है !)

१५५

कबीर कहता है, जहाँ ज्ञान है, वहीं धर्म है और जहाँ झूठ है, वहीं पाप है, जहाँ लोभ है वहीं काल है और जहाँ क्षमा है, वहीं स्वानुभूति है।

१५६

कबीर कहता है, यदि माया का परित्याग कर दिया तो क्या हुआ यदि मान नहीं छोड़ा जा सका ? मान (का विचार) तो बड़े बड़े मुनीश्वरों के गले में अटक रहा है। (सच है—मान का विचार सभी को नष्ट करता है।)

१५७

कबीर कहता है, मुझे सच्चा गुरु मिला है। उसने ऐसे शब्द (के तीर) मेरी ओर प्रेरित किए हैं कि उनके लगते ही मैं भूमि में मिल गया और मेरे कलेजे में घाव हो गया। (अर्थात् मैं पृथ्वी पर स्थिर हो गया और प्रभु की विरह-पीड़ा मेरे हृदय में उत्पन्न हो गई।)

१५८

कबीर कहता है, सत्गुरु कर ही क्या सकता है यदि शिष्य में दोष हो ? चाहे बाँसुरी को पूरे स्वर से क्यों न बजाया जाय, (आंतरिक रूप से बने हुए) अंधे के हृदय पर थोड़ा भी प्रभाव न हो सकेगा।

१५९

कबीर कहता है, घोड़े और हाथियों के घने समूह एवं छत्रपति राजा की स्त्री (वैभव संयुक्त क्यों न हो) किंतु इन सब की तुलना उससे भी नहीं हो सकती जो हरि-भक्त की पनिहारिन मात्र है।

१६०

कबीर कहता है, राजा की स्त्री की निंदा क्यों करनी चाहिए और हरि की सेविका का मान क्यों करना चाहिए ? क्योंकि वह (राजा की स्त्री) विषय-वासना के लिए अपना शृंगार करती है और यह (हरि-भक्त की सेविका) हरि के नाम का स्मरण करती है।

१६१

कबीर कहता है, मैंने (राम-नाम का) स्तंभ पा लिया है और सत्गुरु के धैर्य (की रस्सी) से मेरी आत्मा स्थिर हो गई है। इस प्रकार कबीर ने मानसरोवर (मानस या हृदय) के किनारे (हरि रूपी) हीरे का व्यापार कर लिया है। (अर्थात् हृदय ही में हरि को प्राप्त कर लिया है।)

१६२

कबीर कहता है, सेवक रूपी जौहरी हरि रूपी हीरे को लेकर (संसार रूपी) बाज़ार में प्रतिष्ठित होता है। जभी कोई (साधु रूपी) पारखी मिलता है, तभी हीरे का व्यापार हो जाता है।

१६३

कबीर कहता है, (तुम तो) काम पड़ने पर ही हरि का स्मरण करते हो और (प्रति दिन) इसी प्रकार का स्मरण करते रहते हो। (इससे चाहे) तुम स्वर्ग-प्राप्ति भले ही कर लो किंतु (इतना निश्चित है कि) तुमने हरि को धन से ही खरीदा है। (हरि इस प्रकार खरीदे नहीं जा सकते।)

१६४

कबीर कहता है, सेवा करने के उपयुक्त दो ही अच्छे हैं—एक संत और दूसरा राम। राम तो मुक्ति का दान करने वाले हैं और संत नाम का जाप कराने वाले हैं।

१६५

कबीर कहता है, जिस मार्ग से पंडित-समूह गए हैं, (दुर्बुद्धि) लोगों की भीड़ (या बहरी जनता) उनके पीछे लग गई है। किंतु वे राम-(भक्ति-साधना की) विषम-घाटी से परिचित नहीं हैं जहाँ कबीर (पहले से ही) चढ़ गया है।

१६६

कबीर कहता है, तू अपने कुल की मर्यादा की रक्षा करते हुए दुनिया को धोखा देने ही में मर गया। अब जब लोग तुझे श्मशान भूमि में रक्खेंगे तब किसके कुल को लज्जा लगेगी?

१६७

कबीर कहता है, बहुत से लोगों की मर्यादा का ध्यान रखते हुए ही ऐ पागल, तू (संसार-सागर में) डूब जायगा। तेरे पड़ोसी (मनुष्य) के साथ जो कुछ हुआ है वह तू अपने संबंध में भी जान ले। (वह मर गया, तू भी उसी तरह मर जायगा!)

१६८

कबीर कहता है, (सब से) अच्छी तो मधुकरी (भिक्षा) है जिसमें अनेक प्रकार का अन्न मिला हुआ है। उस पर किसी का दावा तो है नहीं। (वह ईश्वर की दी हुई है जिसका अखिल शून्य में) बड़ा भारी देश है, बड़ा भारी राज्य है।

१६९

कबीर कहता है, जो (अपने पास विषय-वासना को) आग रखता है, उसे जलना होता है किंतु जो (विषय-वासना की) आग से रहित है वह जलने की शंका से बिलकुल स्वतंत्र है। जो लोग इस आग से रहित हैं वे इंद्र को भी रंक गिनते हैं। (अर्थात् उनके सामने इंद्र का वैभव भी तुच्छ है।)

१७०

कबीर कहता है, चौपाल के सामने ही (शरीर ही में हरि रूपी) सरोवर भरा हुआ है किंतु उसका जल कोई पी नहीं सकता। ऐ कबीर, तूने बड़े भाग्य से वह सरोवर पा लिया है। तू भर भर कर उस (ब्रह्म-द्रव) का पान कर।

१७१

कबीर कहता है, जिस प्रकार प्रभात कालीन तारे अस्त होते हैं, उसी भाँति तेरा शरीर भी समाप्त हो जायगा। केवल ये दो अक्षर ('रा' और 'म') नष्ट नहीं होंगे जिनका आधार कबीर ने ले रक्खा है।

१७२

कबीर कहता है, यह काठ की कोठी (शरीर) है जिसमें दशों दिशाओं (दस इंद्रियों) से आग लग रही है। उस आग से पंडित गण (जिन्हें सांसारिक ज्ञान है वे तो) जल कर मर गए और मूर्ख लोग (जो पंडितों के ज्ञान से विजित नहीं हुए) जलने से बच रहे।

१७३

कबीर कहता है, तू अपने हृदय का संशय दूर कर दे और पुस्तक-ज्ञान को (जल में) बहा दे। बावन अक्षरों की परीक्षा कर [उनमें से दो अक्षर ('रा' और 'म' अथवा 'ह' और 'रि') चुन कर] हरि के चरणों में अपना चित्त लगा दे।

१७४

कबीर कहता है, यदि करोड़ों असंत भी मिल जायँ तो संत अपने 'संत-गुण' नहीं छोड़ता जिस प्रकार सर्पों के द्वारा घिरे रहने पर भी चंदन अपनी शीतलता नहीं छोड़ता।

१७५

कबीर कहता है, जब मैंने ब्रह्म-ज्ञान प्राप्त किया तो मेरा मन शीतल हो गया। जो ज्वाला संसार को जलाती है, वही (हरि के) सेवकों के लिए (शीतल) जल के समान है।

१७६

कबीर कहता है, सृष्टि-कर्त्ता का खेल कोई नहीं जान सकता। या तो उसे स्वयं स्वामी (ब्रह्म) समझता है, या उसका दास जो उसकी सेवा में उपस्थित रहता है।

१७७

कबीर कहता है, अच्छा हुआ जो मुझे संसार से भय उत्पन्न हो गया और मुझे सांसारिक दिशाएँ भूल गईं। मैं ओले की तरह गल कर पानी हो गया और ढुलक कर (ब्रह्म-ज्ञान के) किनारे से जा मिला।

१७८

कबीर कहता है, (ब्रह्म ने) थोड़ी सी धूल एकत्रित कर शरीर की पुड़िया बाँध दी है। यह शरीर तो केवल चार दिनों का तमाशा ही है फिर अंत में वही धूल की धूल है।

१७९

कबीर कहता है, सूर्य और चंद्र की सृष्टि के साथ संसार के सभी शरीरों की उत्पत्ति हुई। किंतु बिना गुरु और गोविंद के दर्शन के सब शरीर फिर पलट कर धूल ही हो गए।

१८०

'जहाँ निर्भयता है, वहाँ भय नहीं है और जहाँ भय है वहाँ हरि (का निवास)

नहीं है।' यह वाक्य कबीर ने विचार कर ही कहा है। ऐ संतो, इसे (कान से न सुन कर) मन से सुनो।

१८१

कबीर कहता है, जिन्होंने (ब्रह्म को) कुछ नहीं जाना, उनकी (सांसारिक) सुख के कारण नींद दूर हो गई किंतु हमने जो उसके रहस्य को समझा, तो हमारे सिर पर तो पूरी बला ही सवार हो गई। अर्थात् मैं प्रभु के विरह में व्याकुल होकर तड़पने लगा हूँ और मेरी नींद भी (इस दुःख से) दूर हो गई है।

१८२

कबीर कहता है, (संसार की) मार खाकर (आर्त्त जनों ने ईश्वर को) बहुत पुकारा और पीड़ित हुए लोगों ने पीड़ा से (ईश्वर को) दूसरी भाँति ही पुकारा किंतु कबीर को तो मर्म-स्थल की चोट लगी है और वह उसी व्यथा से अपने स्थान पर ही स्थित है। (वह किसी को किसी भाँति भी पुकारने नहीं गया।)

१८३

कबीर कहता है, (सभी मनुष्य) नोकदार भाले की चोट खाकर साँसें भरने लगते हैं। किंतु जो शब्द की चोट सहन कर सकता है, ऐसे ही गुरु का मैं दास हूँ।

१८४

कबीर कहता है, ऐ मुल्ला, तू (मस्जिद की) मुड़ेर पर क्या चढ़ता है! (और बाँग देता है!) स्वामी बहरा नहीं है। जिसे प्रसन्न करने के लिए तू बाँग देता है, उसे तू अपने हृदय के भीतर ही देख।

१८५

ऐ शेख़, तू धैर्य रहित होकर हज के लिए क्या काबे जाता है? कबीर कहता है, जिसका हृदय विशुद्ध नहीं है, उसे ख़ुदा कहाँ मिल सकता है?

१८६

कबीर कहता है, तू अल्लाह की बंदगी (वंदना) कर जिसके स्मरण करने से दुःख नष्ट हो जाते हैं। फिर तो हृदय ही में स्वामी प्रकट हो जाते हैं और जलती हुई आग बुझ कर नष्ट हो जाती है। (वासनाओं की प्रचंड आग बुझ जाती है।)

१८७

कबीर कहता है, तू शक्ति से ज़ुल्म करता है और उसे 'हलाल' का नाम देता है। जब (धर्मराज का) कार्यालय तेरे कर्मों का लेखा माँगेगा तब तेरी क्या दशा होगी?

१८८

कबीर कहता है, खिचड़ी (जैसा साधारण भोजन) ही ख़ूब खाना चाहिए उसी में नमक का अमृत है। स्वादिष्ट (अथवा ढूँढ़ी हुई) रोटी के लिए कौन गला कटावे?

१८९

कबीर कहता है, गुरु-प्राप्ति की अनुभूति तभी समझना चाहिए जब मोह और

शरीर की जलन मिट जाय। जब हर्ष और शोक हृदय को नहीं जला सकेंगे तब ईश्वर स्वयं ही (तुझ में) प्रकट हो जावेंगे।

१६०

कबीर कहता है, राम का नाम लेने में भी एक रहस्य है और उस रहस्य में एक यही विचार होना चाहिए कि क्या लोग उसी 'राम' का उच्चारण करते हैं जो यह समस्त कौतुक रचने वाला ब्रह्म है? (या उस 'राम' का उच्चारण करते हैं जो दशरथ का पुत्र है?)

१६१

कबीर कहता है, तुम 'राम' 'राम' का उच्चारण तो करो किंतु इस उच्चारण करने में भी विवेक की आवश्यकता है। वह 'राम' एक है जो अनेक में व्याप्त होकर फिर अपने एक रूप में लीन हो गया।

१६२

कबीर कहता है, जिस घर में साधुओं की सेवा नहीं होती, वहाँ हरि की सेवा भी नहीं होती। वे घर श्मशान की भाँति हैं और उनमें भूत निवास करते हैं।

१६३

कबीर कहता है, जिस समय सच्चे गुरु ने (शब्द का) बाण मारा, उस समय गूँगा (ईश्वरानुभूति में मौन व्यक्ति) तो बहरा (सांसारिक शब्दों की ओर ध्यान न देने वाला) हो गया और बहरा (ईश्वरीय संदेश न सुनने वाला) कान सहित (गुरु के उपदेश को सुनने वाला) हो गया। चलने वाला (संसार के तीर्थों का पर्यटन करने वाला) भी पंगुल (एक ही स्थान पर स्थिर) हो गया।

१६४

कबीर कहता है, सतगुरु रूपी शूरवीर ने (शब्द का) जो एक बाण मारा तो उसके लगते ही (शिष्य) पृथ्वी पर गिर पड़ा (स्थिर हो गया) और उसके हृदय में (ईश्वर के स्मरण का) छिद्र हो गया।

१६५

कबीर कहता है, आकाश की निर्मल बूँद (आत्मा) भूमि पर पड़ने के कारण (माया के लिपटने से) विकार-युक्त हो गई। उसी प्रकार यह मानवता बिना सत्संग के भट्ठे की (जली हुई) धूल हो गई।

१६६

कबीर कहता है, आकाश की निर्मल बूँद (आत्मा) को इस भूमि ने अपने में मिला लिया। उसे अलग करने के लिए अनेक चतुर (आचार्य) परिश्रम से पच गए किंतु वह अलग न हो सकी।

१६७

कबीर कहता है, मैं हज करने के लिए काबे जा रहा था कि बीच ही में ख़ुदा

मिल गया। वह स्वामी मुझसे लड़ पड़ा और कहने लगा "तुझे गो-वध की आज्ञा किसने दी थी?"

१९८

कबीर कहता है, मैं हज के लिए कितने बार काबे हो आया किंतु हे स्वामी, मैं नहीं जानता मुझ में क्या दोष है कि पीर (गुरु) मुझसे मुख नहीं बोलता!

१९९

कबीर कहता है, जो तू शक्ति पूर्वक जीव को मारता है, उसे तू हलाल (धर्म-संगत) कहता है किंतु जब दैव अपना दफ़्तर (हिसाब) निकालेगा तब तेरा क्या हाल होगा?

२००

कबीर कहता है, तूने जो ज़बर्दस्ती की है वह तो ज़ुल्म है। ख़ुदा तुझसे इसका जवाब तलब करेगा और जब (ईश्वरीय) हिसाब में तेरा लेखा निकलेगा तब तू मुँह पर ही बार बार मार खायगा।

२०१

कबीर कहता है, यदि हृदय में शुद्धता है तो (जीवन का) लेखा देना सुखकर मालूम होता है। और तब (ईश्वर)-दरबार में उस सच्चे व्यक्ति का कोई पल्ला पकड़ने वाला नहीं है।

२०२

कबीर कहता है, पृथ्वी और आकाश इन दोनों से बरी होकर तू बंधन-हीन हो जा। इन्हीं दोनों के संशय में षट्-दर्शन और चौरासी सिद्ध पड़े हुए हैं।

२०३

कबीर कहता है, मुझ में मेरा कुछ भी नहीं है, जो कुछ भी मुझमें है, वह तेरा ही है। अतः तुझे तेरी वस्तु सौंपते हुए मेरी क्या हानि होती है?

२०४

कबीर कहता है, तेरे ध्यान में 'तू' 'तू' शब्द का उच्चारण करते हुए मैं 'तू' ही में परिवर्तित हो गया, अब मुझमें 'अहम्' नहीं रह गया। इस प्रकार जब अपना और पराया मिट गया तब देखता हूँ वहाँ 'तू' ही 'तू' दृष्टिगत होता है।

२०५

कबीर कहता है, विकार की ओर देखते हुए और झूठी आशा करते हुए, कोई भी मनोरथ पूरा नहीं हो सका और अंत में (मनुष्य) निराश होकर इस संसार से उठकर चला गया।

२०६

कबीर कहता है, जो हरि का स्मरण करता है, वही संसार में सुखी है। जिस स्थान पर सृष्टिकर्त्ता उसे रखता है, वह उसी स्थान पर रहता है, यहाँ वहाँ नहीं डोलता फिरता।

२०७

कबीर कहता है , मेरे सतगुरु ने मुझे कठिन पीड़ा से छुड़ा लिया। पूर्व जन्म के विचारों का जो लेख लिखा हुआ था, वही इस जन्म में प्रकट हो गया।

२०८

कबीर कहता है, (ईश्वराधन या सत्कर्म करने का विचार) टालते-टालते दिन (जीवन) समाप्त हो गया और ब्याज (कर्म-भोग) बढ़ता ही गया। न तो मैंने हरि का भजन ही किया और न ईश्वर के आदेशानुसार कार्य ही किया (न उसका पत्र ही फाड़कर पढ़ा) और मेरा काल मेरे निकट पहुँच गया।

२०९

कबीर कहता है, (संसार रूपी) कुत्ते के भौंकने से मेरा (मन रूपी) हरिण उठकर (कर्म-क्षेत्र में) पीछे ही भागना चाहता था किंतु मैंने आचारवेत्ता सतगुरु को प्राप्त कर लिया जिन्होंने मुझे इस (संसार रूपी कुत्ते से) छुड़ा लिया।

२१०

कबीर कहता है, यह समस्त पृथ्वी तो साधुओं की है किंतु उसमें चोर गढ़े खोद-कर बैठे हुए हैं। जब साधुओं को पृथ्वी का भार नहीं व्यापता (तो उन चोरों का भार उन्हें कैसे कष्टकर होगा ?) इस प्रकार उन साधुओं को तो लाभ ही लाभ है। (चाहे उसमें चोर बैठें या न बैठें।)

२११

कबीर कहता है, चावल के लिए उसकी भूसी को भी मूसल की मार खानी पड़ती है। कुसंग में बैठने वाले सत्संगियों से यह बात धर्मराज अवश्य पूछेंगे।

२१२

मित्र त्रिलोचन कहते हैं—हे नामदेव, तुम माया में मोहित हो गए हो। तुम दर्ज़ी के काम में ही क्यों व्यस्त हो गए हो, हृदय में राम (की अनुभूति) क्यों नहीं लाते ?

२१३

नामदेव त्रिलोचन से कहते हैं—मैं मुख से राम का स्मरण करता हूँ। मेरे हाथ पैर तो (दर्ज़ी का) काम करते हैं किंतु मेरा हृदय निरंजन के लिए (सुरक्षित) है।

२१४

कबीर कहता है, हमारा कोई भी नहीं है, और हम भी किसी के नहीं हैं। जो इस समस्त (सृष्टि की) रचना का रचयिता है, उसीमें हम समायेंगे।

२१५

कबीर कहता है, मेरा आटा (उज्ज्वल आत्म-तत्व) कीचड़ (संसार के माया-मोह) में गिर पड़ा। मेरे हाथ कुछ भी नहीं आया। आटे (आत्म-तत्व) को पीसते पीसते (संसार में बिखेरते हुए) मैंने जो थोड़ा-सा खा लिया है (हृदयंगम कर लिया है) वही मेरे साथ रहेगा।

२१६

कबीर कहता है, मेरा मन (संसार की) सभी बातें तो जानता है किंतु वह जानते हुए भी अवगुण (पाप) करता जाता है। जब हाथ में दीपक लिए हुए कुएँ में गिरता हूँ तो फिर कुशलता कहाँ रही ?

२१७

कबीर कहता है, जब मेरी प्रीति सुजान (सद्गुरु) से लगी तो मूर्ख लोग मुझे प्रेम करने से मना करते हैं। जो अपने प्राणों की चिंता करता है उससे टूटी हुई प्रीति फिर कैसे जुड़ सकती है ? (अर्थात् जब मेरी प्रीति इन मूर्खों से टूट गई तो मैं इनसे फिर प्रेम कर इनकी बात कैसे मान सकता हूँ ?)

२१८

कबीर कहता है, तू कोठे और मंडपों से प्रेम कर उन्हें सँवारते हुए क्यों मरा जाता है ? तेरा काम तो साढ़े तीन हाथ या अधिक से अधिक पौने चार हाथ ही से चल जायगा। (अर्थात् तेरे लिए साढ़े तीन हाथ या पौने चार हाथ की समाधि ही पर्याप्त है।)

२१६

कबीर कहता है, जो मैं चाहता हूँ, वह (ईश्वर) नहीं करता और मेरे चाहने से होता ही क्या है ? हरि तो अपना मन-चाहा ही करता है चाहे वह मेरे मन में हो या न हो।

२२०

वही (ईश्वर) चिंता कराता है और वही निश्चिंत भी कर देता है। हे नानक, उसी (ब्रह्म) की आराधना करनी चाहिए जो सबका सार-रूप कार्य करता है।

२२१

कबीर कहता है, तू राम की ओर सतर्क नहीं हो सका और लालच ही में फिरता रहा। पाप करते हुए तू मर गया और तेरी (संसार में रहने की) अवधि क्षण-मात्र में पूरी हो गई।

२२२

कबीर कहता है, यह कच्ची काया तो कच्ची धातु से बना हुआ टोंटीदार लोटा (बधना) है। यदि तू इसे साबित (संपूर्ण) रखता है तो राम का भजन कर नहीं तो बात बिगड़ी जाती है।

२२३

कबीर कहता है, तू 'केशव' 'केशव' की रट लगाये ही जा। व्यर्थ ही संसार में न सो जा। रात-दिन के रटते रहने से कभी तो (वह केशव) तेरी पुकार सुनेगा !

२२४

कबीर कहता है, यह शरीर ही कजली बन है, इसमें मन ही मदमत्त हाथी है। ज्ञान-रत्न ही अंकुश है और कोई बिरला संत ही इस (हाथी) का महावत है।

२२५

कबीर कहता है, राम-रूपी रत्न की गुदड़ी का मुख तू किसी पारखी के आगे ही खोल। यदि कभी कोई सच्चा ग्राहक (संत) मिल जायगा तो वह अच्छे दामों से (आध्यात्मिक उपदेश से) उसे मोल ले लेगा।

२२६

कबीर कहता है, तूने राम रूपी रत्न को तो पहिचाना ही नहीं और अपने परिवार के अनेक लोगों का पोषण करता रहा। तू यही धंधा करते हुए मर गया और (परिवार के) बाहर शब्द भी (ज़रा भी तहलका) नहीं हुआ।

२२७

कबीर कहता है, (ऐ मनुष्य) तू तो गड़े से उठाई हुई मिट्टी के बर्तन की तरह है जो क्षण क्षण में नष्ट होता जा रहा है। (तेरा) मन फिर भी (संसार का) जंजाल नहीं छोड़ता और यमने (तेरे दरवाज़े आकर) अपना नगाड़ा बजा दिया (कि अब संसार छोड़ने का समय आ गया।)

२२८

कबीर कहता है, राम एक वृक्ष की तरह है और वैरागी उसमें लगे हुए फल की तरह है। जिन साधुओं ने (धार्मिक) वाद-विवाद छोड़ दिया है वे उस वृक्ष की छाया के समान हैं।

२२९

कबीर कहता है, तू (राम नाम रूपी) ऐसा बीज (अपने हृदय में) बो जो बारह महीने फले। उसमें (शांति की) शीतल छाया हो। (वैराग्य का) घना फल हो और उसमें (सत्प्रवृत्ति रूपी) पक्षी सदैव क्रीड़ा करते रहें।

२३०

कबीर कहता है, दान देने वाला तो एक सुंदर वृक्ष है, दया ही उस वृक्ष का फल है, और उपकार ही उस तरु पर चढ़ने वाली जीवंतिनी लता है (जिसमें प्रेम का मधुर रस भरा हुआ है।) उस वृक्ष के अच्छी तरह से फले हुए फलों (गुणों) को लेकर पक्षी गण (साधु संत जन) दूर दूर व्यापार करने (नाम का प्रचार करने) के लिए जाते हैं!

२३१

कबीर कहता है, साधु-संग की प्राप्ति यदि तुम्हारे भाग्य में लिखी है तो तुम्हें मुक्ति जैसे पदार्थ की प्राप्ति होगी और (संसार-सागर रूपी) विषम घाट में कोई अड़चन न होगी।

२३२

कबीर कहता है, यदि एक घड़ी, आधी घड़ी या आधी से भी आधी घड़ी में भक्तों के साथ गोष्ठी की जायगी तो लाभ ही लाभ होगा।

२३३

कबीर कहता है, भंग, मछली और सुरा-पान का जो जो लोग उपभोग करते हैं, वे तीर्थ, व्रत तथा नियमादि का पालन करते हुए भी सभी रसातल को चले जायँगे।

२३४

यदि तुम्हारा प्रियतम (प्रभु) तुम्हारे हृदय में है तो अपने नेत्र नीचे की ओर ही किए रहो। (किसी दूसरी वस्तु के देखने की आवश्यकता नहीं है।) अपने प्रियतम से ही सब प्रकार की रस-क्रीड़ा करो और यह क्रीड़ा किसी अन्य को न देखने दो।

२३५

हे प्रियतम (प्रभु), आठ पहर और चौंसठ घड़ी, मेरा हृदय तुम्हारी ओर ही देखता रहता है। जब मैं सभी वस्तुओं में ऐ प्रियतम, तुम्हीं को देखता रहता हूँ तो फिर मैं अपने नेत्र नीचे क्यों करूँ?

२३६

हे सखी, सुनो। मेरा हृदय प्रियतम में निवास करता है अथवा प्रियतम ही मेरे हृदय में निवास करता है। मुझे तो हृदय और प्रियतम की अलग पहिचान ही नहीं होती कि मेरे शरीर में मेरा हृदय है या मेरा प्रियतम!

२३७

कबीर कहता है, वह मन ही जगत का गुरु है किंतु भक्तों का गुरु नहीं। (हो कैसे सकता है?) वह तो चारों वेदों में उलझ-सुलझ कर ही सड़-गल गया है।

२३८

हरि तो खांड की तरह है जो (संसार रूपी) रेत में बिखर गया है। (मदोन्मत्त मन रूपी) हाथी उसे चुन नहीं सकता। कबीर कहता है, गुरु ने मुझे अच्छी युक्ति बतला दी है कि मैं (सूक्ष्म और सहज शक्ति से) चींटी बन कर उस खांड को खा लूँ।

२३९

कबीर कहता है, यदि तेरे हृदय में प्रेम करने की साध है तो अपना सिर काट कर छिपा ले, (किसी के सामने अपने बलिदान का ढिंढोरा मत पीट) प्रसन्न होकर सहज भाव से खेलते-खेलते तू ईश्वरानुभूति का आवेश कर—फिर आगे जो कुछ होना होगा, वह तो होगा ही।

२४०

कबीर कहता है, यदि तेरे हृदय में प्रेम करने की साध है तो उस परिपक्व (ब्रह्म) के साथ क्रीड़ा कर। कच्ची सरसों को (कोल्हू में) पेर कर न खली होती है न तेल। अर्थात् संसार के देवी-देवताओं से प्रेम कर न युक्ति मिलती है न सांसारिक ऐश्वर्य प्राप्त होता है।

२४१

अंधे की तरह खोजता हुआ तू इधर उधर घूम-फिर रहा है और सच्चे संत

को भी नहीं पहिचानता। हे नामदेव कहो, भक्त पाये बिना भगवान कैसे पाये जा सकते हैं ?

२४२

हरि के समान (बहुमूल्य) हीरा छोड़ कर जो लोग अन्य (देवी-देवताओं) की आशा करते हैं वे लोग अवश्य दोज़ख़ में पड़ेंगे, यह रैदास सत्य कहता है।

२४३

कबीर कहता है, यदि तुम गृहस्थाश्रम में रहते हो तो धर्म का पालन करो नहीं तो वैराग्य धारण कर लो। जो वैराग्य लेकर (गृहस्थाश्रम के) बंधन में पड़ता है, वह बड़ा अभागा है।

परिशिष्ट (ग)

कोष-समुच्चय

१. रूपक कोष

[अकारादि क्रम से]

संकेताक्षर : सि०—सिरी। ग०—गउडी। आ०—आसा। गू०—गूजरी। सो०—सोरठि। ध०—धनासरी। ति०—तिलंग। सू०—सूही। बि०—बिलावलु। गौं०—गौंड़। रा०—रामकली। मा०—मारू। के०—केदारा। भै०—भैरउ। ब०—बसंतु। सा०—सारंग। बिभा०—बिभास। स०—सलोक।

१ अन्न का रूपक (स० ६८)

अन्न-राशि की रक्षा = दूसरे के सात्विक भाव पर दृष्टि।

घर का खेत = निज का आत्म-तत्व।

२ आँधी का रूपक (ग० ४३)

आँधी = ज्ञान।

टट्टी = भ्रम।

थूनी = द्विविधा।

बलेंडा = मोह।

छानी = तृष्णा।

भाँडा = दुर्मति।

जल = अनुभूति।

प्रकाश = सहज।

भानु = ईश्वरीय ज्योति।

३ आटे का रूपक (स० २१६)

आटा = सात्विक प्रवृत्ति।

कीचड़ = संसार का माया-मोह।

पीसना = साधना करना।

चबाना = हृदयंगम करना।

४ आम का रूपक (स० १३४)

आम = सिद्धि।

फल = कर्म-फल।

स्वामी = ब्रह्म।

बीच ही में खाना = संसार के आकर्षण में लिप्त होना।

५ आरती का रूपक (बिभा० ५)

तेल = तत्व।

बत्ती = नाम।

ज्योति = आत्म-ज्ञान।

प्रकाश = जगदीश की कांति।

पंच शब्द = अनाहत नाद।

६ ओले का रूपक (स० १७७)

ओला = जीवात्मा।

पानी = परमात्मा।

कूल = ब्रह्म-सामीप्य।

७ कसौटी का रूपक (स० ३३)

कसौटी = राम।

खोटी धातु = झूठा मनुष्य।

सच्ची धातु = सच्चा संत।

८ काजल की कोठरी का रूपक (स० २६)

काजल की कोठरी = संसार।

अंधा = मनुष्य।

निकलने वाला = संत।

९ **किसान का रूपक (सू० ४)**
किसान = जीवात्मा।
दुर्ग = शरीर।
रक्षक = पंच प्राण।
कैफ़ियत पूछना = कष्ट देना।
भूमि जोतना-बोना = स्वार्थ और परमार्थ के कर्म-फल।
पटवारी = मन।
नीति = प्रवृत्ति।
नौ जमादार = नव द्वार।
दस मुंसिफ़ = दस इंद्रियाँ।
प्रजा = भक्ति-भाव।
डोरी = बुद्धि।
बेगार = भ्रम में भटकना।
बहत्तर कोठे वाला घर = शरीर।
पुरुष = अहंकार।
न्यायाधीश = धर्मराज।
देना-पावना = पाप और पुण्य।
गुरु = विवेक।

१० **कुत्ते का रूपक (स० ७४)**
कुत्ता = कबीर।
रस्सी = राम का नाम।
दूसरा रूपक
कुत्ता = असंत।
हरिण = संत।
छुड़ाना = कुसंगति को दूर करना।

११ **कुम्हार का रूपक (आ० १६)**
कुम्हार = ब्रह्म।
मिट्टी = शरीर मनुष्य।
बानी (कांति) = शरीर की दीप्ति।
मोती-मुकताहल = ऐश्वर्य और वैभव।
दूसरा रूपक (बिभा० ३)
कुम्हार = ब्रह्म।
मिट्टी का भांडा = जीव-जंतु।
मिट्टी = प्रकृति, शरीर।

१२ **कोठी का रूपक (स० १७२)**
काठ की कोठी = शरीर।
दसों दिशा = दस इंद्रियाँ।
आग = वासना।
पंडित = अहंकारी।
मूर्ख = पुस्तक-ज्ञान से रहित सरल मनुष्य।

१३ **खांड का रूपक (स० २३८, रा० १२)**
खांड = हरि।
रेत = पृथ्वी, माया।
बिखरना = व्याप्त होना।
हाथी = मतवाला मन।
कीटी = सूक्ष्म ज्ञान।
खाना या चुनना = हृदयंगम करना

१४ **गगरी का रूपक (स० ७३)**
जल भरी गगरी = मनुष्य शरीर।
फूटना = मृत्यु होना।
बीच ही में लूटा जाना = माया-मोह में पड़ना।

१५ **गाँव का रूपक (मा० ७)**
गाँव = शरीर।
महतो = आत्मा।
पाँच किसान = पाँच इंद्रियाँ।
पटवारी = चैतन्य मन।
कचहरी = (दरबार) = धर्मराज के समीप।
बकाया (लगान) = कर्म-भोग।
खेत—मन।

१६ **गाय का रूपक (ब० ८)**
सुरही (गाय) = आदत।
पूँछ = वासना।
बाल = इच्छा-समूह।

१७ गूँगे का रूपक (ग० १८)

गूँगा = ब्रह्मानुभवी।

शक्कर = ब्रह्म-सुख।

मन मानना = संतुष्ट होना।

१८ चंदन का रूपक (स० ११)

चंदन = संत।

ढाक-पलास = असंत।

१९ चक्की का रूपक (ब० ८)

चक्की = विषय-वासना।

आटा = इंद्रिय-सुख।

चक्की का चीथड़ा = व्याधियाँ।

२० चक्रवाक का रूपक (स० १२६)

संखम (चक्रवाक) = जीव।

झूरि (कृश) = सात्विक ज्ञान से हीन।

रात्रि = जीवन।

देवल (मंदिर) = तीर्थ-स्थान।

देश = परम पद।

सूर्य = ब्रह्म-ज्ञान।

२१ चोर का रूपक (ग० ७३)

चोर = माया।

कोठड़ी = शरीर।

अनूप वस्तु = आत्मा।

कुंजी-कुलुफ़ = प्राण।

स्वामी = मन।

पंच पहरुआ = पाँच इंद्रियाँ।

दीपक = आत्म-तत्व।

नव घर = शरीर के नव द्वार।

दूसरा रूपक (स० २०)

चोर = माया।

चुराई हुई वस्तु = जीव।

हाट = योनि।

तीसरा रूपक (ब० ४)

चोर = कामदेव।

निवास-स्थान = तन और मन।

रत्न = ज्ञान।

२२ चौपड़ का रूपक (सू० ४)

चौपड़ = जीवन।

पाँसा = मन का भाव।

हारना = ईश्वर से विमुख होना।

२३ जुलाहे का रूपक (आ० ३६)

जुलाहा (कोरी) = ईश्वर।

ताना = समस्त संसार।

करघा = पृथ्वी और आकाश।

ढरकी = चंद्र और सूर्य।

२४ जोगी का रूपक (ग० ५३)

जोगी = जीवात्मा।

कर्णी = श्रुति।

मुद्रा = स्मृति।

खिंथा = क्षितिज।

गुफा = शून्य, ब्रह्म-रंध्र।

सिंगी = ब्रह्मांड।

बटुवा = पृथ्वी-खंड।

भस्म = संसार।

त्राटक = भूत, वर्तमान और भविष्य।

तूँबा = मन और पवन।

किंगुरी = अनाहत नाद।

दूसरा रूपक (आ० ७)

बटुआ = शरीर।

आधारी = शरीर के बहत्तर कोठे।

भीख = नवों खंड की पृथ्वी।

खिंथा = ज्ञान।

सूई = ध्यान।

तागा = शब्द।

मिरगाणी (चंदन) = पंच तत्व।

मार्ग = गुरु-पंथ।

फावड़ी = दया।

धूनी = काया।

अग्नि = ज्ञान-दृष्टि।
त्राटक = चारों युग।
योग की सामग्री = राम का नाम।
निशान (लक्ष्य-बेध) = सिद्धि।

तीसरा रूपक (रा० ७)

मुद्रा = मोनि (पिटारी)।
झोली = दया।
पत्रका (हाथ का आभूषण) = विचार।
खिंथा = शरीर।
आधारी = नाम।
भस्म = बुद्धि।
सिंगी = आत्मा का नाद।
नगरी = शरीर।
किंगुरी = मन।
बाड़ी (उपवन) = दया और धर्म।

चौथा रूपक (स० ४८)

खिंथा = शरीर।
जल कर कोयला होना = संयम से शरीर को नष्ट करना।
खापरु = कपाल।
फूटना = दशम द्वार से प्राण निकलना।
विभूति = जीवन की समाप्ति।

२५ थैली का रूपक (स० २२५)

थैली = मुख।
रत्न = राम।
पारखी = संत।
ग्राहक = साधु।
मोल = सत्संगति और आत्म-त्याग।

२६ दही मथने का रूपक (आ० १०)

मथने की वस्तु = हरि।
मटकी = शरीर।
रस = शब्द।
अमृत (नवनीत) = तत्व-ज्ञान।

दूसरा रूपक (सो० ५)

बिलोने वाली = आत्मा।
स्वामी = राम।
दूध का समूह = वेद।
बर्तन = समुद्र।
तक्र = सुख।

तीसरा रूपक (स० १८, १६)

मटकी (डोलनी) = माया।
मथनेवाला = पवन (प्राणायाम) या ब्रह्म।
मक्खन = ब्रह्म-ज्ञान।
छाछ = मोह, ममता।

२७ दीपक का रूपक (आ० ६, ११)

दीपक = जीवात्मा।
बत्ती = जीवन।
तेल = आयु।

२८ दुर्ग का रूपक (भै० १७)

दुर्ग = शरीर।
दुहरा प्राचीर = अन्नमय और प्राणमय कोष।
तिहरी खाई = मनोमय, ज्ञानमय और विज्ञानमय कोष।
रक्षक = पाँच तत्व, पच्चीस प्रकृतियाँ और मोह, मद तथा मत्सर के साथ प्रबल माया।
किवाड़ = काम।
दरवान = सुख और दुःख।
दरवाज़े = पाप और पुण्य।
सेनापति = द्वंद्व करने वाला क्रोध।
दुर्गपति = मन।
कवच = स्वाद।
शिरस्त्राण = ममता।
कमान = कुबुद्धि।
तीर = तृष्णा।

दुर्ग की विजय का रूपक

पलीता = प्रेम ।
हवाई (तोप) = आत्मा ।
गोला = ज्ञान ।
अग्नि = ब्रह्माग्नि ।
अस्त्र = सत्य और संतोष ।
नीति = साधु-संगति और गुरु-कृपा ।
अविनाशी राज्य = अनंत जीवन ।

२६ नट का रूपक (आ० ११)

नट = जीवात्मा ।
मँदल (बाजा) = साँस ।

३० नाव का रूपक (स० ३५)

जर्जर नौका = शरीर ।
छिद्र = शिथिल इंद्रियाँ ।
हलके व्यक्ति = पवित्रात्मा ।
भार से लदे हुए व्यक्ति = पापी ।

दूसरा रूपक (स० ३६)

नाव = शरीर ।
समुद्र = संसार ।

तीसरा रूपक (स० ६७)

जर्जर नौका = शरीर ।
डूबना = विषय-वासना में लीन होना ।
उद्धार पाना = विषय से मुक्ति ।
लहर = गुरु के गुण ।
नौका से उतरना = शरीर के आकर्षण को छोड़ना ।

३१ निर्द्वंद्व आदमी का रूपक (स०४२)

घर में आग जलाने वाला = विषय-भोग को छोड़ने वाला ।
पाँच लड़के = पाँच इंद्रियाँ ।

३२ न्यायालय का रूपक (सू० ३)

शासनाधिकार = जीवन ।
लेखा = कर्म-भोग ।
बुलानेवाले = यम के दूत ।
दीवान = धर्मराज ।
फ़रमान (आज्ञा-पत्र) = मृत्यु का समय ।
प्रार्थना = भक्ति ।
ख़र्च = सात्विक वृत्तियों की हानि ।

३३ पके हुए फल का रूपक (स०३०)

पके हुए फल = वृद्ध मनुष्य ।
पृथ्वी पर गिरना = मृत्यु को प्राप्त होना ।
डार = मनुष्य-योनि ।

३४ पनिहारी का रूपक (ग० ५०)

पनिहारी = आत्मा ।
खूहड़ी (कुआ) = शरीर ।
लाजु (रस्सी) = इंद्रियाँ ।

३५ परदेसी का रूपक (स० ४७)

परदेसी = संसार से विरक्त ।
घाघरै (वस्त्र) = शरीर ।
आग = माया-मोह ।
खिंथा = शरीर ।
तागा = आत्मा ।

३६ पारस का रूपक (स० ७७)

पारस और चंदन = संत ।
सुगंधि = भक्ति ।
लोह-काठ = असंत ।
निर्गंध = सद्गुणों से रहित ।

३७ प्रेम का रूपक (आ० ३०)

प्रियतम = हरि ।
बहुरीआ = आत्मा ।
सेज = शरीर ।
आत्म समर्पण = मुक्ति ।

३८ बंदी का रूपक (सो० ५)

बंदी = आत्मा ।
तौक और बेड़ी = माया ।
घर घर = योनियाँ ।

३९ बनजारे का रूपक (ग० ४९)

बनजारा = समस्त संसार।
नायक = राम।
बैल = पाप और पुराय।
पूँजी = पवन (प्राणायाम)।
जगाती = काम और क्रोध।
बटमार = मन की तरंग।
दान निबेरने वाले = पंच तत्व।

४० बाँस का रूपक (स० १२)

बाँस = अहंकारी।
बड़ाई = अहंकार।
चंदन = संत।
सुगंधि = भक्ति।

४१ बाजीगर का रूपक (सो० ४)

बाजीगर = ब्रह्म।
डंक (नगाड़ा) = विभूति।
दर्शक = संसार।
स्वाँग = सृष्टि।

४२ बीज का रूपक (स० २२९)

बीज = राम-नाम।
बारह महीने = सदैव, चिरकाल।
फलना = सिद्धि देना।
शीतल छाया = शांति।
फल = सिद्धि।
पच्छी = संत।

४३ बूँद का रूपक (स०१६५)

बूँद = ब्रह्म की पहिचान।
भूमि = माया, मोह।

४४ भाठी का रूपक (सि० २)

भाठी = गगन (ब्रह्म-रंध्र)।
सिङिआ } इडा और पिंगला।
चुङआ }
कनक-कलश = शरीर।
प्याला = पवन (प्राणायाम)।
रसायन = राम (ब्रह्म)।

दूसरा रूपक (ग० २७)

भाठी = गगन (ब्रह्म-रंध्र)।
मतवाला = संत।
रस = राम।
कलालिनि = 'सहज' शक्ति।
आनंद = ब्रह्मानुभूति।

तीसरा रूपक (के० ३)

भाठी = ब्रह्म-रंध्र।
कलवारिनि = आत्मा।
पीने वाला = संत।
नगरी = शरीर।
नव दरवाजे = नवद्वार।
दसवाँ द्वार = शून्य-रंध्र।
नशे में अटपट चाल = वेद विहित मार्ग से अलग स्वतंत्र मार्ग।

चौथा रूपक (रा० २)

भाठी = संसार।
गुड़ = ज्ञान।
महुआ = ध्यान।
नली = सुषुम्णा नाड़ी।
पीनेवाला = संत।
संपुट = दोनो लोक।
लकड़ी = काम-क्रोध।

४५ मक्खी का रूपक (स० ६८)

मक्खी = पापी।
चंदन = भक्ति।
दुर्गंधि = वासना का आकर्षण।

४६ मछली का रूपक

मछली = जीवात्मा।
थोड़ा जल = संसार।
धीवर = काल।
जाल = मृत्यु-पाश।

समुद्र = गुरु या ब्रह्म ।

४७ मद्य बेचने वाली का रूपक (रा० १)

मद्य बेचने वाली = काया ।

गुड़ = गुरु का शब्द ।

अर्क = तृष्णा, काम, क्रोध, मद और मत्सर ।

दलाल = जप और तप ।

मद्य = महारस, प्रेम ।

भाठी = भवन चतुर्दश ।

अग्नि = ब्रह्म-ज्ञान ।

मदक = मुद्रा ।

निचोड़ने वाली = 'सहज' शक्ति से ओत-प्रोत सुषुम्णा नाड़ी ।

मदिरा का मूल्य = तीर्थ, व्रत, नेम, पवित्र संयम (चक्रों के) सूर्य, चंद्र आदि आभूषण ।

प्याला = आत्मा ।

४८ माया का रूपक (गौं० ७)

सुहागिनि नारि = माया ।

खसम = जीव ।

रखवारा = संसार के अन्य जीव ।

हार = सौंदर्य का आकर्षण ।

शृंगार = मोह के नये-नये रूप ।

दूसरा रूपक (गौं० ८)

सुहागिनी = माया ।

सेवक = संत ।

नेवर (नूपुर) = प्रेम और वासना के शब्द ।

विधवारि = लज्जित और शृंगार रहित ।

मिटवे फूटे (मिट्टी का घड़ा फूटना) = संयम का नष्ट होना ।

४९ मोती का रूपक (स० ११४)

मोती = ब्रह्म-ज्ञान ।

मार्ग = संसार ।

अंधा = संसार का मनुष्य ।

जगदीश की ज्योति = 'सहज' शक्ति ।

५० यंत्री का रूपक (स० १०३)

यंत्री = शरीर ।

तार = इंद्रियाँ ।

बजाने वाला = आत्मा ।

५१ युद्ध का रूपक (मा० ६)

युद्ध = कठिन साधना ।

दमामा = अनाहत नाद ।

निशान पर घाव = अजपा-जाप ।

रण = क्षेत्र, संसार ।

सूरमा = साधक ।

५२ रत्न का रूपक (बिभा० १)

रत्न = राम ।

ज्योति = ज्ञान ।

अंधकार = अज्ञान ।

माणिक = मन ।

छिपाने का स्थान = लव का तत्व ।

५३ रबाब का रूपक (आ० ११)

रबाब = जीवन ।

तंत = साँस ।

५४ लकड़ी का रूपक (स० ६०)

बन की जली हुई लकड़ी = संसार से संतप्त जीवात्मा ।

लुहार = यम ।

दूसरी बार जलना = अन्य योनियों में पड़ना ।

५५ वधू की बिदा का रूपक (ग० ५०)

धन (वधू) = आत्मा ।

पेवकड़ै (पीहर) = संसार ।

साहुरड़ै (प्रियतम के समीप) = ब्रह्म ।

डडीआ (डोली) = शरीर ।

पाहू (पाहुन) = गुरुदेव या मृत्यु ।

मुकलाऊ (बिदा)=मृत्यु या संसार से बिदा।

४६ **वर्षा का रूपक (स० १२४)**

घनहरु (बादल)=ईश्वरीय विभूति।

सर और ताल=संत।

चातक=पंडित, जीव।

तृषा=विभूति से रहित।

४७ **विरहणी का रूपक (सू० २)**

विरहणी=आत्मा।

प्रियतम=ईश्वर।

रात्रि=यौवन।

दिन=वृद्धावस्था।

भ्रमर=काले बाल।

बक=श्वेत बाल।

कच्चा घड़ा=शरीर।

पानी=अवस्था।

काग=सांसारिक अभिलाषा।

भुजा=मानसिक द्वंद्व।

४८ **विवाह का रूपक (आ० ६)**

रबाब बजाने वाला=हाथी।
पखावज ,, =बैल।
ताल ,, =कौवा।
नाचने वाला =गधा।
भक्ति (अभिचार) करने वाला=भैंसा।
} कर्मेंद्रिय

ककड़ी के बड़े=राजा राम
पान लगाने वाला=सिंह।
गिलौरियाँलानेवाली=घूँस
मंगल गाने वाली=मूषकी
शंखबजानेवाला=कछुआ
गुणगाने वाले=शशक और सिंह।
} ज्ञानेंद्रियाँ

उच्च वंशी=जीवात्मा।

स्वर्ण मंडप=शरीर।

सुंदरी कन्या=माया।

बराती=कीटी।

मिष्ठान्न=पर्वत।

मोटा पंडित=कछुआ।

अंगार=विवाह के अवसर की अग्नि।

उलूकी=गाली गानेवालियाँ।

शब्द=विवाह के अवसर के मंगल गान या गाली गानेवालियाँ।

दूसरा रूपक (आ० २४)

बराती=पाँचों तत्व।

स्वामी=राम।

वधू=आत्मा।

मंगल गीत गानेवालियाँ } इंद्रियाँ।

पंडित=ब्रह्मा (षट्चक्र में)।

४६ **वृक्ष का रूपक (रा० २)**

तरुवर=शरीर।

डालियाँ और शाखें=नाड़ियाँ।

पुष्प-पत्र=आज्ञा चक्र।

रस=अमृत जो सहस्रदलकमल में है।

रक्षक=हरि।

भ्रमर=जीवात्मा।

फल=सहस्रदल कमल।

बिरवा (पौदा)=कुंडलिनी।

पृथ्वी=मूलाधार चक्र।

सागर=सहस्रदल में संचित अमृत-कोष।

दूसरा रूपक (स० २२८)

तरुवर=राम।

फल=बैरागी।

छाया=साधु।

तीसरा रूपक (स० २३०)

तरुवर=दाता।

फल=दया।

जीवंतिनी लता=उपकारी।

पक्षी=साधु।

दिशावर = भिन्न भिन्न स्थान।

६० वैद्य का रूपक (स० ६६)

वैद्य = गुरु।
रोगी = शिष्य।

दूसरा रूपक (स० ७६)

वैद्य = गुरु।
दवा = उपदेश।
वस्तु = आत्मा।

६१ व्यापार या रूपक (के० २)

व्यापार = हरि का नाम।
हीरा = भक्ति-भाव।
मूल्य = सत्य का निवास।
बैल = मन।
मार्ग = आत्मा।
गोनि = शरीर।
गोनि की वस्तु = ज्ञान।
खेप = जीवन।

दूसरा रूपक (ब० ६)

नायक = शरीर।
पाँच बनजारे = पाँच तत्व।
पच्चीस बैल = पच्चीस प्रकृतियाँ।
नव बहिया = नव द्वार।
दस गोनि = दस इंद्रियाँ।
बहत्तर कसाव = शरीर के बहत्तर कोठे।
मूल = आत्म-तत्व।
ब्याज = तृष्णा।
सात सूत की गाँठ = सप्त धातु।
भावनी (स्त्री) = कर्म।
तीन जगाती = सतोगुण, रजोगुण और तमोगुण।
टाँड़े की दस दिशाएं = इंद्रियों के दस द्वार।

तीसरा रूपक (स० २०८)

दिन = आयु।
व्याज = कर्म-भोग।
पत्र (हुंडी) = ब्रह्म-ज्ञान।

६२ शूरवीर का रूपक (१६४)

शूरवीर = गुरु।
बाण = शब्द का उपदेश।
भूमि = समत्व भाव से पूर्ण।
छिद्र = ईश्वर के प्रति लगन।

६३ संख्या का रूपक (स० ६१)

एक = मन।
दो = नेत्र।
चार = अंतःकरण।
छः = षट्शास्त्र।

६४ संबंधियों का रूपक (आ० ६१)

सासु = माया।
ससुर = गुरु।
जेठ = असाधु।
सखी सहेली = कर्मेंद्रियाँ।
ननँद = ज्ञानेंद्रियाँ।
देवर = साधु पुरुष।
बाप = अहंकार।
माँ = प्रकृति।
बड़ा भाई = 'सहज'।
प्रियतम = ईश्वर।
स्त्री = आत्मा।
सेज = शरीर।

६५ सती का रूपक (स० ८५)

सती = सत्यव्रती संत।
चिता = साधना।
श्मशान = त्याग।
सब लोग = संसार के संबंधी।

६६ समुद्र का रूपक (स० ५०)

समुद्र = गुरु।
खारापन = क्रोध।
पोखर = साधारण गुरु।

६७ सरोवर का रूपक (स० १७०)

सरोवर=ब्रह्म ।
पालि=हृदय ।
नीर=विभूतियाँ ।
पीना=हृदय में धारण करना ।

६८ सर्प का रूपक (स० ७६)

सर्प=विरह ।
मंत्र=युक्ति ।
काटा हुआ=नाम का वियोगी ।
पागल=संसार से विरक्त ।

६९ सर्पिणी का रूपक (आ० १६)

सर्पिणी=माया ।
निर्मल जल में पैठना=आत्मा में निवास करना ।
डसा जाने वाला=त्रिभुवन ।
मारने वाला=सत्य को पहिचानने वाला ।

७० सवार का रूपक (ग० ३१)

सवार=वेद-कतेब से अलग रहने वाला ।
घोड़ा=विचार ।
मुहार=संयम ।
लगाम=नियम ।
जीन=समष्टि भाव ।
मार्ग=आकाश (ब्रह्म-रंध्र) ।
पाँवड़ा (रिकाब)=सहज ।
चाबुक=प्रेम ।

७१ हठयोग का रूपक (रा० १०)

पवन-पति होना=प्राणायाम ।
प्रवृत्तियों को रोक कर उलटना=प्रत्याहार ।
आकाश में गमन=ब्रह्म-रंध्र प्रवेश ।
चक्र-बेध=षट् चक्रों की सिद्धि ।
भुजंग को वशीभूत करना=कुंडलिनी ।
एकाकी राजा का सत्संग=ब्रह्मानुभूति ।
चंद्र द्वारा सूर्य का ग्रास=सहस्रदल कमल के चंद्र की सुधा से मूलाधार चक्र के सूर्य का विष-शोषण ।
कुंभक=प्राणायाम में साँस रोकना ।
अनहद वीणा=अनाहत नाद ।

दूसरा रूपक (भै० १०)

शिव की पुरी=ब्रह्म-रंध्र ।
मूलद्वार=मूलाधार चक्र ।
रवि=मूलाधार के अंतर्गत सूर्य ।
चंद्र=सहस्रदल कमल स्थित चंद्र ।
पश्चिम द्वार=इडा नाड़ी ।
मेरु दंड=मूलाधार चक्र से ऊपर स्थित मेरु-दंड ।
(इडा नाड़ी की) ओट=आज्ञा चक्र ।
खिड़की=सहस्रदल कमल का द्वार ।
दशम द्वार=ब्रह्म-रंध्र ।

तीसरा रूपक (भै० १६)

अगम और दुर्गम गढ़=सहस्रदल कमल ।
प्रकाश=ब्रह्म-ज्योति ।
विद्युल्लता=कुंडलिनी ।
बालगोविंद=ब्रह्म, आदि निरंजन ।
झनकार=अनाहत नाद ।
खंडल-मंडल=ब्रह्मांडों के अनेक समूह ।
त्रिअ स्थान=सहस्रदल कमल के तीन भाग ।
तिअ खंड=तीनों भागों के द्वार ।
कदली पुष्प=अनाहत चक्र ।
धूप का प्रकाश=आत्म-ज्योति ।
नीचे और ऊपर का आकाश } शून्य मंडल ।
मान सरोवर=ब्रह्म-रंध्र ।

स्नान करना=लीन होना।

जाप=सोऽहम्।

वर्ण अवर्ण रहित=प्रकृति से परे।

न टलने वाली और शून्य में लीन रहने वाली } 'सहज' शक्ति

चौथा रूपक (स० १५२)

गंगा=इडा नाड़ी।

यमुना=पिंगला नाड़ी।

संगम=सुषुम्णा नाड़ी।

शून्य का घाट=आज्ञा-चक्र।

मठ=विचार का केंद्रीभूत करना।

बाट (रास्ता)=साधना-पथ।

७२ हरिण का रूपक (स० ५३)

हरना=मनुष्य।

हरा ताल=संसार।

लाख अहेरी=असंख्य व्याधियाँ।

७३ हलदी चूने का रूपक (स० ५६)

हलदी=गुरु।

चूना=शिष्य।

वर्ण=जाति या रंग।

७४ हाँडी का रूपक (स० ७०)

काठ की हाँडी=शरीर।

पुनः चढ़ना=पुनः मनुष्य-योनि पाना।

७५ हाथी का रूपक (स० ५८)

द्वार=मुक्ति।

हाथी=मन।

दूसरा रूपक (स० २२४)

कजली वन=शरीर।

हाथी=मन।

अंकुश=ज्ञान।

महावत=संत।

७६ हीरे का रूपक (स० १५४)

हीरा=ब्रह्म।

हाट=संसार।

बिकना=मूल्य लेकर आध्यात्मिक उपदेश देना।

बेचने वाला=असंत।

कौड़ी=सांसारिक आकर्षण।

दूसरा रूपक (स० १६१)

आधार-स्तंभ=अनुभूत ज्ञान।

हीरा=ब्रह्म।

मानसरोवर=हृदय।

खरीदना=हृदयंगम करना।

तीसरा रूपक (स० १६२)

हीरा=हरि।

जौहरी=भक्त।

बाज़ार=सत्संग।

पारखी=सच्चा संत।

साट (विक्रय)=अनुभव।

२. उल्टबाँसी कोष

[रागिनियों के क्रम से]

१

रागु गउड़ी १४

दधि = ब्रह्म ।
नीर = माया ।

गधा = कपटी गुरु या मन ।
अंगूरी बेल = ब्रह्म-ज्ञान ।

भैंस = माया ।
मुख रहित बछड़ा = अज्ञान ।

भेड़ = वासना ।
लेले (बकरी का बच्चा) = धार्मिक ग्रंथ ।

२

रागु आसा ६

कीटी = शरीर ।
पर्वत = आत्मा ।

कछुआ = मंद और मूर्ख ।
कहना = ज्ञान की बात ।

अंगार = आध्यात्मिक अनुराग ।
चंचल = संसार के विषयों की ओर आकृष्ट ।

उलूकी = अज्ञता ।
शब्द सुनाना = उपदेश देना ।

३

रागु आसा २२

पुत्र = जीव ।
माता = माया ।

गुरु = शब्द ।
चेला = जीवात्मा ।

सिंह = ज्ञान ।
गाय = वाणी ।

मछली = कुंडलिनी ।
तरुवर = मेरु-दंड ।

कुत्ता = अज्ञानी ।
बिल्ली = माया ।

पेड़ = सुषुम्णा नाड़ी ।
फल-फूल = चक्र और सहस्र-दल कमल ।

घोड़ा = मन ।
भैंस = तामसी वृत्तियाँ ।

बैल = पंच प्राण ।
गौन = स्वरूप-सिद्धि

४

रागु सोरठि ६

कुंकुम = इंद्रियाँ ।
चंदन = आत्मा ।

बिना नेत्र = अंतर्दृष्टि ।
जगत = मोह-सृष्टि ।

पुत्र = जीवात्मा ।
पिता = परमात्मा ।

बिना स्थान के = शून्य ।
नगर = समस्त ब्रह्मांड ।

याचक = जीवात्मा।
दाता = परमात्मा।

५

रागु भैरउ १४

सिंह = मन।
वन = शरीर।

सियार = गुरु का शब्द।
सिंह = मन।
वनराजि = शरीर के षट्चक्र।

जयी = माया के दंभ से पूर्ण।
पराजित = संत (संसार से उदास।)

पैर = सिद्धांत।
लात = प्रहार।

मुख = कारण।
हँसी = कार्य।

निद्रा = शांति।
शयन = विश्राम।

बर्तन = सत्य।
दूध = ज्ञान की बात।

स्तन = वास्तविकता।
गाय = मोह-ममता।

पंथ = ज्ञान।
मार्ग = संप्रदाय।

६

रागु बसंतु ३

स्त्री = माया।
स्वामी = ईश्वर (देवताओं के अनेक रूप।)

पुत्र = अज्ञान।
पिता = मन।
तरलता रहित दूध = थोथा ज्ञान।

पुत्र = अज्ञान।
माता = माया।

७

सलोक १६३

गूँगा = ईश्वरीय विचार न कहने वाला।
बावरा = ईश्वरीय ज्ञान कहने वाला

बहरा = ईश्वरीय भजन न सुनने वाला।
कान = हरि-कीर्तन सुनने वाला।

पैर वाला = तीर्थाटन करने वाला।
पंगु = गुरु में स्थिर रहने वाला।

३. संख्या-कोष

१ एक

ब्रह्म [एक जोति एका मिली । (ग० ५५)]
[एक सु मति रति जानि मानि प्रभ ।(ग० ७४)]
[केवल नामु जपहु रे प्रानी परहु एक की सरना । (ध० २)
[इकु पुरखु समाइया । (सू० ५)]
[एको नाम बखानी । (के० ४)]
[कहतु कबीरु सुनहु नर नरवै परहु एक की सरना। (बिभा० २)]

जीवात्मा [भवरु एकु पुहप रस बीधा । (रा० ६)]

शरीर [बद्धआ एक—आ० ७)]
[नगरी एकै । (के० ३)]
[नायकु एकु । (ब० ६)]
[एक मसीति । भै० ४)]

मन [एक मरंते । स० ६१)]

२ दो

पाप और पुण्य [पापु पुंनु दोउ निरवरई । (ग० ७५)]

नेत्र [दुइ दुइ लोचन पेखा । (सो० ४)]
[दुइ मुए । (स० ६१)]

अक्षर ('रा' और 'म') [ए दुइ अखर ना खिसहि । (स० १७१)]

३ तीन

गुण (सत, रज, तम) [तीन जगाती करत रारि । (ब० ६)]
त्रितीआ तीने सम करि लिआवै (ग० ७६)]

लोक (स्वर्ग, मर्त्य, पाताल) [लोक त्रे । (ग० ७५)]
[तउ तीनि लोक की बातै कहै । (ग० ७५)]
[सोहागनि भवन त्रै लीआ (गौ० ८)]

त्रिकुटी (भृकुटी के मध्य आज्ञा चक्र का स्थान) [त्रिकुटी छूटै । (के० ३)]

नाड़ी (इडा, पिंगला सुषुम्णा) [तीनि नदी तह त्रिकुटी माहि (ग० ७७)]

सहस्रदल कमल के स्थान [त्रिअ असथान तीनि तिअ खंडा (भै० १६)]

देवता (ब्रह्मा, विष्णु महेश) [तीनि देव एक संगि लाइ । (ग० ७७)]

४ चार

वेद (ऋक्, साम, अथर्वण, यजु) [चारि वेद अरु सिंम्रिति पुराना (ध० १)]

[दुतीआ मउले चारि बेद । (ब० १)]
[अरझि उरझि कै पचि मूआ चारउ बेदहु माहि । (स० २३७)]
अहंकार [दोइ मरंते चार । (स० ६१)]
युग (सत, त्रेता, द्वापर, कलि) [चहु जुग ताड़ी लावै । (आ० ७)]
पद (सालोक्य, सामीप्य, सारूप्य, सायुज्य) [चउथे पद महि जन की जिंदु । (गौ० ४)]
[चउथे पद कउ जो नरु चीन्है । (के० १)]
दिशा (उत्तर, दक्षिण, पूर्व, पश्चिम) [चहु दिस पसरिओ है जम जेवरा । (सो० १)]
पदार्थ (अर्थ, धर्म, काम, मोक्ष) [चारि पदारथ देत न बार । (बि० ७)]

५ पाँच तत्व (पृथ्वी, जल, तेज, वायु, आकाश)
[पंच ततु मिलि दानु निबेरहि । (ग० ४६)]
[इहु मनु पंच तत को जीउ । ग० ७५]
[पाँचै पंच तत बिसथार । ग० ७६]
[पंच ततु की करि मिरगाणी । आ० ७]
[पाँचउ तत बराती । आ० २४]
[पंच ततु मिलि काया कीनी । गौ० ३]
[पंच ततु लै हिरदै राखहु । रा० ७)
[जब चूकै पंच धातु की रचना । मा० ४]
[पाँच पचीस मोह मद मतसर । भै० १७]
[बनजारे पाँच (ब० ६)]
इंद्रियाँ (आँख, नाक, कान, जीभ, त्वचा—ज्ञानेंद्रियाँ; हाथ, पैर, वाक्, मल-द्वार और मूत्र-द्वार—कर्मेन्द्रियाँ)
[पाँचउ इंद्री निग्रह करई । ग० ७५]
[पंच चोर की जाणै रीति । ग० ७७]
[सुरखी पाँचउ राखै सबै । ग० ७७]
[पंचा ते मेरा संगु चुकाइआ । आ० ३]
[पंच मारि पावा तलि दीने । आ० ३]
[आसपास पंच जोगीआ बैठे । आ० ४]
[कहत कबीर पंच जो चूरे । आ० ११]
[पाँचउ मुसि मुसला बिछावै । आ० १७]

[थाके पंच दूत सभ तसकर । आ० १८]
[कहत कबीर पंच को झगरा,
झगरत जनमु गवाइआ । आ० २५]
[पाँच पलीतह कउ परबोधै । गौ० १०]
[भाखि लै पंचै होइ सबूरी । भै० ४]
[माइआ महि कालु अरु पंच दूता । भै० १३]
[पाँचउ लरिका जारि कै रहै राम लिव लागि । स० ४२]

प्राण (प्राण, अपान, व्यान, उदान, समान)
[पाँचनु सेर अढ़ाई । ग० ५४]
[पंच पहरुआ दर महि रहते । ग० ७३]
[से पंच सैल सुख मानै । सो० ६]
[पंच सिकदारा । सू० ५]
[पंच क्रिसानवा भागि गए । मा० ७]

तन्मात्र (शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गंध)
[जिह मुखि पांचउ अंम्रित खाए । ग० ३२]
[पंच दूत ते लीओ छडाइ । ग० ४०]

६ छः

कर्म (यज्ञ करना, यज्ञ कराना, विद्या पढ़ना, विद्या पढ़ाना, दान देना, दान लेना)
[षट नेम करि कोठड़ी बाँधी । ग० ७३]

दर्शन (योग, सांख्य, न्याय, वेदांत, पूर्व मीमांसा, उत्तर मीमांसा)
[चारि मरंतह छह मूए । स० ६१]
[षट दरसन संसे परे । स० २०२]

चक्र (मूलाधार, स्वाधिष्ठान, मणिपूर, अनाहत, विशुद्ध, आज्ञा)
[खोड़े छाडि न... । ग० ७५]
[छठि खटु चक्र... । ग० ७६]

दिशा (उत्तर, दक्षिण, पूर्व, पश्चिम, ऊपर, नीचे)
[...छहूँ दिस धाइ । ग० ७६]

यती (जैन परंपरा में आविर्भूत छः यती)
[छिअ जती माइआ के बंदा । भै० १३]

७ सात

वार (रवि, सोम, मंगल, बुध, गुरु, शुक्र, शनि)
[...सात वार । ग० ७६]

धातु (चर्म, रुधिर, मांस, मेद, अस्थि, मज्जा, वीर्य ।)
[सात सूत इनि मुंडीए खोए । वि० ४]
[सात सूत...... । ब० १]

८ आठ धातु (उपर्युक्त सात और केश)
[असटमी असट धातु की काइआ । ग० ७६]

९ नव द्वार (दो आँख, दो कान, दो कान-रंध्र, मुख, मूत्र-द्वार, मल-द्वार)
[नउ घर देखि जु कामिनि भूली । ग० ७३]
[कहत कबीर नवै घर मूसे । ग० ७३]
[नउमी नवे दुआर कउ साधि । ग० ७६]
[नउ वहीआँ... । ब० १]
[...नउ दरवाज़े... । के० ३]
[सात सूत नव खंड... । ग० ५४]
द्रव्य (पृथ्वी, पानी, तेज, वायु, आकाश, काल, दिग्, आत्मा, मन ।)
[गज नव... । ग० ५४]
[नउ डाडी... । सू० ५]
[नउ नाइक की भगति पछानै । गौं० १०]
खंड (कुरु, हिरण्यमय, रम्यक, इला, हरि, केतुमाल, भद्राश्व, किन्नर, भारत)
[नवौं खंड की प्रिथमी मागै । आ०७]
निधि (महापद्म, पद्म, शंख, मकर, कच्छप, मुकुंद, कुंद, नील, खर्व)
[ऐसा जोगी नउ निधि पावे । आ० ७]
[रामु राजा नउ निधि मेरै । भै० २]
नाथ (नाथ परंपरा में आविर्भूत नव नाथ)
[नवै नाथ... । भै० १३]

१० दस इंद्रिय द्वार (दो नेत्र, दो कान, दो नासा-छिद्र, मुख, मूत्र-द्वार, मल-द्वार और ब्रह्म-रंध्र)
[मिरतक भये दसै बंद छूटै । आ० १८]
[एक मसीति दसै दरवाजे । भै० ४]
[दस गोनि... । ब० १]
दिशा (चार दिशा, चार विदिशा, ऊपर और नीचे)
[दह दिस धावा । ग० ७५]
[दसमी दह दिस होई अनंद । ग० ७६]
[आपै दह दिस आप चलावै । के० २]
[दस दिस... । ब० १]

दशम द्वार (ब्रह्म-रंध्र)
[...दसवें ततु समाई । ग० ७३]
[दसवें दुआरि कुंची जब दीजै । ग० ७५]
[त्रिकुटी छूटै दसवा दरु खूल्है । के० ३]

दस वायु (प्राण, अपान, समान, व्यान, उदान, नाग, कूर्म, कृकर, देवदत्त, धनंजय)
[दस गज... । ग० ५४]
[दस मुँसफ़ धावहिं । सू० ५]

११ **बारह** सूर्य (विवस्वान, अर्यमा, पूषा, त्वष्टा, सविता, भग, धाता, विधाता, वरुण, मित्र, शक्र, उरुक्रम)
[बारसि बारह उगवै सूर । ग० ७६]
चक्र (अनाहत चक्र जिसमें बारह दल होते हैं। यह हृदय में स्थित रहता है।)
[भवर एक पुहप रस बीधा बारह ले उर धरिआ । रा० ६]
[दुआदस दल अभ अंतरि मंत । भै० १६]
कांति (स्वर्ण की बारह कांतियाँ कही जाती हैं।)
[बाहरि कंचनु बारहा भीतरि भरी भँगार । स० १४५]

१२ **चौदह** लोक (सप्त लोक—भूलोक, भुवर्लोक, स्वर्लोक, महर्लोक, जनलोक, तपलोक, सत्यलोक और सप्त द्वीप—जंबू, शाक, कुश, क्रौंच, शाल्मल, मेद, पुष्कर)
[चउदस चउदह लोक मझारि । स० ७६]
[भवन चतुरदस भाठी कीनी । रा० १]

१३ **पंद्रह** तिथि (प्रत्येक पक्ष की प्रतिपदा से लेकर पूर्णिमा या अमावास्या तक की तिथियाँ)
[पंद्रह थिंती सात वार । ग० ७६]

१४ **सोलह** चक्र (विशुद्ध चक्र जिसमें सोलह दल होते हैं।)
[सोलह मधे पवन झकोरिआ । रा० ६]

१५ **अट्ठारह** पुराण (ब्रह्म, पद्म, विष्णु, शिव, भागवत, नारद, मार्कंडेय, अग्नि, भविष्य, ब्रह्मवैवर्त, लिंग, वाराह, स्कंद, वामन, कूर्म, मत्स्य, गरुड़, ब्रह्मांड)
[दस अठ पुराण तीरथ रस कीआ । गौ० ८]

१६ **इक्कीस** नाड़ियाँ (शरीर की इक्कीस मुख्य नाड़ियाँ जिनमें दस प्रधान हैं—

इडा, पिंगला, सुषुम्णा, गंधारी, हस्तजिह्वा, पुष्प, यशस्विनी, अलमवुश, कुहू, शंखिनी)
[गज नव गज दस, गज इकीस पुरीआ एक तनाई। ग० ५४]

१७ **चौबीस** एकादशी (वर्ष भर की २४ एकादशियाँ—प्रत्येक मास में दो)
[ब्रहमन गिआस करहि चउबीसा काजी मह रमजाना। विभा० २]

१८ **पचीस** प्रकृति (प्रत्येक तत्व की पाँच पाँच प्रकृतियाँ, इस प्रकार पचीस प्रकृतियाँ :—
आकाश—काम, क्रोध, लोभ, मोह, भय।
वायु—दौड़ना, काँपना, लेटना, चलना, संकोच।
जल—ज्योति, स्वेद, रक्त, लार, मूत्र।
अग्नि—प्यास, भूख, नींद, थकावट, आलस्य।
पृथ्वी—त्वचा, केश, माँस, नाड़ियाँ, अस्थि।)
[पाँच पचीस मोह मद मतसर। भै० १७]
[बरध पचीसक। ब० १]

१९ **तीस** दिन (मास के तीस दिन।)
[मैले निसु बासुर दिन तीस। भै० ३]

२० **बावन** वर्ण (वर्णमाला के बावन अक्षर।)
[बावन अछर लोक त्रै सभु कछु इनही माहि। ग० ७५]
[बावन अखर सोधि कै हरि चरनी चितु लाइ। स० १७३]

२१ **साठ** नस (शरीर के भीतर नस-जाल)
[साठ सूत नव खंड...। ग० ५४]

२२ **अड़सठ** तीर्थ (हिंदू धर्म-शास्त्र में अड़सठ तीर्थ माने गए हैं।)
[लउकी अठसठ तीरथ न्हाई। सो० ८]

२३ **सत्तर** काबा (मुसलमानी धर्म के अनुसार काबा सत्तर समझे गए हैं।)
[सतरि काबा घट ही भीतरि। आ० १७]

२४ **बहत्तर** कोष्ठ (शरीर-विज्ञान के अनुसार शरीर के बहत्तर कोष्ठ)
[साठ सूत नव खंड बहतरि। ग० ५४]
[बहूवा एक बहतरि आधारी। आ० ७]
[...बहतरि घरि...। सू० ५]

[कसन बहतरि । ब० १]

२५ **चौरासी** सिद्ध (नाथ पंथ के अनुसार सिद्ध-संख्या)
[सिध चउरासीह माइआ महि खेला । मै० १३]
[खट दरसन संसै परे अरु चउरासीह सिध । स० २०२]

यहाँ से आगे की संख्याएं काल्पनिक हैं।

२६ **सात हज़ार** सलार (सेनापति) [सतरि सै सलार है जाके। भै० १५]

२७ **सवा लाख** पैगंबर [सवा लाख पैकाबर जाके । भै० १५]

२८ **चौरासी लाख** दीवान (या ईश्वर भक्ति में पागल)
[चउरासी लाख फिरैं दीवाना । भै० १५]

२९ **एक करोड़** सूर्य [कोटि सूर जाकै परगास । भै० २०]
कैलास सहित महादेव [कोटि महादेव अरु कविलास । भै० २०]
दुर्गा [दुर्गा कोटि जाकै मरदनु करै । भै० २०]
ब्रह्मा [ब्रहमा कोटि वेद उचरे । भै० २०]
चंद्रमा [कोटि चंद्रमे करहि चराक । भै० २०]
नवग्रह [नवग्रह कोटि ठाढे दरबार । भै० २०]
धर्म [धरम कोटि जाकै प्रतिहार । भै० २०]
पवन [पवन कोटि चउबारे फिरहि । भै० २०]
वासुकी [बासक कोटि सेज बिसथरहि । भै० २०]
समुद्र [समुंद कोटि जाके पानीहार । भै० २०]
कुबेर [कोटि कमेर भरहि भंडार । भै० २०]
इंद्र [इंद्र कोटि जाके सेवा करहि । भै० २०]
कला [कोटि कला खेलै गोपाल । भै० २०]
जग [कोटि जग जाकै दरबारि । भै० २०]
गंधर्व [गंध्रब कोटि करहि जैकार । भै० २०]
विद्या [बिदिआ कोटि सभै गुन कहै । भै० २०]
कंदर्प (कामदेव) [कंद्रप कोटि जाकै लवै न धरहिं । भै० २०]

३० **अट्ठारह करोड़** रोमावली [रोमावलि कोटि अठारह भार । भै० २०]

३१ **तेतीस करोड़** देवता [सुर तेतीसउ जेवहि पाक । भै० २०]
खेलखाना (सेवक)
[तेतीस करोड़ी है खेलखाना । भै० १५]

३२ **बावन करोड़** रोमावली [बावन कोटि जाकै रोमावली । भै० २०]

३३ **छप्पन करोड़** खेलखासी (निजी कार्य-कर्त्ता)
[छप्पन कोटि जाके खेलखासी। भैं० १५]
प्रतिहार (सेवक)
[छपन कोटि जाकै प्रतिहार। भैं० २०]

३४ **अट्ठासी करोड़** शेख [सेख जु कहीअहि कोटि अठासी। भैं० १५]

३५ **एक सहस्र करोड़** पुराणों की कथन-वार्ता [सहस कोटि बहु कहत पुरान। भैं० २०]

३६ **अनेक करोड़** लक्ष्मी (असंख्य)
[कोटिक लखमी करै सीगार। भैं० २०]
पाप और पुण्य [कोटिक पाप पुंन बहु हिरइ। भैं० २०]

---

४. शब्द-कोष

अंजन = माया। ग० ४६
अंतरे = बीच में। स० १५१
अंदाजा = चेष्टा, अनुमान। बि० ५
अंभ-थंभि = वह मंत्र-प्रयोग जिससे जल का प्रवाह या बरसना रोक दिया जाता है। ग० ५८
अंभै = जल के साथ। गौ० ११
अंमुहा = मुख रहित। ग० १४
अउहेरी = अवहेलना पूर्वक। गौ० ६
अकलहि = अक्ल को या कला रहित (ईश्वर) को। अ० १७
अकुल = कुल-रहित। ग० ७६
अखै पदु = अक्षय पद। ग० ७५
अचार = बुरा आचार। ग० ६
अजांई (अ०अज़ाब) = (१) संकट या विपत्ति। भै० १२
(२) व्यर्थ। स० १७१
अठसठि = अड़सठ (६८)। सो० ८
अतीति = (या अतीता) समय को जिसने जीत लिया है। ग० १८, ५२
अन = अन्यत्र। भै० ५
अनद बिनोदी = आनंद विनोद से युक्त। मा० ६
अनाहद बानी = अनाहत नाद जो ब्रह्म-रंध्र में निरंतर होता रहता है। आ० ३१, बिभा० ४
अनुदिन = प्रतिदिन। ग० ७६
अपतह = मर्यादा रहित, पति रहित। ग० ३
अपरस = अछूत। अ० २
अबरन = अवर्ण, जिसका कोई रंग न हो। भै० १६
अबिरथा = व्यर्थ (यहाँ 'अ' निरर्थक है। मा० १
अभअंत = अभ्यंतर, भीतर। भै० १६
अभिउ = भय रहित। आ० १
अमलु = शासनाधिकार। सू० ३
अरदास = निवेदन के साथ भेंट। सू० ३
अरध = नीचे। ग० ७५, भै० १६
अलेखु = (१) जो लिखा नहीं जा सकता, निराकार ब्रह्म। रा० ११ (२) किसी काम का नहीं। आ० २६
अवगन = आवागमन। ग० ५२
अवझेरा = उलझन। ग० ७५
अवध = अवधि, आयु। सि० १
अवधू (अवधूत) = श्री रामानंद के अनुयायी जो सांसारिकता से अलग थे। रा० २
अवलि = सर्व प्रथम, अव्वल। आ० १७, बिभा० ३
असत = अस्त। आ० १
असथिरु = स्थिर (यहां 'अ' व्यर्थ है।) भै० १६
अहिनिसि = दिनरात। ग० ७७
अहिरख = भोजन। आ० १६
अहोई = दिन-रात, सदैव। स० १०८
आखी = गढ़े की मिट्टी। स० २२७
आखीअै = बोलना। ग० ५०, रा० २
आगिआ = आज्ञा। आ० १६
आछै = है। वि० १०

आड़ी=अड़ी हुई, रोकनेवाली। भैं० १७
आठै=ओट, रक्षा, सहारा। आ० ३४
आथि=है। ब० ५
आदित=आदित्य, रविवार। ग० ७७
आदेश=प्रणाम करने का एक प्रकार। रा० ११
आधारी=लकड़ी की टेक जो जोगी बैठकर हाथ पर लगाता है। आ० ७, वि० ८
आन=टेक, मर्यादा। ग० ७७
आपा पद=आत्म-पद। आ० १
आलजाल=उल्टा-सीधा। ब० ४
आव=आयु, उमर। ध० २
आवनि जानी=आवागमन। ग० ६१

इंदु=इंद्र। भैं० ३
इकतीआर=(इख़्तियार)=अधिकार। ग० ६६
इकसर=एकाकी, अकेले। सू० १
इताल=शीघ्र ही, अभी। स० १३८
इव=यह। बिभा० १
इखलासु (इख़लास)=वास्तविक प्रेम। भैं० ७
इफतरा=झूठा, कलंकरूप। ति० १
इतनकु=थोड़ा सा; ज़रा सा। आ० ३६
ईत=इतर, साधारण। सू० ३

उजू=मुसलमानी धार्मिक नियम जिसमें नमाज़ के पूर्व हाथ पैर धोते हैं। बिभा० ४
उदक कुंभु=जल से भरा हुआ घड़ा (शरीर) आ० १
उदासी=संन्यासी, वीतरागी। ग० ५८
उदिआन=उद्यान, बगीचा। ग० ५६
उधारिओ=उद्धार किया। वि० ४

उनमद=उन्माद। रा० २
उनमनि=योग की एक मुद्रा जिसमें मन की प्रवृत्ति अंतर्मुखी और स्थिर हो जाती है। ग० ४३, ७५; रा० १०
उनमान=अनुमान। स० १२१
उरकट कुरकट=भोज्य पदार्थों के टुकड़े। आ० ४
उरध=ऊर्ध्व, ऊपर। भैं० १६
उरध पंक (ऊर्ध्व पंकज) सहस्रदल कमल। ग० ७७
उरधहिं=ऊपर। ग० ७५
उरवारि=(१) उद्धार करना या उठाना। ग० १६
(२) (अवार) नदी के इस पार का किनारा। ग० ६१, ७६; गौ० ८
उलटो पवनु=प्राणायाम। के० ३
उसट=ऊँट। भैं० १३
उसतति=स्तुति। के० १
उसारी (उपशाला)=सायबान, मकान के बग़ल की जगह। ग० ६०
ऊखरु=ऊसर। ध० ३
ऊजरु=उजड़ा हुआ। स० १४
ऊत=निस्संतान, निकम्मा। सू० ३
ऊभा=खड़ा, चैतन्य। सो० १०

ओक=अंजुली या समीप। सो० ६
ओड़=ओट। भैं० १०
ओड़ि=अंत तक। स० १५३
ओपति=उत्पत्ति, जन्म। ग० ४१
ओवरी=कोठरी। स० १३७
ओलै=ओट, आड़। बि० १२

कंचूआ फल=कच्चे फल। ग० ६
कंद्रप=कंदर्प, कामदेव। भैं० २०

कंनी = कर्णी, जोगियों के कान का आभूषण। ग० ५३
कउरापनु = कड़वाहट। सो० ८
कतेब = मुसलमानों के धार्मिक ग्रंथ। ग० ३१; आ० ८; भै० १५
कदली पुहप = केले का फूल। भै० १६
कदूरी = मैलापन। भै० ४
कदे = कभी। ग० ७६
कपड़ केदारै = वस्त्रों से सजे हुए भवन। सो० १
कमावहु = सिद्ध करो। रा० ७
कमेर = कुबेर। भै० २०
करकरा कासारु = रवेदार भुना हुआ आटा जिसमें शक्कर और मेवे पड़े रहते हैं। आ० १४; गौं० ११
करमु = कृपा। ति० १; स० ३२
करवत = काशी आदि पवित्र स्थानों में भक्त लोग फल की आशा से अपने को आरे से कटवा डालते थे। उसे 'करवत लेना' कहते थे। आ० ३५
करारी = स्थिरता। ति० १
करीआ = कर्णधार। ग० ६६
करीम = कृपालु। ति० १
कलतु = कलत्र, स्त्री। भै० २
कलप = कर्मकांड। ग० ५३
कवला = कमला, लक्ष्मी। ध० १
कवलु = ग्रास। गौं० ११
कवादे = मूर्ख, परिवार के लोग। आ० ८
कविता = (यहाँ कवि के अर्थ में) सो० १
कविलास = कैलास। भै० २०
कसमल = कल्मष, दोष, पाप। ग० ७७
कसुंभ = कुसुंभी, लाल रंग। ग० ५७
कसु = खिचा हुआ अर्क़। रा० १
कही = कही हुई बात। आ० १
कांठे = किनारे। स० १४२
कांब = कहीं, यदि। स० १३४
काई = पुराना हिसाब। सू० ५
काचे करवै = कच्चे घड़े में। सू० २
काछि कूछि = वस्त्रों से बहुत सुसज्जित। सो० ३
काजी = क़ाज़ी, न्याय की व्यवस्था करने वाला। भै० ११
काठी = काष्ठ, लकड़ी। आ० २
कान = सुनने वाला। स० १६३
कानी = मर्यादा। बि० १
कारगह = करघा। आ० ३६
कारवी = बधना, लोटा या घड़ा। स०२२२
कारा = विभाजक रेखा। ब० ७
कालबूत = इमारत का कच्चा भराव। ग० ५७
कासट = काष्ठ, लकड़ी। ग० ५६
कासु = आकाश। भै० १६
काहो = कैसा। ध० ३
किंगुरी = जोगियों का सारगी की भाँति एक बाजा। सि० २; ग० ५३; रा० ७
किरत = कृत, कर्म-बंधन। ग० ५०
किरपन = कृपण। गौं० ८
किलविख = झंझट। बिभा० १
कुंचर = कुंजर, हाथी। गौं० ४; भै० १३
कुंभकु = प्राणायाम की वह क्रिया जिसमें साँस हृदय में रोक कर रक्खी जाती है। रा० १०
कुटवारी = कोटवारगिरी, सेवा। रा० ४
कुबज = कुब्जा, टेढ़ा-मेढ़ा। ग० २५
कुलफु (अ० कुफ़्ल) = ताला। ग० ७३
कुहाड़ा = कुल्हाड़ा। स० १३
कूँज = कुंज पक्षी। स० १२३
केल = केलि, क्रीड़ा। रा० ६

कोठरी=सहस्रदल कमल। रा० ४
कोठरे=शरीर। रा० ४
कोठी=ब्रह्म-रंध्र। रा० ४
कोथरी=थैली। स० २२५

खंडल=खंड धारण करने वाले। भै०१६
खट नेम=सात्विक जीवन के छः नियम। ग० ७३
खटाई=परीक्षा में ठहरे, स्थिर रहे। ग० ७२
खटिआ=सुरक्षित किया। सू० ३
खपत=व्यय या नष्ट होना। ग० ७५
खबरि=(फ़ा०) सहानुभूति, सुधि लेना। आ० २६
खलक (खल्क)=सृष्टि। ति० १; बिभा० ३
खलहलु=ख़लल होना, ख़राब होना। भै० १५
खसमु=स्वामी। ग० ६२
खसि=मार कर। स० ७६
खाती=बढ़ई। गौं० ५
खालासे=(फ़ा० ख़ालिस) शुद्ध, जिनमें किसी प्रकार का छल न हो। सो० ३
खालिक=ख़ालिक, सृष्टिकर्त्ता। ति० १; बिभा० ३
खिंथा=जोगियों का बाहरी वस्त्र। ग०५३; आ० ७; बि० ८; स० ४७, ४८
खिअत=ख़िल्कत, सृष्टि। भै० २०
खिरि या खिरत=नष्ट हो जाना। ग०७५
खीणा=क्षीण। बिभा० १
खीधा=खिंथा, कंबल। सौ० ११
खीवा (सं० क्षीवन)=मतवालापन। के० ३
खीर=क्षीर, दूध। म्रा० ६
खुधे=क्षुधित, भूखे। गौं० ८
खुसरै (अ० ख़ुसियः)=अंडकोष। ग० ४
खूहड़ी=छोटा कुआँ या सरोवरी। ग० ५०
खेड=खेल, क्रीड़ा। ग० १४
खेत=रण-क्षेत्र। मा० ६
खेवटु=महावत। स० २२४
खेलखासी=निजी कार्यकर्त्ता। भै० १५
खेह=धूल। स० १४७
खोंद (खूंद)=लटपट चाल, पैर उठा कर जल्दी जल्दी चलना। के० ३
खोड़ि=षट चक्र। ग० ७५

गंध्रव=गंधर्व। भै० २०
गइ=गय, हाथी। स० ११२
गगरीआ फोरी=कपाल-क्रिया की। ग०६०
गजि=गर्जन कर। ग० १५
गजी=मोटा कपड़ा। ग० ५४
गठीआ=गठरी। के० ६
गम=रास्ता, मार्ग या शक्ति। ग० ७६; आ० ३१
गहगचि=मध्य में। स० १४२
गहेरा=गहरा, बड़ा। सो० १
गहेली=पकड़ी गई, ग्रसित हुई। आ०२५
गाडर=भेड़। भै० १३
गिआस=ग्यारस। बिभा० २
गुपती=गुप्त रूप से। गौं० ११
गुर गंमित=गुरु द्वारा चला हुआ या आचरित। ग० ७४; रा० २
गुरमति=गुरु के संदेश से युक्त। ग० १६; आ० २१
गुरमुखि=गुरु-शब्द, या गुरु से दीक्षित शिष्य। सो० ४; गौं० ६; ब० २
गुसल करदन बूद=स्नान किया था। ति० १
गै=गय, हाथी। स० १५६
गैब=(ग़ैब) वह जो सामने न हो, परोक्ष। आ० २६

गोदरी=गोंदरी, प्याज़। आ० १६
गोर=क़ब्र, समाधि। स० १२७
गोसटे=गोष्ठी, बातचीत। स० २३२
गोसाई=संन्यासी संप्रदाय में गुरु या जितेंद्रिय। आ० ३, ३०

घट परचै=शरीर की राजसिक और ब्रह्म की सात्विक प्रवृत्तियों के ज्ञान की अवस्था। ग० ७५
घरहाई=घर नष्ट करनेवाली। झगड़ालू स्त्री। ग० ५४
घररि=संपूर्ण रूप से। स० २५
घाघरै=ऊपरी वस्त्र। स० ४७
घाल=(१) सौदे की तौल से अधिक मिलनेवाली वस्तु। घलुआ। सो० ६
(२) समीप। भै० १२
घीस=बड़ा चूहा, घूँस। आ० ६
घ्राउ=सुगंधि। ग० ५६

चउबारे=मकान की छत का कमरा जिसके चारों ओर दरवाज़े हों। भै० २०
चटारा=चमकीला (रत्न)। आ० १६
चराक=चिराग़, दीपक। भै० २०
चरावहि=खाना खाते हैं। (बुरे अर्थ में) आ० २
चसमे=नेत्र के सामने।
चाबनु=चबैना, चना। गौं० ६
चिंतामनि=वह मणि जिसके संबंध में विश्वास है कि उससे संपूर्ण कामनाएँ फलवती होती हैं। रा० ८
चितारै=चिंतन करता है। स० १२३
चिरगट=चीथड़ा या गुदड़ी। आ० १६
चिहनु=चिह्न। स० ५७
चीता=(हित) चिंतक। ग० १७
चीते=चित्रित किए। ग० २६
चीथरा=फटा हुआ वस्त्र। ब० ८
चीसा=चीत्कार। गौं० ४
चुँङआ=चुंगा। मद उतारने का नल। (यहाँ पिंगला नाड़ी।) ग० २
चूकै=नष्ट होती है। सू० ४
चूना=चून, आटा। सो० ११, ब० ८
चोआ=कपूर, सुगंधित द्रव्य। ग० ११,१६
चोभ=चुभन। रा० ३
चोलना=लंबा वस्त्र। आ० ६, २८

छनक=नूपुर के बजने का शब्द। गौं० ८
छनहरी=नाचनेवाली, नर्त्तकी। गौं० ८
छीपहु=दरज़ी या उसका काम। स० २१२
छूछ या छूछे=मिथ्या या सारहीन। आ० १६; रा० १
छेंक=छिद्र। स० ३५
छोछी=ख़ाली। ग० ५४

जंतु या जंती=यंत्री (यहाँ शरीर।) ग० ८; स० १०३
जगाती=घाट पर कर वसूल करनेवाले। ग० ४६; ब० ६
जब=जप। बि० ४
जम की खबरी=यम-यातना। बि० ६
जरद रू=(ज़र्द रू) जिसका रंग पीला पड़ गया है, जो लज्जित हो गया है। भैं० १५
जलहरु=सागर। रा० ६
जलेता=जलनेवाली लकड़ी। रा० २
जालि=ज्वाला। मा० ८
जाहिगा=नष्ट होगा। ग० ६७
जिंदु=आत्मा। गौं० ४
जीवंत=जीवंतिनी लता जिसमें मीठा रस

भरा रहता है। सा० २३०
जुगादी=आदि युग। स० १
जेवरी=रस्सी। ग० ३०; स० ११७
जोई=स्त्री। आ० ६
जोगतण=योग की सामग्री। आ० ७

झंखु=झीकना, पछताना। स० ३२
झकोलन हारु=मथानी। स० १८
झबकि=उभार। स० ६७
झल=आग की लपट। ग० ४७
झीवर=धीवर। स० ४६
झुँगीआ=झोपड़ी। स० १५
झूरि=कृश, दुर्बल, दुःखी। स० १२६
झोलै=झटका देना। बि० १२

टहकेव=टसकाते हैं, सरकाते हैं। गौं० ११
टाँड़ो=बनजारे का सामान। ब० ६
टोघनै=विपत्ति। स० ४६
टोप=शिरस्त्राण। भै० १७

ठनगनु=हठ, नखरा। आ० ४
ठाक=रुकावट। स० २३१
ठाकुरु=स्वामी। ग० ७०
ठेंगा या ठेगा=डंडा। गू० १; स० ७८

डंक=डंका, नगाड़ा। सो० ४
डंडा=काठ की लकड़ी। बि० ८
डगमग=अस्थिरता। ग० ६८
डगरो=रास्ता। गौं० ५
डडीआ=डंडी, डोली। ग० ५०
डहकै=ठगता है। ग० ३
डांडे=दंडित किए गए। ग० ६८
डाडी=दंड देनेवाले जमादार। सू० ५
डानउ (डांड़ा)=सीमा। रा० ४
डाला=टोकरा। आ० २
डिंभ=आडंबर। सो० ३
डूँ=चिढ़ाने की ध्वनि। आ० ४
डोलनी=मटकी, छोटा डोल। स० १८

ढेम=पत्थर। ब० ८

तंतु=तंत्र। रा० ६
तंबोर=तांबूल। ग० १६
तग=तागा। आ० २
तडोर (ते डोर)=सूत्र सहित, संचालन-कर्ता। ग० १६
ततु=तत्व। ग० ७५
तना=ओर, संबंध में। ग० ७५
तनि=किंचित, ज़रा। रा० १
तपा या तपी=तपस्वी। ग० १३; गौं० ५
तरासिआ=संत्रस्त। ग० २०
तरी=कपड़ों की पेटी। आ० १६
तरीकत=मुसलमानी धर्म-साधना की दूसरी स्थिति। ग० ७५
तलका=नीचे का। आ० ७
तलब=पुकार, आवश्यकता। आ० १५
तसकरु=चोर। ग० ५८; गौं० १०
तांती=जुलाहे का राछ। आ० ३६
ताई=लिए। आ० ३०
तागरी=ज़ंजीर। आ० १६
ताड़ी=त्राटक, भौंहों के मध्य में स्थिर दृष्टि। ग० ५३; आ० ७; रा० ७
तिसकार=तिरस्कार। स० १४०
तिसै=तृष्णा करता है। सू० ४
तुख=तुष, भूसी। स० २११
तुठा=तुष्ट या संतुष्ट होकर। स० ५६
तुरी=तुरिया या तोड़िया, जुलाहे की हत्थी। गौं० ६

तुरे=तुरंग, घोड़ा। भै० १३
तुलाई=दुलाई, रुई से भरी हुई दोहर। सो० ११
तूर=तूर्य, आनंद या मंगल का तुरही-नाद। ग० ७६; रा० ६
तूला=तुल्य, समान। गौं० २
तेलक=बाजीगर। गू० १
तेवर=तिहरा। भै० १७
तोरु, तोरै=वेग से चलाना। गौं० ४
त्रिकुटी संधि=दोनों भौंहों के बीच में आज्ञा-चक्र के मध्य। बि० ११
त्रिखि=प्यासी। गौं० ७
त्रिपलु=भूत, भविष्य, वर्तमान। ग०५३
त्रीय=स्त्री। ग० ७५
त्रिअ या त्रै=तीन। गौं० ८; भै० १६

थांघी=स्थिर। स० ५१
थाइआ=स्थिर हुआ। स० १६
थापहु=स्थापित करते हो। मा० १
थाभह=स्तंभ। ग० ७५
थानक=स्थान। ग० ७५
थारउ=तेरा। ग० ७५
थावर=स्थिर, शनि। ग० ७७
थूनी=स्थैर्य, विश्राम-स्थल। स० १६१

दगली=मोटे वस्त्र की बनी हुई अंगरखी। आ० ३
दगाई=प्राचीन काल में जलते हुए काठ या लोहे से शरीर के किसी भाग पर दाग़ दिया जाता था। लोगों का विश्वास था कि ऐसा करने से प्रेत या दुःख-बाधा दूर हो जाती थी। रा० ४
दफतर=दफ़्तर, चिट्ठा। सू० ५; स० १२७; स० १६६, २००
दमामा=नगाड़ा। मा० ६, स० २२७
दरगह=दरबार, कचहरी। सू० ३
दरमादे=थके हुए। बि० ७
दरहालु=अभी। सू० ३
दरि=द्वार पर। भै० २
दरोगु=झूठ। ति० १
दस अठ=अट्ठारह। गौं० ८
दसतगीरी (दस्तगीर)=विपत्ति के समय हाथ पकड़नेवाला। ति० १
दाइम=सदैव। ति० १
दाधे=विदग्ध, जले हुए। स० ४
दावै=अग्नि। स० १६६
दिलासा=आश्वासन। आ० ३
दिवाजा=शासन। बि० ५
दिसटि=दृष्टि। सि० २
दी=से। सू० ४
दीवटी=दीपाधार। ग० ७७
दुंदर=द्वंद्व, विग्रह। भै० ११, १७
दुआदस दल=द्वादश दल अनाहत चक्र जो हृदय के पास स्थित है। भै० १६
दुइपुर=दोनों लोक (इहलोक और परलोक) रा० २
दुनी=दुनिया। सि० २
दुहकरिं=दुष्कर, कठिन या तत्व खींचना। ग० ७६
दुहा=दोनों। आ० ३
दुहागनि=अभागिनी स्त्री। गौं० ६
दुहेरा=दुःसाध्य, कठिन। आ० ३०
दूजै भाव=द्विविधा विचार। भै० १२
दूणि=(देशज) दो पहाड़ों के बीच का स्थान। ग० ७५
दूधाधारी=दूध ही पर जिनके जीवन का आधार है। गौं० ११
देउ=देवता। ग० ७६

देवल=मंदिर, तीर्थ। स० १२६
दोजक=दोज़ख़, नर्क। आ० १७; रा० ५; बिभा० ४; स० २४२
दोवर=दुहरा। भै० १७
द्रुगम=दुर्गम। भै० १६

धउलहर=महल। स० १५
धन=स्त्री। ग० ५०
धरनीधर=शेषनाग। भै० १६
धापे=(धापना) तृप्त होना, संतुष्ट होना। गौं० ६
धुँधरावा=आग लगा दी, धुएँ से भर दिया। आ० ३३
धुरि=अटल, या प्रारंभ से अंत तक। आ० २०
धूई=धूनी। आ० ७
ध्रू=ध्रुव। बि० ५

नउतन=नूतन, नवीन। ग० २
नउबति=नौबत, वैभव और मंगलसूचक वाद्य। के० ६
नकटदे=नकटी। आ० ४
नटवट=नट की क्रीड़ा करने की गेंद, बटा। ग० ३३
नथनी=एकत्र कर, एक सूत्र में पिरो कर। ग० ७६
नदरि=भयरहित, निडर। आ० १०; मा० ३; भै० १५
ननकारु=निषेध। रा० ६
नरजा=अप्रसन्न। वि० १२
नरवै=श्रेष्ठ मनुष्य। बिभा० २
नरू=नर। गौं० २
नलनी=सेमर के वृक्ष की फली जो देखने में अत्यंत सुन्दर अरुण वर्ण की रहती है किंतु उसके भीतर रुई भरी रहती है। ग० ५७; सो० २
नाइ=नार, आग। स० १८६
नाई=लिए। बिभा० २
नादी=जो अनाहत नाद में विश्वास रखते हैं। सो० ३
नार (अ०)=आग। ग० ६६
नारि=नरी जिसमें धागा लपेटा जाता है। गौं० ६
नारी=नली। रा० २
नालि=लिए। स० २१३
नावणु=स्नान करना। आ० ३७
निखिअउ=निक्षिप्त, मुक्त या स्वतंत्र। ग० ७५
निखुटी=कम होना। गौं० ६
निगुसाएं=क्रोध कर। स० ५१
निग्रह=रोकना। ग० ७५
निधान=वह स्थान जहाँ जीव ब्रह्म में लीन हो जाय। ग० ६३
निबग=निबख्त, अभागा। आ० २
निबही=सफल हुई। के० २
निबेरि=सुलझाना, निर्णय करना। सू० ३
निमसै=निवास करता है। ग० ७५
निरंकार=आकार रहित। बिभा० ५
निरंजन=माया रहित ब्रह्म। बिभा० ३
निरबाई=निस्तार या छुटकारा पाना। ग० ७५
निरबानी=जो वाणी से न कहा जा सके। बिभा० ५
निरवारो=निवारण करो। ग० ७५
निरारा (री)=न्यारा, अलग। ग० ३१; वि० १
निरालम=निरालंब। रा० ७
निरोध=योग के अनुसार चित्त-वृत्ति की

वह अवस्था जिसमें ध्यान शरीर और परमात्मा दोनों की ओर रहता है। ग० ७५

निवरै=समीप। ग० ४७

निवै=मरना। ग० ७५

निरते=निरति या नृत्य। आ० १८

नींवा=नीम। रा० १२

नीठि नीठि=कठिनता से। ग० ७५

नीसाना=निशान, लक्ष्य-बेध। आ० ७; मा० ६

नेवर=नूपुर। गौं० ८

नैनाह=नेत्र की। स० ११८

पंखि=पक्षी। ग० ६४

पंच सैल=पंच प्राण जो पर्वत की भाँति स्थान-स्थान पर हैं। सो० ६

पंचे सबद=आरती में कहे जानेवाले शब्द। बिभा० ५

पखिआरी=झगड़ा करनेवाली स्त्री। गौं० ७

पगरी (पँवरी)=ड्योढ़ी। बि० ६

पछम दुआरै=पृष्ट द्वार, (यहाँ सुषुम्णा नाड़ी।) भै० १०

पछाना=पहिचाना। ग० ३७

पटंतर=बराबरी में। स० १५६

पटंबर=पाटंबर, रेशमी वस्त्र। रा० ६

पटणु=पट्टन, नगर। स० २३

पटै लिखाइआ=अधिकार-पत्र लिखाया है, अधिकार से शासित हुए हैं। सो० ३

पड़नसाल=पाठशाला। ब० ४

पतरि=पत्तल या पात्र। आ० ४

पति=मर्यादा। गौं० ५

पतीआ=प्रतिज्ञा। गौं० ४

पतीणे=विश्वास करना। आ० ३७

पतीना=विश्वास करना। गौं० ४

पत्रका=हाथ का आभूषण। रा० ७

पद=मोक्ष या निर्वाण। ग० ६५

परचै=परिचय, अभिज्ञान। गौं० १०

परज (रि)=जलकर। ग० ४१, ७५

पर ती=दूसरे की स्त्री। रा० ८

परतीति=विश्वास। आ० ३५

परबोधै=समझावे। गौं० १०

परमल=परिमल, सुगंधि। ग० १२

परल पगारा=प्राचीर का पलल (पत्थर)। भै० १६

परवानु=प्रमाण। ग० ३

परविद्गार=परवरदिगार, ईश्वर। स० १४०

परापति (परापाती)=प्राप्ति। सो० १०; स० २३१

परारा=करैला। आ० १६

परिमिति=बाहर का घेरा, क्षितिज। ग० ५३

परेसानी=व्याकुलता, परेशानी। ति० १

पलघ=पलंग। आ० १६

पलीतह=(फ़ा० पलीद) चालाक, (यहाँ इंद्रियाँ)। गौं० १०

पलीता=वह बत्ती जिससे तोप के रंजक में आग लगाई जाती है। ग० ४७; भै० १७

पलोसि=धोना। गौं० ६; रा० ४

पवन=प्राणायाम। आ० ३१; बि० ८

पवीत या पवीता=पवित्र। ग० ४१; गौं० ८

पहिति=दाल। आ० १४

पहीआ=पाहुन, अतिथि। गौं० ८

पांई पाइ=पैर पड़ते हैं। भै० १२

पांच नारद=पंच (नायक) नारद। गौं० ८

पाई=फैले हुए ताने को कूँची से माँजना। आ० ३६
पाकं पाक=पवित्रतम। ति० १
पाज (पाजस्य)=पार्श्व भाग। ग० ३
पाटन=पट्टन, बड़ा नगर। के० ६; स० १५१
पान्हो=पानी। मा० ६
पालि=बाँध, मकान के समीप की सीमा। स० १७०
पावड़ै=ज़ीन के दोनों ओर की रकाब। ग० ३१
पासारी (फ़ा० पासदार)=रक्षक। के० २
पासु=पाश। मा० ८
पाहू=पाहुन, मेहमान। ग० ५०
पिंगल=पंगुल, लँगड़ा। स० १६३
पिंड पराइणि=शरीर-रक्षिका। गौं० ७
पिंडु परै=गर्भ सहित होना। आ० ३५
पिरंम=प्रेम। स० २३६, २४०
पिरु=प्रियतम। आ० ३०
पुनी=पूर्ण हुई। स० २२१
पुरजा पुरजा=टुकड़े-टुकड़े। मा० ६
पुरिवन पात=पुरइन का पत्ता। बि० १०
पुरीआ=वस्त्र बुनने के पूर्व सूत का फैलाव। ग० ५४
पूँगरा=मूर्ख, निकम्मा। बिभा० २
पूछुट=पूछ के। ब० ८
पूरै ताल=ताल पूर्ण हो, सम पर आवे। गौं० १०
पेईअै (पेखियै)=देखी गई। आ० ३२
पेउ=पान करो। रा० १
पेखन=तमाशा, दृश्य। ग० ५६; बि १; स० १७८
पेवकड़ै=पिता का घर, नैहर। ग० ५०
पैकाबर (पैगंबर)=मनुष्यों के पास ईश्वर का संदेश लानेवाला। भै० १५
पैज=प्रतिज्ञा। बि० ४
पैडा=रास्ता। के० २
पैसे या पैसीले=प्रवेश करे। ग० ७७; रा० १०
पोचनहारी=पोंछने या निचोड़नेवाली। रा० १
पोटि=पोटली, गठरी। गौं० ४

फंक=फाँक, टुकड़ा। ग० ७५
फन या फंनी=धूर्त। बि० ६; सा० ३
फबो=(फाब) शोभा प्राप्त करना। सो० ११
फरकि=उछल कर। स० ६७
फ़रमान=आज्ञा-पत्र। ग० ६६; सू० ३
फाहुरी=फावड़ी, ज़मीन साफ़ करने के लिए लोहे या काठ की वस्तु। आ० ७
फ़िकर=ध्यान, चिंतन। ति० १
फुनि फुनि=बार बार, फिर फिर। रा० ८; सा० ३७
फुरमाई=आज्ञा दी। स० १६७
फुरी=स्फुरित हुई। मा० ३
फूए फाल=फूल कर फफूंद चढ़ना। गौं० ६
फेड़=फिर। आ० १
फोकट=व्यर्थ। भै० १२

बंतर=बंदर। भै० १३
बंद=बंधन, क़ैद। ग० ७५
बंदक=बाँधनेवाला। ग० ७५
बंदगी=भक्तिपूर्वक ईश्वर की वंदना। ग० ६६
बंदा=सेवक। ग० ७५
बंब=शब्द, हलचल। स० २२६
बखसि=बख़्शिश, क्षमा। मा० ७

बग=बक, बगुला। सू० २
बचरहि=विचरते हुए। स० १२३
बजगारी=जिस पर वज्र गिरा हो, (एक गाली।) भै० १५
बजारी=व्यापारी। गौ० १०
बटकबीज=वट का बीज। ग० ७५
बडानी=बड़ा, बली। बि० १
बदउगा=कहूँगा, स्वीकार करूँगा। आ०८
बनजिआ=वाणिज्य, व्यापार किया। के० २
बनहर=वन के वृक्ष। सा० १
बरकस=बरकत, लाभ। ग० ५४
बरतन=बरतना, उपभोग करना। मा०३
बरतै=रहती है, निवास करती है। ध० २; भै० २०
बरध=बैल। ब० ६
बलहर (बलाहर)=गाँव का वह कर्मचारी जो परोपकार में रत होकर दूसरों की सेवा में घूमता रहता है। गौं० ६
बलूआ के घरूआ=बालू के घर। के० ४
बलेंडा=छत की म्याल। ग० ४३
बसतु=वस्तु। रा० ४
बसाहिगा=वश चलेगा। मा० ११
बसेरा=निवास। आ० ३०
बहिआँ=गठरी। ब० ६
बहीर=भीर, या बहरे व्यक्ति। स० १६५
बहोरि=सम्हालना। स० २७
बाइ=वायु, हवा। ग० ७७
बाइस=कौवा। मा० १०
बाछीऐ=इच्छा या वांछा करना। ग०६३
बाझु=उलझना। सो० ६; सू० २
बाड़ी=बगीचा, उपवन। रा० ७
बात इक कीनी=एक-बराबर किया। आ० ३६

बादहि=व्यर्थ। स० ६४
बादु=अतिरिक्त, सिवाय। ति० १
बाधिआ=बँधा हुआ। आ० २५
बानी=दीप्ति, कांति। आ० १६
बार=(१) देर। बि० ७ (२) द्वार। स०६१
बारह बाट=नष्ट-भ्रष्ट। स० २०
बारहा=बारह कांति। स० १४५
बारिकु=बालक, छोटी उम्र का। आ० १२; गू० २
बाला जीउ=नन्हा सा जीवात्मा। सू० २
बावे=वाम, बायाँ। ग० ५१
बासक=वासुकी सर्प। भै० २०
बाहउ बेही=(ढरकी के) छेद में डालता हूँ। गू० २
बाहज=बहिर्गत, रहित। ग० ४४
बाहिआ=मारा। स० १५७
बाहुरि=लौटकर। ध० ४
बिंदु=शुक्र। भै० ११
बिंब=रीठा। गौं० ६
बिआसु=वेद व्यास। मा० १
बिखिआ=विषय-वासना। मा० २
बिखु बिगसै=विष का विकास करती है। गौं० ७
बिखै=विषय। स० १६०
बिगराना=नष्ट हुआ। आ० १
बिगूती (बिगोई)=(१) नष्ट हुई; विकृत हुई। ग० ३२, ४१; सो० १; ब० ५ (२) असमंजस के सहित। ग० ६६; बि० ६
बिचखन=विचक्षण, विचित्र। गौं० १०
बिडानु=पथ-भ्रष्ट। मा० २
बित=संपदा। के० ६
बिदर=विदुर जिन्होंने श्रीकृष्ण को साग-भाजी से संतुष्ट किया था। मा० ६

बिनठी=विनष्ट हुई। स० २२२
बिनाहु=विनाश। स० ६३
बिपल वसत्र=अनेक वस्त्र। ग० ६७
बिबरजित=वर्जित या रहित। के० १
बिभै=वैभव। ध० ४
बिरख=वृक्ष। ग० ६४
बिलमावै=देर लगावे। ग० ७५
बिलल बिलाते=बिलबिलाते। रा० ३
बिसटाला=बिसटी, बेगार। सू० ५
बिसथार=विस्तार। ग० ७५; ब० ४
बिसमिल=घायल। बिभा० ४
बिसीअर=विषधर, सर्प। आ० २०
बिहूणा=रहित। आ० १
बीठुला=विट्ठल (ब्रह्म)। बि० ३
बीधा=बिंधकर, लीन होकर। सो० ११
बुड़भुज=भड़भूँजा। ग० २५
बेगल (बेगर, बग़ैर)=अतिरिक्त। सो०४
बेढ़े (बेढ़िओ)=आवरण मात्र, घिरे हुए। के० ४; स० १७४
बेदार=जागता हुआ। रा० १२
बेदी=जिनकी आस्था वेदों में है। सो०३
बेधी=वेदी (पर)। आ० ६
बैठ=(बेठ) पेठ, बाज़ार। ग० ५४
बैराग=बैरागी। ग० ६४
बैसंतरु=वैश्वानर, अग्नि। आ० २१
ब्रमादि=ब्रह्मादि। ब० ५

भंडारी=भंडार-गृह। के० २
भउ=संसार। रा० २
भठआर=भट्ठी की धूल। स० १६५
भठि=भट्ठी। स० १५
भरवासा=भरोसा, विश्वास। सा० ३; स० १३६
भवै (भँवै)=भ्रमित होता है। बि० ८
भांडे=भंडार, संपत्ति। ग० ६८
भाणा=(१) पात्र, बर्तन (यहाँ शरीर।) आ० १६ (२) भाणा (भण)=कहना। बिभा० १
भार=संख्या तक। भै० २०
भावनी=स्त्री। ब० ६
भिला=मेला, पिंड। गौं० ४
भिसति=बहिश्त, स्वर्ग। आ० १७; भै० १५; बिभा० ४
भीर=आपत्ति। रा० ८; भै० १७
भुअंगा या भुजं=भुजंग, सर्प। आ० १५; रा० १०
भेउ, भेव या भेदु=रहस्य। ग० ७५; गौं० ७; ब० ४
भेला=भिड़े हुए। भै० १३
भै=भय। के० ३

मंजारु=बिल्ली। ग० २
मंतु=मंत्र। रा० ६; भै० १६
मंदर=महल, शरीर। गौं० ५
मंदरीआ (मांदलु या मंदलु)=नगाड़ा, बाजा। आ० ११, २८; स० ११३
मंसु=मसि, स्याही। गौं० ५
मउज=लहर। स० १२१
मउली=मरी। ब० १
मगनै=लीन होता है। ग० ५८
मजनु—मज्जन, स्नान। रा० १०
मजलसि=सभा। भै० १५
मटीआ=मिट्टी के बर्तन। के० ६
मणी=वीर्य या अहंकार। आ० १७
मथाना=मथित करनेवाला। ग० ७४
मदन=मद का बहुवचन, कामदेव। रा० २
मधूकरी=भिक्षा। स० १६८

मधे=मध्य में, बीच में। भै० १६
मना रहे=मन में आवे तो। ग० ७५
मनु जिणि=मन लगाकर। सू० ४
मरदन=(१) मर्दित किया हुआ या मर्द, पुरुष। ग० ६४; (२) सेवा। भै० २०
मरमी=रहस्य का जाननेवाला। ग० ७५
मलता=मलीन। भै० ३
मसकीन=दीन, अकिंचन। आ० १७
मसटि (मष्ट)=चुप रहना। गौं० १
मसीति=मसजिद। भै० ४; बिभा० २
महतउ=महतो, मुखिया। मा० ७
महीआ=में। गू० १
माजार=मार्जार, बिल्ली। भै० १३
माझ=मध्य। ग० ६६
माटा=मटकी, घड़ा। सो० ५
माडिओ=मंडित हुआ, संनद्ध हुआ। मा० ६
माता=मतवाला। बि० २
मानई=मनुष्य। स० १६५
मावासी=मवासी, गढ़पति। भै० १७
माहीति (माहित्र)=मनुस्मृति के अनुसार एक ऋचा। ग० ७७
मिआने=मध्य। ति० १
मिटवे=मिट्टी के घड़े। गौं० ८
मिनीऔ=लिपटती है। ग० ५४
मिरंम=मर्म, हृदयस्थल। स० १८२
मिरगाणी=एक प्रकार का लंबा तिलक। आ० ७
मिहरामति=कृपा। बिभा० २
मीरा=प्रधान या महान। आ० १०; भै० ७
मुंजित=मूँज की मेखला पहने हुए। आ० ५
मुंडिअन=संन्यासियों। आ० ३३; वि० ४
मुंडिआ=करघे का हत्था। गौं० ६
मुंडित=मुँडा हुआ। ग० ५१
मुंदा (या मुंद्रा)=मुद्रा, जोगियों के कान में पहिनने का स्फटिक कुंडल। ग० ५३; बि० ८; रा० ७
मुकलाई (मुकलाऊ)=मुक्त कराने या विदा कराने। ग० ५०; ब० ३
मुकाती=मुक्त की जानेवाली। ग० ४८
मुगधारी=मूर्ख। सा० २
मुचुमुचु=स्रवित होकर। ग० २५
मुनांरे=दीवाल की मुंडेर। स० १८४
मुलां (मुल्ला)=बहुत बड़ा विद्वान, शिक्षक। भै० ४
मुसटी=मुष्टि, मुट्ठी। ग० ५७
मुसि मुसि=(१) छिप-छिप कर। गू० २; भै० ४; (२) चुराकर। रा० १२; स० २०
मुहली=मूसल। स० २११
मुहार=मुँह का बंधन। ग० ३१
मूका=अलग या दूर। सो० ६
मूसे=लूटे। ग० ७३
मेखुली=मेखला, करधनी। सि० २
मेरं=मेरु, मेरुदंड। के० ३
मैगलु=मतवाला हाथी। स० ५८
मोकला=खुला। स० ५६
मोनि=(१) मौन, चुपचाप। आ० ५; (२) पिटारी। रा० ७
मोनी=जो जीवन पर्यंत मौन धारण करते हैं। सो० ३
मोरी=(योग का) सूक्ष्म मार्ग। सो० १०

रणि रूतउ=युद्ध में सन्नद्ध होना। ग० ७५
रतबाई=अरुण वर्ण। ग० ७५
रबाबी=रबाब बाजा बजानेवाला। आ० ६

रमना=रमण करने योग्य, स्त्री। आ० ५
रलाइ=लीन कर लिया। ग० ४०
रलिया=रमण किया। सू० २
रवि=रमण। ग० ७५; गौं० १
रवीजै=उच्चारण किया जाय या रमण किया जाय। ग० ६५
रसाइनु=वैद्यक के अनुसार वह ओषधि जो वृद्धावस्था और व्याधि का नाश करनेवाली है। मा० ६
रहमाना=कृपालु ईश्वर। भै० १५
राजासम=राजसी वृत्ति। सा० २
रादे=आराधना की। रा० ३
रासि=(अन्न) राशि। स० ६८
रिजम (अ० रजअत)=वापस पाना। सू० ५
रिदै=हृदय में। ध० ३
रुंडित=शरीर के बालों से मुँड़े हुए। ग० ५१
रूले=उलझ गए। सू० ३; भै० १२
रैनीं=सुगंधित रेणु से सज्जित। आ० २४
रोज़ा=मुसलमानों का उपवास। आ० २६

लंकूरु=लंगूर, पूँछ। ब० २
लउग=लौंग। के० २
लट छूटी=केश-मुक्त। भै० २०
लबो=लब्ध किया, प्राप्त किया। सो० ११
लबेरी=दूधयुक्त। ब० ३
लसकरु=सेना। भै० ११
लहंग दरीआ=आकाश गंगा। ति० १
लहंता भेद=पाने का रहस्य। ग० ७५
लगमात=लघु मात्र। मा० १०
लाजु=लेज, रस्सी। ग० १२, ५०
लाहनि मेलउ=लाभ के लिए। रा० १
लाहा=लाभ। आ० १५
लिखतु=(भाग्य) लेख। ग० ४०
लिव=लगन या चाह। ग० ७५
लुंजित=जिनके शरीर के केश उखाड़ लिए गए हैं। यह जैनियों में आत्म-ताड़ना की एक रीति है। आ० ५
लूकट=जलती हुई लकड़ी। ग० ३२
लूके=झेलता है, प्राप्त करता है। आ० १
लूठे=जले हुए। ब० ७
लूना=लवण, नमक। सो० ११
लूबरा=लोवा, लोमड़ी। भै० १३
लेले=बकरी का बच्चा। ग० १४
लेवा-देई=व्यापार। वि० ६
लोइन=लोचन। मा० २; स० २३४,२३५
लोई=लोगो। ध० ३
लोचा=लोचारक नर्क। ग० १८
लोचै=अभिलाषा करना। मा० ८
लोर=चंचल। आ० ६
लोरै=झुकाता है। ग० ७१

वटि=बाँट कर। गौं० ११
वडिआई=बड़ाई। ध० ४
वरा हंबै=ठीक है। यह प्रयोग गीत के अंत में आलाप लेने के लिए किया गया है। मा० ८
वहारी=(गुज०) सहायता। ग० ५०

संकुरा=संकीर्ण। स० ५८
संखम=चक्रवाक पक्षी। स० १२६
संगारी=साथी। बि० १
संचरै=जीवन प्राप्त करना। ग० ७५
संडै=भीरु। ब० ४
संधउरा=सिंदूर रखने का लकड़ी का पात्र जो सती स्त्रियाँ मृत पति के साथ चिता में जलते समय अपने साथ रखती है। ग० ६८; स० ७१

संधिक=सन्निपात रोग जिसमें रोगी बहुत बक-झक करता है। बि० ६
संपट=संपुटित होना या बंद होना। ग० ७५
संपै=संपत्ति। ग० ६३; रा० ८; भै० २
संमारि=सेवा। ग० ७५
सकति=शक्ति। रा० १०
सगलत=समष्टि भाव। ग० ३१
सगलो=समस्त। ग० ६७
सचु=सुख। ग० ५६; के० ५
सठोरि=एकत्रित। सो० २
सद=सौ। ग० २६
सदही=सदैव। रा० ३
सनाह=कवच, बख़्तर। भै० १७
सबदी=गुरु के शब्दों में विश्वास रखने वाला। ग० ५१; सो० ३
सबूरी=सब्र, धैर्य। भै० ४; स० १८५
सभतनु=सब प्रकार से। सो० ४
सभना=सभी का। स० २२०
समसरि=समान। बि० ३; मा० २
समाचरी=संचरित हुई। बि० ११
सयानप=चातुर्य। ग० ७५
सरजीउ=सजीव। ग० ४५
सरधन=धन सहित। भै० ८
सरबंग=सर्वांग रूप से। स० १४८
सरसी=पूर्ण। ब० ६
सरिओ=पूर्ण हुआ। सो० ३
सरेवहु=सरोवर की। सू० ४
सलार=सेनापति। भै० १५
सह=साथ। ग० ७५
सहजु=आत्मा की आनंद और शांति से संपन्न चेतन शक्ति। सि० १; ग० २७, ७४; आ० १; सो०७; ब०६; बिभा०१
सहुह (अ० सहो, सहव) भूल, चूक। मा० ८
साकत=शाक्त, शक्ति का उपासक। गौं० ७; भै० १२; स० ६३, १४३
साखा=सिद्धांत। स० ६६
साखिआ=सदृश। मा० ४
साझपाति=साझा, बटवारा। ध० ३
साट=विक्रय। स० १६२
साटि=मारकर। गौं० ४
सादि=स्वाद। गौं० ११
साथरु=ज़मीन का बिछौना। गौं० ६
साबति=साबित, अखंड। स० १८५
साम=मित्रता, स्नेह। भै० १६
सामान=समान, एक रूप से। ग० ७६
सारउ=रक्षा करो। सू० ३
सारी=सृष्टि। स० १७६
सावका=सदैव। आ० २५
सासत्र=शास्त्र। आ० ३७
सासि गिरासि=चंद्रग्रहण। रा० ६
साहुरड़ै=स्वामी के समीप। ग० ५०
साहुरै=स्वामी को। आ० ३२
सिंम्रिति=स्मृतियाँ। ध० १
सिकदारा (अ० सिक़ः) विश्वसनीय और ज़बर्दस्त रक्षक। सू० ५
सिङिआ=सिंगा, मद उतारने का नल। (यहाँ इडा नाड़ी) सि० २
सिङ्गी=सिंगी, जोगियों का तुरही की तरह सींग का बना हुआ बाजा। ग० ५३; रा० ७
सिझाइआ=आँच से गलाया। भै० १७
सिताब (शिताब)=शीघ्र। सू० ३
सिल=सिरा। भै० १०
सिहरु=शहर, नगर। ति० १
सीउ=शिव। (ब्रह्म) ग० ७६
सुंन=शून्य, ब्रह्म-रंध्र जो सहस्रदल कमल के भीतर है। ग० ४५; आ० १; बिभा० ५

सुंनति=मुसलमानों की वह प्रथा जिसमें बालक की इंद्रिय का ऊपरी चमड़ा काटा जाता है। आ० ८
सुआदित=स्वाद के लिए। आ० २६
सुआतु (सूनु)=पुत्र। सि० १
सुइने=सोने, स्वर्ण। आ० ६
सुक=शुकदेव। मा० १
सुक्रितु=सात्त्विक जन; शुक्रवार। ग० ७७
सुखाली=सुखमय। आ० ३
सुतु=सुंदर। आ० १८
सुपनंतरि=स्वप्न में भी। रा० ८
सुरखी (सुर्ख़)=अरुण वर्ण। ग० ७७
सुरति=आत्मा या आत्मा की आध्यात्मिक किरण। ग० ३६
सुरही=सुर-हिय, हृदय में संगीत। ग० ७७
सुहेला (ले)=(१) संभ्रांत। सो० २; सू० ३ (२) पैनी। स० १८३
सूचा (ची)=शुद्ध, पवित्र (जूठे का उलटा) ब० ७; स० २०१
सूतकु=छूत। ग० ४१
सूता=शयन किया। भै० १३
सेउ=शिव, ब्रह्म। गौं० ५
सेख=(शेख़) पैग़ंबर मुहम्मद के वंशज। भै० १५
सेल=भाला। स० १८३
सेवरि=सेमल। रा० १२
सोग=शोक, दुःख। ग० ५३, ७५
सोझाही सैनाह=साधारण इशारे से ही। स० ११८
सोझीगुरि=सरल युक्ति। ग० १४; भै० १०
सोधउ=शुद्ध। मा० ५
सोहंसो=(सोऽहं) 'मैं वही हूँ' मंत्र का जाप। भै० १६
स्रब=सर्व, सब। बिभा० ३
स्रवरण=बिना तरलता का। ब० ३

हंस=जीव। आ० ३१
हउमै=अहंकार। ग० १०; भै० १६
हउवारी=मैं वारी जाती हूँ। आ० ३५
हकु=सत्य और सर्वश्रेष्ठ ईश्वर। ति० १
हजूरि=किसी बड़े का सामीप्य। भै० ११
हरनाखसु=हिरण्याक्ष। बि० ४; ब० ४
हलहर (हलधर) बैल। गौं ६
हलाल=न्यायपूर्वक वध। बिभा० ४
हवाई=तोप। भै० १७
हाक=हुँकार, ललकार। सू० ४
हाड़बै=ऊँचा घोष करके। आ० ३७
हाल=ईश्वरावेश। स० २३६
हासै—हींगै=प्रसन्न होकर रेंकना। ग० १४
हाला=हाल, कैफ़ियत। सू० ५
हिच=खींचकर। ग० ३१
हिरइ=हरण। भै० २०
हिवधार=घृत की धारा। स० १६
हुरीआ=लात। ब० ३
हेरा=खोजने की। स० १८८
है या हैबर=श्रेष्ठ घोड़े। स० ३७, ११२, १५६
होरै=स्पर्धा के साथ या होड़ लगाकर करे। ग० ७१
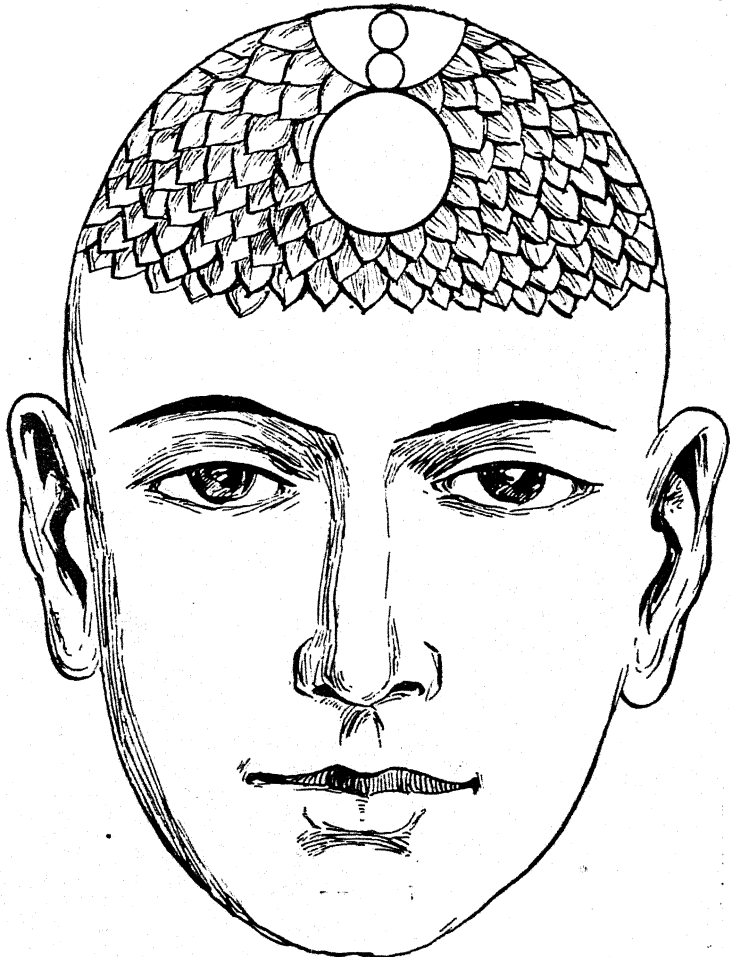
चित्र ३—सहस्रदल कमल

चित्र ४—मूलाधार चक्र

कुंडलिनी

चित्र ९
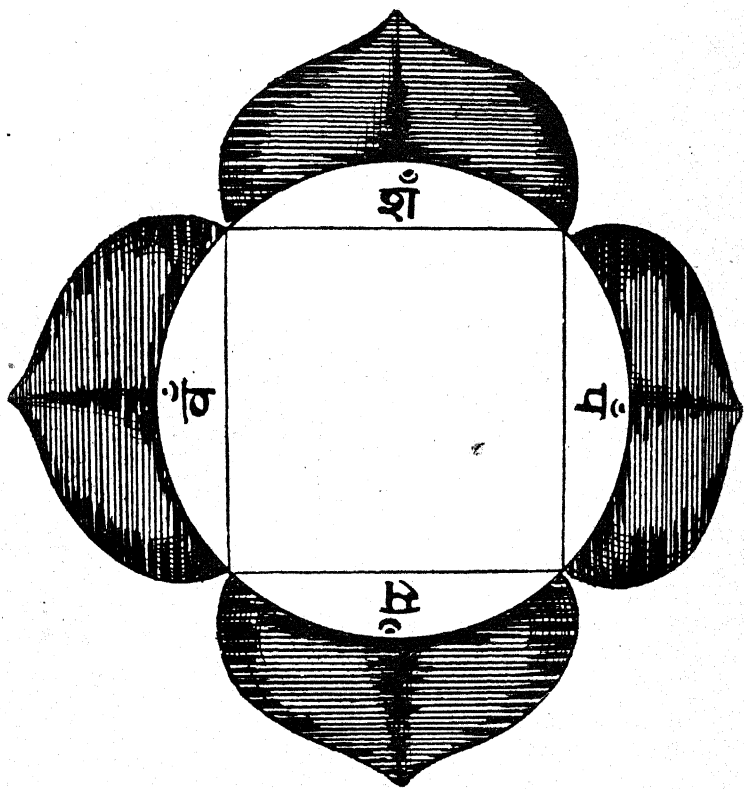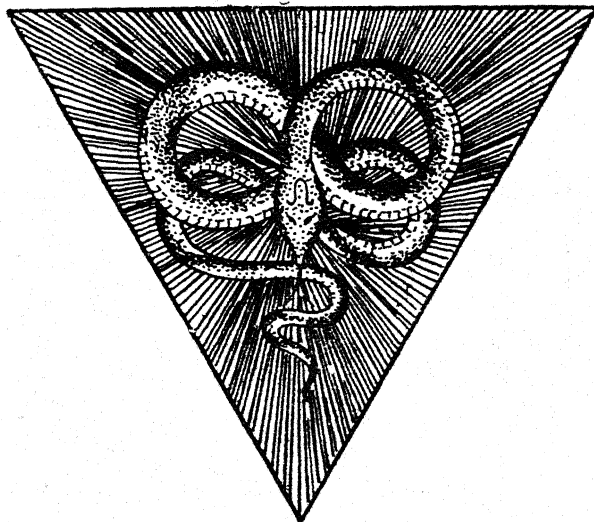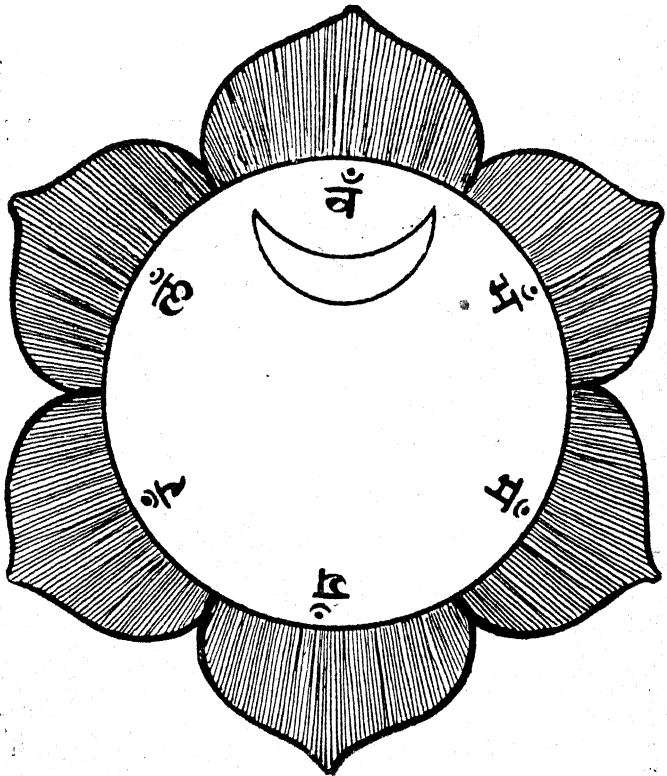
चित्र ६—स्वाधिष्ठान चक्र

चित्र ७—मणिपूरक चक्र
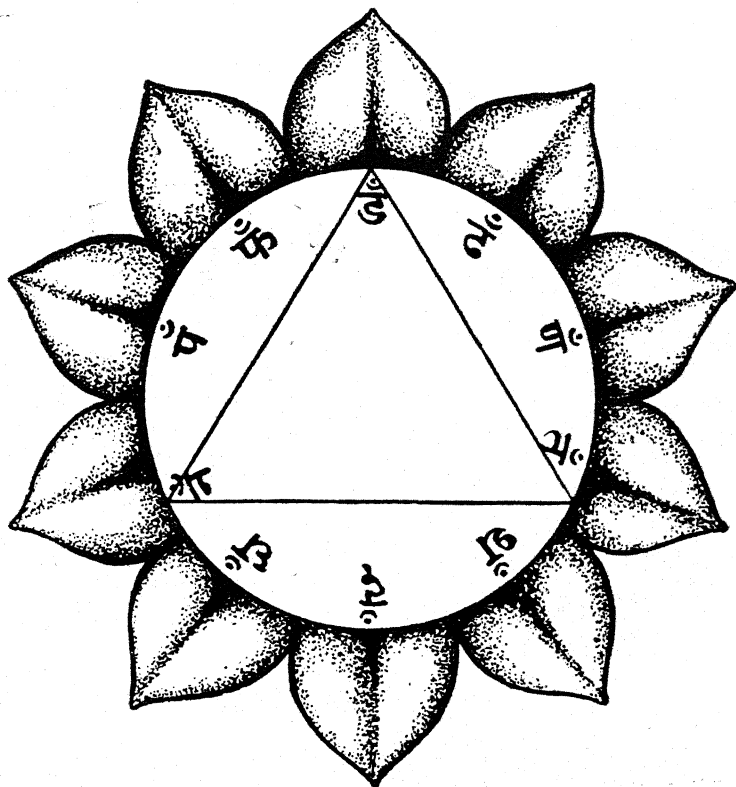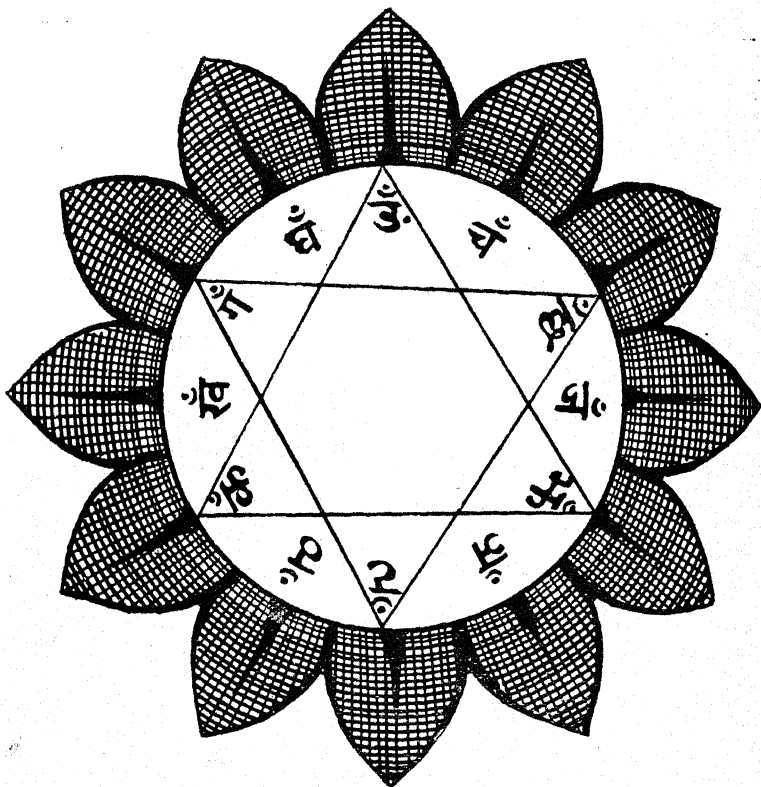
चित्र ८—अनाहत चक्र
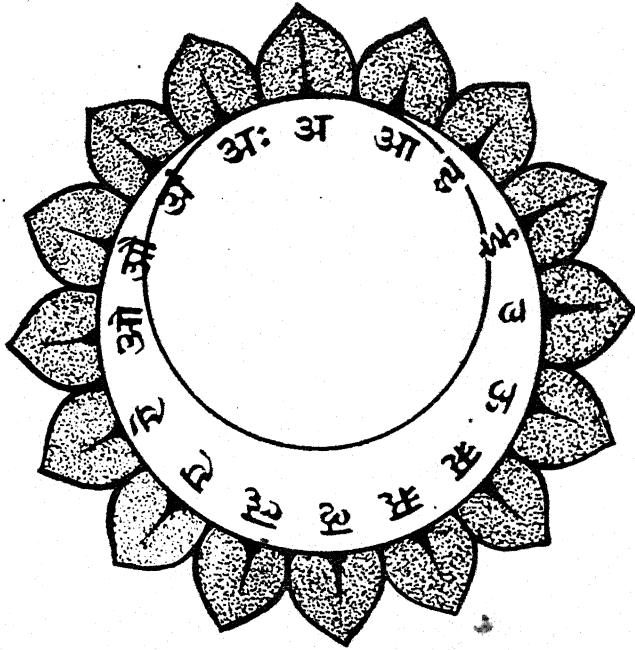
चित्र ६—विशुद्ध चक्र
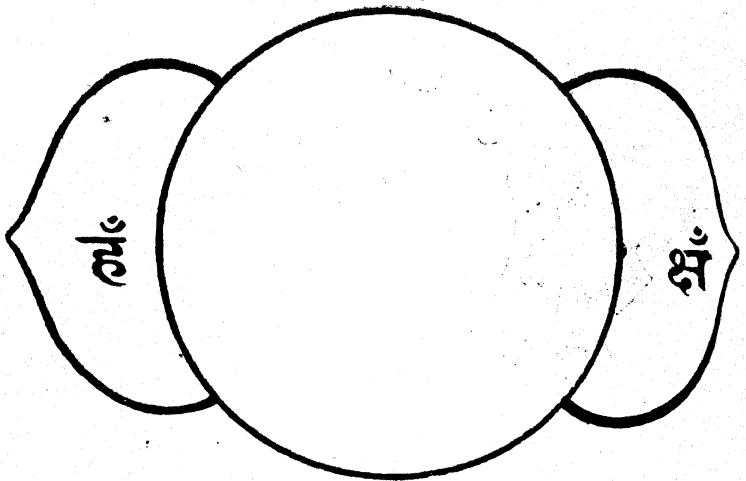
चित्र १०—आज्ञा चक्र

परिशिष्ट (घ)

संत कबीर और कबीर ग्रंथावली के पद्यों की समानता

(पद)

संख्या	संत कबीर	राग	पद्य-संख्या	कबीर ग्रंथावली	राग	पद्य-संख्या	विवरण
१	तनु रैनी मनु पुनरपि	आसा	२४	दुलहनीं गावहु मंगलचार	गउडी	१	'संत कबीर' की पहली पंक्ति 'कबीर ग्रं०' की दूसरी पंक्ति है।
२	पहिला पूतु पिछै री माई	"	२२	एक अचंभा देखा रे भाई	"	११	'संत कबीर' की पहली पंक्ति 'कबीर ग्रं०' की दूसरी पंक्ति है।
३	जम ते उलटि भए है राम	गउडी	१७	अब हम सकल कुसल	"	१५	पहली दो पंक्तियाँ 'संतकबीर' में नहीं हैं।
४	देखौ भाई ज्ञान की आई आँधी	"	४३	संतौ भाई आई ज्ञानकी आँधी रे	"	१६	'संत कबीर' में 'कबीर ग्रं० की पाँचवीं और छठी पंक्तियाँ नहीं हैं।
५	जो जन परिमिति परमनु जाना	"	१०	चलन चलन सबको कहत है	"	२४	'संत कबीर' में 'कबीर ग्रं०' की पहली पंक्ति नहीं है।
६	देइ मुहार लगामु	"	३१	अपने बिचारि असवारी	"	२५	'संत कबीर' की पहली पंक्ति 'कबीर ग्रं०' की दूसरी पंक्ति है।
७	झगरा एकु निबेरहु	"	४२	झगरा एक नबेरौ	"	२७	'संत कबीर' की पाँचवीं पंक्ति 'कबीरग्रं०' की दूसरी पंक्ति है।
८	पडीआ कवन कुमति	मारू	१	पांडे कौन कुमति	"	३६	'संत कबीर' की सातवीं तथा आठवीं पंक्तियाँ 'कबीर ग्रं०' में नहीं हैं और 'कबीर ग्रं०' की पाँचवीं तथा छठीं पंक्तियाँ संत कबीर में नहीं हैं।

संख्या	संत कबीर	राग	पद्य-संख्या	कबीर ग्रंथावली	राग	पद्य-संख्या	विवरण
९	गरभ वास महि	गउडी	७	जो पैं करता वरण	गउडी	४०	केवल 'जौं तू ब्राहमण ब्रहमणी जाइआ' वाली पंक्ति 'संत-कबीर' तथा 'कबीर ग्रं०' दोनों में मिलती है।
१०	मनु करि मका	भैरउ	४	पढ़ि ले काजी	"	६१	'संत कबीर' की तीसरी पंक्ति 'कबीर ग्रं०' की पहली पंक्ति है।
११	बेद कतेब कहहु	विभास	४	मुलां करि ल्यौ	"	६२	'संत कबीर' में 'कबीर ग्रं०' की पहली तीन पंक्तियाँ नहीं हैं।
१२	संतु मिलैं किछु	गौड	१	बोलनां का कहिए	"	६७	'संत कबीर' की तीसरी पंक्ति 'कबीर ग्रं०' की पहली पंक्ति है तथा 'संत कबीर' की सातवीं पंक्ति 'कबीर ग्रं०' की दूसरी पंक्ति है।
१३	गुडु करिगिआनु	राम-कली	२	अवधू मेरा मन	"	७२	'संत कबीर' की चौथी पंक्ति 'कबीर ग्रं०' की पहली पंक्ति है।
१४	रे मन तेरो कोइ	गउडी	६४	रांम रस पाईया रे	"	७५	'संत कबीर' की तीसरी पंक्ति 'कबीर ग्रं०' की पहली पंक्ति है।
१५	सुखु माँगत दुखु	"	३६	विषिया अजहूँ सुरति	"	८२	'संत कबीर' की तीसरी पंक्ति 'कबीरग्रं०' की पहली पंक्ति है।
१६	कउनु को पूतु	"	३९	हरि ठग जग कौं	"	८८	'संत कबीर' की तीसरी पंक्ति 'कबीर ग्रं०' की पहलीपंक्ति है।
१७	चोआ चंदन मरदन	"	१६	झूठे तन कौं कहा	"	९३	केवल 'चोआ चंदन' वाली पंक्ति दोनों में मिलती है।
१८	सुतु अपराध करत	आसा	१२	हरि जननी मैं	"	१११	'संत कबीर' की पहली पंक्ति 'कबीर ग्रं०' की तीसरी पंक्ति है।
१९	जाकै हरि सा	गउडी	२२	अब मोहि राम	"	११४	'संत कबीर' की तीसरी पंक्ति 'कबीर ग्रं०' की पहली पंक्ति है।

संख्या	संत कबीर	राग	पद्य-संख्या	कबीर ग्रंथावली	राग	पद्य-संख्या	विवरण
२०	जो जन लेहि	गउडी	२६	निरमल निरमल रांम	गउडी	१२४	'संत कबीर' की तीसरी पंक्ति 'कबीर ग्रं०' की पहली पंक्ति है।
२१	जोगी कहहि जोगु	"	५१	हरि बिन भरमि	"	१३३	'संत कबीर' की पहली पंक्ति 'कबीरग्रं०' की तीसरी पंक्ति है।
२२	विदिश्रा न परउ	बिला-वलु	२	सब दुनीं संयांनीं	"	१४७	'संत कबीर' की तीसरी पंक्ति 'कबीर ग्रं०' की पहली पंक्ति है।
२३	तरवरु एकु अनंत	राम-कली	६	अब मैं जांणिबौ	राम-कली	१६६	'संत कबीर' की पहली पंक्ति 'कबीर ग्रं०' की तीसरी पंक्ति है।
२४	सासु की दुखी	आसा	२५	सेजैं रहूँ नैंन	"	२३०	'संत कबीर' की पाँचवीं पंक्ति 'कबीर ग्रं०' की पहली पंक्ति है।
२५	बारह बरस बालपन	"	१५	मेरी मेरी करतां	"	२४२	'संत कबीर' की पहली पंक्ति 'कबीर ग्रं०' की तीसरी पंक्ति है।
२६	जोगी जती तपी	"	५	ताथैं सेविये नारायणां	"	२४८	'संत कबीर' की पहली पंक्ति 'कबीर ग्रं०' की सातवीं पंक्ति है।
२७	बेद पुरान सभै	सोरठि	३	मन रे सर्‌यौ	सोरठि	२६४	'संत कबीर' की पहली पंक्ति 'कबीर ग्रं०' की तीसरी पंक्ति है।
२८	आकासि गगन पातालि	गौंड	१	मन रे आइर	"	२६३	'संत कबीर' की पहली पंक्ति 'कबीर ग्रं०' की चौथी पंक्ति है।
२९	अगम द्रुगम	भैरउ	१९	तहाँ जौ रांम	भैरूँ	३२८	'संत कबीर' की पहली पंक्ति 'कबीर ग्रं०' की दूसरी पंक्ति है।
३०	सो मुलां जो	"	११	है हजूरि क्या	"	३३०	'संत कबीर' की पहली पंक्ति 'कबीर ग्रं०' की दूसरी पंक्ति है।
३१	गुर सेवा ते	"	६	भजि गोव्यंदभूलि	"	३४८	'संत कबीर' की पहली पंक्ति 'कबीर ग्रं०' की तीसरी पंक्ति है।

संख्या	संत कबीर	राग	पद्य - संख्या	कबीर ग्रंथावली	राग	पद्य - संख्या	विवरण
३२	जब लगु मेरी	भैरउ	१४	ऐसा ग्यांन बिचारि	भैरूँ	३४६	'संत कबीर' की पहली पंक्ति 'कबीर ग्रं०' की तीसरी पंक्ति है।
३३	थरहर कंपै बाला	सूही	२	रैनि गई मति	"	३६०	'संत कबीर' की पहली पंक्ति 'कबीर ग्रं०' की तीसरी पंक्ति है।
३४	बार बार हरि	गउड़ी	७७	बार बार हरि	बिलावल	३६२	'संत कबीर' और 'कबीर ग्रं०' के शब्दों में समानता नहीं है।
३५	खसमु मरै तउ	गौड	७	एक सुहागनि जगत	"	३७०	'संत कबीर' की पहली पंक्ति 'कबीर ग्रं०' की दूसरी पंक्ति है।
३६	प्रहलाद पठाए	बसंतु	४	नहीं छाड़ौं बाबा	बसंत	३७६	'संत कबीर' की पहली पंक्ति 'कबीर ग्रं०' की तीसरी पंक्ति है।
३७	नाइकु एकु	"	६	मेरे जैसे बनिज	"	३८३	'संत कबीर' की पहली पंक्ति 'कबीर ग्रं०' की दूसरी पंक्ति है।
३८	पंडित जन माते	"	२	सब मदिमाते	"	३८७	'संत कबीर' की पहली पंक्ति 'कबीर ग्रं०' की तीसरी पंक्ति है।
३९	कहा नर गरबसि	सारंग	१	कहा नर गरबसि	धनाश्री	४००	दोनों की पाँचवीं पंक्तियाँ भिन्न हैं।

(सलोक)

संख्या	संत कबीर	सलोक-संख्या	कबीर ग्रंथावली	पृष्ठ-संख्या	साखी-संख्या	विवरण
१	कबीर गूंगा हूआ	१६३	गूंगा हूवा	२	१०	शब्दों में असमानता है।
२	" तूं तूं करता	२०४	तूं तूं करता	५	६	'संत-कबीर' की दूसरी पंक्ति 'कबीर-ग्रं०' की दूसरी पंक्ति से भिन्न है।
३	" सूता किआ	१२८	कबीर सूता क्या	५	११	शब्दों में असमानता है।
४	" "	१२६	"	५	१२	"
५	" "	१२७	"	५	१३	"
६	" केसो केसो	२२३	केसौ कहि कहि	६	१६	"
७	" लूटना है त	४१	लूटि सकै तौ	७	२५	"
८	" रैनाइर बिछो-रिआ	१२६	रैणां दूर बिछोहिया	११	४४	"
६	" गंग जमुन	१५२	गंग जमुन उर	१८ (१०)	३	"
१०	,, मेरा मुझ महि	२०३	मेरा मुझमें कुछ	१६	३	"
११	,, कूकरु राम	७४	कबीर कूता राम	२०	१४	"
१२	,, नउबति आपनी	८०	कबीर नौबति आ-पणीं	२० (१२)	१	"
१३	,, राम नामु	२२६	राम नाम जाण्यां	२४	३३	"
१४	,, दीनु गवाइआ	१३	दीन गँवाया दुनीं	२५	४३	"
१५	,, दुनीआ के	१६६	दुनियां के धोखै	२५	४६	"
१६	,, ऊजल पहिरहि	३४	उजल कपड़ा पहरि	२६	५४	"
१७	,, मनु जानै सभ	२१६	मन जाणैं सब	२८	७	"
१८	,, मैं जानिओ	४५	मैं जांन्यूं पढ़िबौ	३८ (१६)	१	"
१६	,, लेखा देना	२०१	लेखा देणां सोहरा	४२ (२२)	२	"

संख्या	संत कबीर	सलोक-संख्या	कबीर ग्रंथावली	पृष्ठ-संख्या	साखी-संख्या	विवरण
२०	कबीर जोरी कीए	१८७	जोरी कीयां जुलुम	४३	६	शब्दों में असमानता है।
२१	„ पाहन परमेसुरु	१३६	पांहण केरा पूतला	४३ (२३)	१	„
२२	„ निरमल बूँद	१६५	निरमल बूद अकास	४७	१	'संत-कबीर' की दूसरी पंक्ति 'कबीर ग्रं०' की दूसरी पंक्ति से भिन्न है।
२३	„ चंदन का	११	कबीर चंदन का	५०	७	शब्दों में असमानता है।
२४	„ संतु न छाड़ै	१७४	संत न छाड़ै संतई	५१	२	„
२५	„ जिनहु किछू	१८१	जिन्य कुछ जांण्यां	५१	६	„
२६	„ जिह मारगि	१६५	जिहि पैंडै पंडित	५४	५	„
२७	„ हरदी पीअरी	५६	कबीर हरदी पीयरी	५४	६	„
२८	„ धरती अरु	२०२	धरती अरू असमान	५४	११	„
२९	„ दावै दाझनु	१६६	दावै दाझण होत	६१	९	„
३०	„ ना हम कीआ	६२	नां कुछ किया	६१ (३८)	१	„
३१	„ सात समुंदहि	८१	सात समंद की	६२	५	„
३२	„ मरता मरताजगु	२६	मरतां मरतां जग	६४	५	„
३३	„ बैदु मूआ	६६	बैद मुवा रोगी	६४	६	„
३४	„ निगुसाएँ बहि	५१	निगुसांवां बहि	६५	११	„
३५	„ रोड़ा होइ	१४६	रोडा ह्वै रहौ	६५	१४	„
३६	„ असा को नही	८४	ऐसा कोई नां	६६	४	„
३७	„ जिसु मरनै ते	२२	जिस मरनैं थैं	६६	१३	„
३८	„ सती पुकारै	८५	सती पुकारै सलि	७१	३३	„
३९	„ दाता तरवरु	२३०	दाता तरवर दया	७७	७	„
४०	„ हरि हीरा जन	१६२	हरि हीरा जन जौहरी	७८	३	„
४१	„ लोगु कि निंदै	४६	लोग बिचारा नींदई	८२	१	„

संख्या	संत कबीर	सलोक-संख्या	कबीर ग्रंथावली	पृष्ठ-संख्या	साखी-संख्या	विवरण
४२	कबीर हज काबै	१९८	हज काबै ह्वै ह्वै	८५	६	शब्दों में असमानता है।
४३	,, सतिगुर सूरमे	१९४	सतगुर सांचा सूरिवां	१	७	,,
४४	,, अंबर घनहरु	१२४	अंबर कुंजां कुरलियाँ	७	२	,,
४५	,, चकई जउ	१२५	चकवी बिछुटी रैणि	७	३	,,
४६	,, बिरह भुयंगमु	७६	बिरह भुवंगम तन	९	१८	,,
४७	कबीरा एकु अचंभउ	१५४	एक अचंभा देखिया	७७	२	,,
४८	कबीर भली भई	१७७	भली भई जु	१४	१८	,,
४९	,, आसा करीऔ	९५	आसा एक जु	१९	११	केवल प्रथम पंक्ति समान है।
५०	,, गरबु न कीजीऔ	३८	कबीर कहा गरबियौ	२१	१०	शब्दों में असमानता है।
५१	,, ,,	३७	,, ,,	२१	११	,,
५२	,, ,,	४०	,, ,,	२१	९	,,
५३	,, हाड जरे	३६	हाड जलै ज्यूं	२२	१६	,,
५४	,, कबीर माइआ तजी	१५६	माया तजी तौ	३४	१७	,,
५५	,, जोरी कीए	१८७	जोरी करि जिबहै	४२	८	,,
५६	,, खूबु खाना	१८८	खूब खांड़ है	४३	१२	,,
५७	,, मारी मरउ	८८	मारी मरूं कुसंग	४७	४	,,
५८	,, जैसी उपजै पेड़	१५३	जैसी उपजै पेड सूं	५७	७	,,

अनुक्रमणिका

पद

अनुक्रमणिका (सलोक)